वैचित्र्यमय असम

नौवीं और दसवीं कक्षा के लिए पूरक पाठ्यपुस्तक

माध्यमिक शिक्षा विभाग, असम सरकार

वैचित्र्यमय असम

(पूरक पाठ्यपुस्तक)
नौवीं और दसवीं कक्षा के लिए

प्रस्तुतकर्ता : असम माध्यमिक शिक्षा परिषद्, गुवाहाटी
प्रकाशक : असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

VAICHITRAYAMAY ASOM : A textbook in Hindi Rapid Reader for Class-IX & X, prepared and approved by the Board of Secondary Education, Assam and published by the Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Guwahati-32 ***Free Textbook***

All rights reserved : No reproduction in any form of this book, in whole or in part (except for brief quotation in critical articles or reviews), may be made without written authorization from the publisher.

© : असम माध्यमिक शिक्षा परिषद्

प्रकाशक : असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

प्रथम प्रकाशन : दिसंबर, 2018
परिवर्धित संस्करण : नवंबर, 2019
पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2021
पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2022
पुनर्मुद्रण : फरवरी, 2023

असम सरकार द्वारा नि:शुल्क वितरण हेतु प्रकाशित

(टैक्स्ट पेपर 70 जीएसएम और कवर पेपर 165 जीएसएम पर मुद्रित)

मुद्रक :
चंद्रकांत प्रेस प्रा.लि.
चंद्रकांत हाजरिका पथ, तरुणनगर, गुवाहाटी-5

डॉ. रनोज पेगु, एम.बी.बी.एस.
मंत्री, असम

सत्यमेव जयते

शिक्षा, मैदानी जनजाति और
पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग

संदेश

विद्यालयीन शिक्षा का आवश्यक हिस्सा है – पाठ्यपुस्तक। विद्यार्थी अपनी पाठ्यपुस्तक के माध्यम से ही ज्ञान अर्जित करते हैं। विद्यार्थी ही हमारे राज्य व देश के भविष्य के वास्तविक संसाधन हैं। मानव सभ्यता की धारा शिक्षा द्वारा ही गतिमान होती है। इन बातों को ध्यान में रखकर ही वर्तमान में हमारी सरकार ने शिक्षा क्षेत्र को सर्वाधिक महत्व दिया है।

मौजूदा राज्य सरकार ने विद्यार्थियों को शैक्षणिक सफलता दिलाने के साथ-साथ उनके जीवन के लक्ष्यों की पूर्ति तथा राज्य के कल्याण के लिए अनेक महत्वाकांक्षी योजनाओं को लागू किया है। **प्रज्ञान भारती** के तहत नि:शुल्क पाठ्यपुस्तक के अंतर्गत **क वर्ग** से **द्वादश वर्ग** तक के विद्यार्थियों को नि:शुल्क पाठ्यपुस्तक अविराम रूप से दी जा रही है। सन् 2020 से हमारी सरकार ने इस योजना को स्नातक वर्ग तक विस्तारित किया है। समूचे राज्य में उच्चतर माध्यमिक और स्नातक वर्गों में नामांकन शुल्क की माफी की घोषणा होने से एक सकारात्मक पहल की शुरुआत हुई है।

समाज में आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों के शिक्षार्थियों को मैट्रिक एवं उच्चतर माध्यमिक परीक्षाओं के शुल्कों को माफ करने की व्यवस्था की जा रही है। साथ ही माध्यमिक स्तर पर भी विद्यार्थियों की पोशाकों (यूनीफॉर्म) की आपूर्ति के लिए सरकार ने आवश्यक व्यवस्था की है। **आनंदराम बरुवा योजना** के जरिए मैट्रिक पास मेधावी छात्र-छात्राओं को **लैपटॉप** या उसके बदले में आर्थिक अनुदान देने की व्यवस्था की गई है।

विद्यार्थियों के शिक्षण-मार्ग को सुगम बनाने के महान उद्देश्य से कार्यान्वित **प्रज्ञान भारती** योजना के तहत नि:शुल्क पाठ्यपुस्तक वितरण जैसे पवित्र कार्यों के निष्पादन में योगदान दे रहे राज्यिक शिक्षा-गवेषणा एवं प्रशिक्षण परिषद्, असम माध्यमिक शिक्षा परिषद्, असम उच्चतर माध्यमिक शिक्षा संसद तथा असम राज्यिक पाठ्यपुस्तक प्रणयन और प्रकाशन निगम एवं असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को मैं धन्यवाद देता हूँ। ज्ञानार्जन की दिशा में हमारे विद्यार्थी निरंतर परिश्रम करते हुए राष्ट्र के संसाधन के रूप में अपने आप को निर्मित करने में सक्षम होंगे। इसी आशा के साथ मैं उन्हें हार्दिक शुभकामनाएँ प्रदान करता हूँ।

रनोज पेगु

(डॉ. रनोज पेगु)
शिक्षा मंत्री, असम

प्राक्कथन

असमीया समाज और संस्कृति विभिन्न जनगोष्ठियों के समन्वय के जरिए निर्मित हुई है। असम तथा उत्तर-पूर्व भारत में रहने वाली जनगोष्ठियाँ अलग-अलग समय में विभिन्न रास्तों से इस अंचल में आई थीं। अलग-अलग समय में आए इन लोगों के बीच भाषा, संस्कृति, पोशाक, खाद्य आदि का कुछ अंतर होने के बावजूद मूल रूप से इसी ने परवर्ती समय में बृहतर असमीया जाति का गठन किया। असमीया जाति गठन का इतिहास इसीलिए रंग-बिरंगा और प्राचीन है। इसके अलावा असम में युग-युग तक निवास करने वाली प्रत्येक जनगोष्ठी के कई गणमान्य व्यक्तियों ने इस बृहतर असमीया जाति के गठन में योगदान किया है। असम की इन प्राचीन जनगोष्ठियों और उन गोष्ठियों के कर्णधार व्यक्तियों के साथ विद्यार्थियों का परिचय करवाना ही इस पूरक पाठ्यपुस्तक का मूल उद्देश्य है। जनगोष्ठियों का नृतात्विक विश्लेषण न करते हुए उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक स्थिति पर रोशनी डालने की कोशिश की गई है। माध्यमिक स्तर की नौवीं-दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए गोष्ठियों का परिचय और योगदान के संबंध में बोधगम्य होने लायक प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में विद्यार्थियों की मानसिक क्षमता को ध्यान में रखकर जनगोष्ठियों के विशाल भंडार से कुछ जनगोष्ठियों के संबंध में ही परिचय प्रस्तुत किया गया है। स्वाभाविक रूप से न चाहते हुए कुछ जनगोष्ठियों का परिचय और उन जनगोष्ठियों के गणमान्य व्यक्तियों के योगदान की कहानी इस पाठ्यपुस्तक में छूट गई है।

उम्मीद की गई है वैचित्र्यमय असम नामक पहली बार प्रस्तुत पूरक पाठ्यपुस्तक को आधार बनाकर जिज्ञासु विद्यार्थीगण भविष्य में जनगोष्ठियों की संस्कृति, आकर्षक रचना भंडार आदि का अध्ययन करने के लिए प्रेरित होंगे। इस पुस्तक में विभिन्न लेखक-लेखिका अपने लेखों में समस्त तथ्य शायद शामिल नहीं कर पाए होंगे, लेकिन इन लेखों के जरिए विद्यार्थी जनगोष्ठियों के संबंध में सम्यक् ज्ञान अर्जन का आधार प्राप्त कर सकेंगे, इस तरह से लेखों को प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।

प्रथम संस्करण के मुद्रण में न चाहते हुए जो त्रुटियाँ रह गई होंगी उनकी तरफ विद्यार्थी, शिक्षक समाज अगर संकेत करेंगे तो भविष्य में इस पाठ्यपुस्तक को और अधिक आकर्षक रूप से प्रकाशित किया जा सकेगा। अंत में असम माध्यमिक शिक्षा परिषद् के माननीय अध्यक्ष आर.सी. जैन जी की परिकल्पना और तत्वावधान में प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक को तैयार करने से जुड़े लेखक-लेखिका और विभिन्न साहित्य सभा के विशेषज्ञों तथा शिक्षा अधिकारियों की सराहना करती हूँ।

नरनारायण नाथ, *ए.सी.एस.*
सचिव
असम माध्यमिक शिक्षा परिषद्

बामुनीमैदाम, गुवाहाटी-21

भूमिका

हमारे पूर्वोत्तर में जनगोष्ठीय नृ-गोष्ठीय अध्ययन के लिए संपदा का भंडार है। नृतात्विक और समाजतात्विक रूप से जनजाति का अर्थ विशाल होता है, किंतु राजनीतिक दृष्टिकोण से 'जनजाति' शब्द का अर्थ संकीर्ण है। मूल रूप से जनजाति और जाति के बीच मौलिक अंतर कई मामलों में जटिल है। इसलिए पूर्वोत्तर में जनगोष्ठीय अध्ययन की अपार संभावना होते हुए भी विशेष रूप से उल्लेखनीय अध्ययन अभी भी हुआ नहीं है। जनगोष्ठीय अध्ययन के सूत्रधार अंग्रेज थे। अंग्रेजों ने पूर्वोत्तर की जनगोष्ठियों के बारे में जो ग्रंथ लिखे हैं, बाद के समय में स्थानीय गवेषकों के लिए वे आधार बन गए।

असम विभिन्न स्थानों पर रहने वाले लोग कार्बी, मिसिंग, गारो, साउताल, नगा, ताई मूल की विभिन्न जनजातियाँ सहित गरिया-मरिया, अधिवासी मुसलमानों के अलावा विभिन्न जाति-जनजाति का मिलन स्थान है। वैसे तो केंद्र सरकार और राज्य सरकार की विभिन्न योजनाओं के जरिए जनगोष्ठी अध्ययन-गवेषणा की राह प्रशस्त हुई है, लेकिन अध्ययन के जरिए सद्भाव और आपसी तालमेल सफल हो पाया है, ऐसा हम नहीं कह सकते।

हमारे देश को आजादी मिले सात दशक गुजर गए। इस समय हमारे पड़ोसी या हमारी परछाई की तरह रहने वाले जनजातीय लोग हैं। गंभीरता के साथ समझ रही हूँ कि उन लोगों के बारे में पर्याप्त अध्ययन गवेषणा हुआ है ऐसा नहीं कहा जा सकता, बल्कि पहले की तुलना में स्नेह-सद्भाव का बंधन काफी मात्रा में शिथिल ही हुआ है। आज असम की ज्यादातर जनगोष्ठियाँ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक कारणों से स्वतंत्र हुई हैं या होना चाहती हैं, लेकिन इसके बावजूद उनके विकास का चित्र हम देख नहीं पा रहे हैं। गोष्ठी संघर्ष, भाषाई संघर्ष और मर्यादा रक्षा के लिए संग्राम ने असमीया समाज के बृहत हितों को जिस तरह नुकसान पहुंचाया है, उसी तरह जनगोष्ठीय समाज को भी काफी हद तक पीछे धकेल दिया है। असमीया भाषा को स्वीकार करने या स्वीकार न करने को लेकर भी जनगोष्ठियों के बीच मानसिक संघात चलता रहा है।

यांडाबू संधि के बाद अंग्रेजों ने असम की जातियों-जनगोष्ठियों को एकत्रित कर शासन करने की बात को ध्यान में रखकर या जिज्ञासा के चलते अध्ययन की शुरुआत की थी। नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी (नेफ़ा) के अंतर्गत आज का पूर्वोत्तर क्षेत्र उनके गवेषणा का विषय बना था। आधुनिक जीवन-शैली की रोशनी से वंचित प्रकृति के वंशजों के जीवन के प्रति आकृष्ट होकर ग्रंथ या लेखों का उन्होंने प्रकाशन किया था। परवर्ती काल में वही जनजाति अध्ययन के मूल उत्स बन गए थे। पी.टी. गॉर्डन, ए.सी. हड्सन, सिडनी एंडले, हेमन डर्फ, डब्ल्यू रॉबिनसन, जे.वी. न्यूविल, ई.टी. डल्टन, एडवर्ड गेट आदि के योगदान से जनगोष्ठियों की जीवन-शैली, लोक-विश्वास, रीति-रिवाज, समाज-जीवन को लोगों के सामने उजागर किया। मैंने इस लेख में कुछ गवेषकों के नामों का ही उल्लेख किया है। भारत प्रेमी जनगोष्ठीय गवेषक वैरियर एल्विन, इतिहासकार गेट और वर्तमान असम के संतान स्वरूप बन चुके स्टीफन मूर ने इस क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान किया है। आस्ट्रेलिया के नागरिक स्टिफेन मूर की बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दी की

अध्ययन निष्ठा को अभी भी भारतीय मूल के गवेषक लांघ नहीं पाए हैं। डेस्माण्ड मॉरिस, पीटर मार्च की तरह क्षेत्र आधारित अध्ययन करने वाले गवेषकों का इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा है। तिब्बत और बर्मा का सीमा निर्धारण कर पूर्वोत्तर के विभिन्न स्थानों पर रहने वाले जनगोष्ठीय लोगों के जीवन को लेकर उल्लेखनीय अध्ययन पीटरवेनहोम, आगलाजा स्टिन ने किया था।

तुलनात्मक रूप से अगर विचार किया जाए तो पहले के गवेषकों की तुलना में हमारे देश का जनगोष्ठीय अध्ययन विशेष रूप से आगे बढ़ा है, ऐसा हम नहीं कह सकते, लेकिन इनकार नहीं किया जा सकता, प्रत्येक जनगोष्ठी के संबंध में ग्रंथों की संख्या बढ़ गई है। आधुनिक विश्व के साथ संपर्क कायम करने और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के जरिए प्रत्येक जनगोष्ठी के बीच औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने वाले लोगों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई है। अपनी-अपनी जनगोष्ठी के संबंध में इन शिक्षित व्यक्तियों ने पुस्तक प्रकाशन करने में विशेष योगदान किया है। शायद जोनाकी युग में रत्नेश्वर महंत ने सबसे पहले असम में जनगोष्ठी अध्ययन की राह प्रशस्त की थी। 'गारो वृतांत' नामक अपने शैक्षणिक लेख के जरिए रत्नेश्वर महंत ने जनजातीय जीवन, समाज शैली का अर्थपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था। हेरंबकांत बरपुजारी, एसएन बरकाकती, सत्येंद्र नारायण गोस्वामी, डॉ. उपेन राभा हाकासाम, शरत कुमार फुकन, डॉ. भुवन मोहन दास आदि कई इतिहासकारों ने जनगोष्ठीय विषयक ग्रंथों की रचना में उल्लेखनीय योगदान किया। डॉ. नगेन शइकिया ने *असमीया मानुहर इतिहास* नामक पुस्तक के जरिए शैक्षणिक रूप से इस क्षेत्र में परिसर का विस्तार किया, लेकिन हमारी धारणा है, जब तक विद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों के बीच असम की जाति-जनगोष्ठी के संबंध में सम्यक् ज्ञान का प्रचार नहीं होता, असमीया समाज जीवन में जाति-जनगोष्ठी के वृहद योगदान के संबंध के बारे में वे नहीं जानते, तब तक हमारी सद्भावना, कृतज्ञता, सहयोग की मानसिकता अंकुरित नहीं हो सकती। जाति-जनगोष्ठी के साथ संवेदनशीलता का रिश्ता कायम करने की शुरुआत विद्यालय स्तर से ही होना उचित है। इस बात को ध्यान में रखकर असम माध्यमिक शिक्षा परिषद् ने विविध जनगोष्ठियों का सम्यक् वर्णन और जनगोष्ठियों के अग्रणी व्यक्तियों की जीवनी को शामिल कर पूरक पाठ्यपुस्तक प्रस्तुत करने का फैसला किया। यह कोशिश समय उपयोगी उत्तम सिद्धांत है, ऐसा मैं मानती हूँ। शैक्षणिक रूप से जनगोष्ठियों के साथ परिचय होने का अर्थ है एक आंतरिक बंधन की प्रस्तुति।

इस ग्रंथ में निश्चय ही कई पुरोधा व्यक्तियों की जीवनी छूट गई है। परवर्ती स्तर में कुछ बदलाव करने की संभावना जरूर रहेगी। पहली कोशिश के तौर पर प्रस्तुत पूरक पाठ्यपुस्तक में नौवीं और दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों को नएपन का एहसास होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। बृहतर असमीया जाति को समझने के लिए ऐसी एक पुस्तक की काफी आवश्यकता है। इस पूरक पाठ्यपुस्तक के लिए असम माध्यमिक शिक्षा परिषद् के अध्यक्ष रमेश चंद जैन की कोशिश की सराहना करती हूँ। देश के भूगोल और इतिहास के पन्नों का कोमल उम्र पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ऐसे मामले में यह पूरक पाठ्यपुस्तक एक महत्वपूर्ण दिशा-निर्णय करेगी।

अनुराधा शर्मा पुजारी

●●●

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

मुख्य सलाहकार

रमेश चंद्र जैन

अध्यक्ष, असम माध्यमिक शिक्षा परिषद्, गुवाहाटी-21

सलाहकार

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32

मुख्य समन्वयक

रंजुमणि महंत

वरिष्ठ शैक्षिक अधिकारी, असम माध्यमिक शिक्षा परिषद्, गुवाहाटी-21

समन्वयक

रामनाथ प्रसाद

सहायक साहित्य सचिव, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32

हिंदी अनुवाद

अरविंद कुमार शर्मा

प्राध्यापक, बी. बरुवा महाविद्यालय, गुवाहाटी

दिनकर कुमार

विशिष्ट हिंदी अनुवादक, गुवाहाटी

अशोक शर्मा 'अतुल'

उप संपादक, दैनिक पूर्वोदय, गुवाहाटी

रामेश्वर शर्मा

शिक्षक, कामाख्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, गुवाहाटी

पुनरीक्षण

अरविंद कुमार शर्मा

प्राध्यापक, बी. बरुवा महाविद्यालय, गुवाहाटी

डी.टी.पी.

रति कांत कलिता

अनुक्रम

नौवीं कक्षा के लिए

जाति/जनगोष्ठी	संग्रहकर्ता	पृष्ठ
वैचित्र्यमय असम	नव कुमार डेकाबरुवा	1
आहोम	पूर्वांचल ताई साहित्य सभा	8
कछार की जनगोष्ठियाँ	डॉ. अमलेंदु भट्टाचार्य	20
कार्बी	कार्बी साहित्य सभा	24
कोच-राजवंशी	कोच-राजवंशी साहित्य सभा	28
गरिया, मरिया और देशी	अखिल असम गरिया मरिया देशी जातीय परिषद	35
गारो	गारो साहित्य सभा	39
साउताल (संथाल)	साउताली भाषा और साहित्य गवेषणा केंद्र	45
चाय जनगोष्ठी	सुशील कुर्मी-असम साहित्य सभा	50
सुतिया	डॉ. माणिक शइकिया	54
ठेंगाल कछारी	अखिल असम ठेंगाल कछारी संगठन	59
डिमासा	नव कुमार डेकाबरुवा	66
कलिता	कलिता जनगोष्ठी सन्मिलन	68

दसवीं कक्षा के लिए

तिवा	तिवा साहित्य सभा	75
देउरी	देउरी साहित्य सभा	80
नेपालीभाषी गोर्खा	असम नेपाली साहित्य सभा	86
बोड़ो	बोड़ो साहित्य सभा	91
मटक	अखिल असम मटक सन्मिलन	98
मोरान	मोरान साहित्य सभा	104
मिसिंग	मिसिंग साहित्य सभा	113
मणिपुरी	असम मणिपुरी साहित्य परिषद	122
राभा	निखिल राभा साहित्य परिषद	129
सोनोवाल कछारी	सोनोवाल कछारी साहित्य सभा	136
हाजंग	हाजंग साहित्य सभा	145
नाथ योगी	असम प्रादेशिक योगी सन्मिलनी	151
आदिवासी	आदिवासी साहित्य सभा	153

वैचित्र्यमय असम

वृहत्तर असमीया जाति के पुरोधा के रूप में सर्वप्रथम महापुरुष शंकरदेव का नाम लिया जाता है। बाद में उनके पद-चिह्नों का अनुशरण करके माधवदेव, दामोदरदेव, हरिदेव आदि वैष्णव लोगों ने विभिन्न रूपों में अपना योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त असमीया जातीय एकता, प्रेम एवं भाईचारे को कायम रखने के क्षेत्र में लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा, ज्योति प्रसाद अगरवाला, पार्वती प्रसाद बरुवा, डॉ. भूपेन हाजरिका आदि विद्वानों ने भी विशेष योगदान दिया है। इसके साथ ही अतीत काल से लेकर वर्तमान समय तक असम में रह रही विभिन्न जातियों-जनजातियों, संप्रदायों के मिश्रित रूप आदि को मिलाकर हम वास्तविक असम की कल्पना कर सकते हैं। ऐसे ही कुछ जनसमुदायों का संक्षिप्त परिचय विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है -

कैवर्त : कैवर्त बड़े विनम्र और सहनशील संप्रदाय के लोग होते हैं। निचले असम में कैवर्त नमशुद्र के रूप में अपना परिचय देते हैं। इन्हें जालिया शालै भी कहा जाता है।

बनिया : बनिया संप्रदाय के लोग पूरे भारत में पाए जाते हैं। बनिया संप्रदाय के कुछ लोग कभी पुराने जमाने में असम आए थे और आकर असमीया बन गए। बनिया संप्रदाय के लोग मुख्यत: वैश्य लोगों का ही एक भाग है, जो सोनार वैश्य कहलाता है तथा अनेक लोग अपने नाम के बाद में बनिक, दास आदि उपाधि भी लिखते हैं।

हीरा : हीरा संप्रदाय के लोग मिट्टी के घड़े, दीपक, धूपदानी आदि बनाते हैं। असम में इन्हें अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त है। हीरा संप्रदाय के लोग मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए चाक का प्रयोग करते हैं। ऊपरी असम के हीरा संप्रदाय के लोगों का एक भाग सोनार का काम करते हैं।

सूत : जनश्रुति के अनुसार क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण कन्या के वैवाहिक संबंध से उत्पन्न जाति का नाम सूत है। शास्त्र के अनुसार मनु स्वयंभू के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत ही प्रथम क्षत्रिय पुरुष हैं। उनके वंश के उत्तर-पुरुष ययाति ने शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से विवाह किया था। तत्कालीन सामाजिक परंपराओं के अनुसार सवर्ण विवाह न होने के कारण ययाति और देवयानी की संतानों को सूत के रूप में प्रसिद्धि मिली। सूतों ने सारथी एवं अनेक वीरों के रथ-संचालक के रूप में प्राचीन काल में ही असम में प्रवेश किया था और

वे असमीया की मुख्य धारा में मिलकर मूल असमीया बन चुके हैं।

हालै : असम सरकार की अन्य पिछड़ी जातियों की सूची में हालै नामक एक संप्रदाय भी शामिल है। हालै केवट लोगों का ही एक विशेष भाग है। इन्हें 'हालै', 'माली' और 'जालै' इन तीन नामों से जाना जाता है। हालै शब्द का अर्थ होता है हल चलानेवाला यानि किसान। हालै संप्रदाय के लोग पूजा-पाठ, श्राद्ध आदि वैष्णवी परंपरा के अनुसार ही करते हैं। मृतकों का सत्कार चिता जलाकर किया जाता है। हालै लोग असमीयाभाषी मूल असमीया है। माली हालै लोग मुख्यत: फूल उगाने अथवा बगीचा लगाने का काम करते हैं।

बकलियाल : बकलियाल कछारी संप्रदाय की ही एक छोटी जनजाति है। बकलियाल लोग अपने आपको सोनोवाल का ही एक भाग मानते हैं तथापि बकलियाल आज के समय में एक अलग जनजाति के रूप में जानी जाती है। बकलियाल सोनोवाल जनजाति की ही समरूप जनजाति है। बकलियाल जनजाति की संख्या बहुत कम है। संपूर्ण असम में लगभग ढाई हजार बकलियाल परिवार बसते हैं।

मेच कछारी : मेच जनजाति असम के वृहत्तर कछारी जनजाति का बहुत ही छोटा अंश है। वर्तमान नगालैंड राज्य के डिमापुर और उसके आसपास के अंचलों में मेच जनजाति बसती है। वर्तमान समय में मेज जनजाति असमीया मुख्यधारा के साथ लगभग मिल गई है।

शरणीया कछारी : शरणीया कछारी असम के एक महत्वपूर्ण संप्रदाय हैं और वे विशेष रूप से उदालगुड़ी, बाक्सा, कामरूप आदि जिले में रहते हैं। 'शन्या कछारी' को साधारण असमीया भाषा में शरणीया कछारी कहा जाता है और इसी नाम से वे जाने जाते हैं। शंकरदेव और माधवदेव द्वारा प्रचारित नववैष्णववाद और आंदोलन के कारण कुछ शरणीया कछारी लोग धर्मांतरित होकर वैष्णव धर्म तथा सनातन धर्म को अपनाया है। यद्यपि वे एक अलग पहचान और संस्कृति के साथ एक अलग जनगोष्ठी के के रूप में परिचित हैं।

मदाही संप्रदाय : जनश्रुति के अनुसार मदाही लोग नेपाल की मदाई नदी के उस पार मूल रूप से बसनेवाले किरात कछारी के वंशज हैं। मदाही लोग मदाही, रय, डेका इत्यादि उपाधि लिखते हैं तथा अपने आपको मदाही कछारी के रूप में परिचय देते हैं। गैर सरकारी आँकड़ों के अनुसार मदाही लोगों की जनसंख्या लगभग पाँच लाख है और बी.टी.ए.डी. क्षेत्र की यह दूसरी बड़ी जनजाति है।

बराही और चाउदांग : आहोमों के आने से पहले असम में बराही जनजाति रहती थी, लेकिन वर्तमान समय में बराही नाम की जनजाति नहीं पाई जाती। आहोम राजाओं के शासनकाल में अपराधियों के दण्ड देने के लिए चाउदांग नामक एक उपाधि बनाई गई थी। वे लोग ही चाउदांग नाम से जाने जाते हैं।

रियांग : ऐसा माना जाता है कि असम के स्वायत्तशासी कार्बी आंग्लांग और डिमा हासाओ जिले में रहनेवाले रियांग संप्रदाय के लोग डिमासा संप्रदाय के वंशज हैं।

रेंग्मा : कार्बी आंग्लांग स्वायत्तशासी जिले के पहाड़ी एवं अनुसूचित जनजातियों में रेंग्मा जनजाति का स्थान ऊपर है। रेंग्मा लोग वृहत्तर नागा टियेनिएमा जाति के वंशज आंगामी, चाकाचांग, जेलियांग, माओ, टिउमाई आदि जनजातीय जनसमुदाय के लोग हैं। 'नागा' शब्द से किसी विशेष जनसमुदाय का बोध नहीं होता। अर्थात् 'नागा' नामक कोई भी जनसमुदाय या जनगोष्ठी नहीं है, लेकिन नागा जनजाति चेमा, लुठा, आओ, जेमि, रेंग्मा इत्यादि लगभग 16 जनजातियों का प्रतिनिधित्व करती है।

जेमि नागा : नागा रानी गाईडालु पहाड़ी जनजाति जेमि संप्रदाय की एक महान नारी थी। 'जेमि' शब्द से जेमि, लियांगमाई और रंग्माई नामक तीन अलग-अलग भातृ जनसमुदाय का बोध होता है। वर्तमान डिमा हासाओ जिले के सबसे ऊँचा पहाड़ बराईल पर बसने वाले लोग ही जेमि नागा हैं।

रेंग्माई : पहले का अविभाजित कछार जिले और वर्तमान डिमा हासाओ जिले के नागा जनजाति ही रेंग्माई जनजति के लोग हैं। रेंग्माई लोग मुख्य रूप से खेती करते हैं तथा एक-दो लोग ही सरकारी नौकरी-पेशा वाले हैं, तथापि कछार, हैलाकांदी, करीमगंज और डिमा हासाओ जिले में ये लोग सफाई कर्मी के रूप में जाने जाते हैं।

मिजो अथवा लुसाई : मिजोरम राज्य के गठन के बाद असम में बहुत कम संख्या में मिजो परिवार वर्तमान कार्बी आंग्लांग और उत्तर कछार पर्वतीय जिले में देखे जाते हैं।

पोय : पोय लोग मूल रूप से वर्तमान मिजोरम के एक छोटी जनजाति के लोग हैं और पोय उनकी भाषा है। मिजोरम सरकार ने पोय लोगों के आर्थिक-सामाजिक विकास के लिए स्वायत्तशासी परिषद का गठन किया है।

लाखेर : लाखेर मुख्यत: मिजोरम-बांग्लादेश सीमा पर स्थित चिमपुई टुई नामक झील के उस पार रहनेवाली एक छोटी जनजाति है। वे लोग स्वयं को मिजो कहते हैं, लेकिन उनकी मातृभाषा मिजो अथवा लुसाई न होकर लाखेर है। मिजोरम सरकार ने लाखेर लोगों के आर्थिक-सामाजिक विकास के लिए लाखेर स्वायत्तशासी परिषद का गठन किया है।

जयंतिया और खासिया : पहले के असम से खासिया, जयंतिया और गारो पहाड़ जिले को अलग करके मेघालय राज्य के गठन के बाद बराईल पहाड़ के विभिन्न भागों में अवस्थित वर्तमान कार्बी आंग्लांग, डिमा हासाओ, कछार, हैलाकांदी और करीमगंज जिले में कुछ संख्या में खासिया एवं जयंतिया गाँव असम की सीमा में ही रह गए। जयंतिया एवं खासिया लोग स्वयं को दो अलग-अलग जाति के रूप में अपना परिचय देते हैं, तथापि दोनों जनजातियों की भाषा एवं संस्कृति में मेल है।

खामति, फाकियाल, मान (टाई भाषी), तुरूंग और दोवनिया : खामति जनजाति असम के स्वायत्तशासी कार्बी आंग्लांग और उत्तर कछार पर्वतीय जिले के अलावा अन्य जिलों की तालिका में अनुसूचित जनजाति के रूप में गण्य है। मान (टाई भाषी) लोग असम के स्वायत्तशासी कार्बी आंग्लांग और उत्तर कछार पर्वतीय जिले के अनुसूचित जनजाति हैं।

खामति एवं फाकियाल मान (टाई भाषी) बर्मा मूल के लोग हैं। मान (टाई भाषी) और असम के स्वायत्तशासी जिला कार्बी आंग्लांग एवं डिमा हासाओ को छोड़कर शेष अंचलों में रहने वाले खामति लोग मूलत: टाई भाषी हैं। मान अथवा खामति टाई भाषी लोग मूलत: आइतनिया खामिया अथवा नरा राजा के वंशज और श्याम अथवा बाइलुं के रूप में जाने जाते हैं।

तुरूंग और दोवनिया नामक लोगों के दो भाग हैं। तुरूंग और दोवनिया चिंग्फौ भाषा बोलते हैं और आइतनिया, खामिया और श्याम अथवा बाइलुं टाई भाषा बोलते हैं। मान अथवा खामति लोगों का एक अन्य समगोत्रीय संप्रदाय फाकियाल है। खामति, फाकियाल, मान (टाई भाषी) आदि हीनयान बौद्ध धर्मावलंबी हैं।

चिंग्फौ : चिंग्फौ बर्मा मूल की एक छोटी जनसमुदाय है। इनकी भाषा चिंग्फौ है। चिंग्फौ लोग भी हीनयान बौद्ध धर्मावलंबी हैं।

कुकी : कुकी नाम का कोई जनजातीय जनसमुदाय नहीं है। कहा जाता है कि स्वाधीनता प्राप्ति से पहले अंग्रेजों के शासनकाल में वर्तमान बांग्लादेश के चिटगाँव पहाड़ी अंचल के कपास उगाए जाने वाले अंचल में थादो, माड़, बेईत, रांग्खल, पाईते, गांटे, खेलमा, भाईफुई आदि जनसमुदाय के लोग रहते थे। उनके शिकार करने वाली जगहों में कपास की खेती करके जंगलों को नष्ट कर दिया। ऐसा आरोप लगाकर समय-समय पर लूटपाट करते थे। ऐसे लोगों को भूल से अंग्रेजों ने कुकी नाम दे दिया था।

चकमा संप्रदाय : चकमा संप्रदाय के लोग असम के पर्वतीय स्वायत्तशासी जिले कार्बी आंग्लांग और डिमा हासाओ की अनुसूचित जनजाति है। ये हीनयान बौद्धधर्म के अनुयायी हैं। चकमा जनजाति वर्तमान बांग्लादेश की मूल जनजाति है। वर्तमान बांग्लादेश के चिटगाँव अंचल में चकमा लोगों का शासन चलता था और अंग्रेज चकमा लोगों की मदद से बहुत उत्तम गुणवत्ता वाला कपास का उत्पादन करवाते थे।

केवट : हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार केवट नाव चलाने वाले और मछली मारने वाले लोग हैं। रामायण में यह कहानी मिलती है कि केवट ने प्रभु श्रीरामचंद्र को गंगा नदी पार कराया था। उसी समय से केवट को शूद्र के रूप में एक सम्मानीय स्थान प्राप्त है।

वैश्य : भारतीय हिंदू परंपरा के अनुसार हिंदू समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया है। वे चार

वर्ण हैं – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यद्यपि वैश्य पारंपरिक रूप से खेती-बाड़ी करनेवाले लोग हैं, तथापि असमीया वैश्य लोग तरह-तरह के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। असमीया वैश्यों को साउद वैश्य, सोनारी वैश्य और आर्य वैश्य नामक तीन भागों में विभाजित किया गया है। जनश्रुति के अनुसार साउद वैश्य चांद सौदागर के वंशज हैं। सोनारी वैश्य सोनारी, बनिया या व्यवसायी के वंशज तथा आर्य वैश्य आर्यों के वंशज माने जाते हैं।

असमीया सिक्ख : 1820 ई. के तृतीय मान आक्रमण के समय स्वर्गदेव चंद्रकांत सिंह के अनुरोध पर पंजाब केशरी रंजीत सिंह ने 500 सिक्ख सैनिकों को असम में भेजा था। इन्हीं सैनिकों में से अधिकांश सैनिक वर्तमान गोवालपारा जिले के हादिराचकी नामक स्थान पर बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। बहुत से सैनिक घायल होकर वही पड़े रहे। इस युद्ध में सेनापति चैतन्य सिंह भी मारा गया था।

उन्हीं घायल सैनिक सेनापति चैतन्य सिंह की पत्नी के साथ सुबेदार राम सिंह के नेतृत्व में आहोम राजा के निर्देश पर ब्रह्मपुत्र नद से होकर कपिली नदी पार कर भेटाइमारा के तट पर बस गए। असम में दूसरा गुरुद्वारा स्थापित करके घायल सैनिकों ने स्थानीय युवतियों से विवाह करके स्थायी रूप से रहना आरंभ किया।

हज्जाम : भारत के लगभग सभी भागों में बाल काटने वाले और शरीर की मालिश करने वाले लोग पाए जाते हैं। हिंदू परंपरा के अनुसार हज्जाम संप्रदाय को बहुत-से लोग शूद्र संप्रदाय से ऊँचा संप्रदाय मानते हैं। ऊपरी असम में हज्जाम द्वारा बाल काटने की व्यवस्था नई है। पहले लोग जैसे-तैसे बाल कटवाते थे। निचले असम में असमीयाभाषी हज्जाम संप्रदाय के रूप में मशहूर शील उपाधिधारी एक छोटा जनसंप्रदाय है।

असमीया कुमार : फूल का गमला, मिट्टी का घड़ा, मिट्टी के दीपक इत्यादि बनाने वाले संप्रदाय का नाम है कुमार। एक जनश्रुति के अनुसार उड़ीसा से एक ब्राह्मण परिवार माता कामाख्या दर्शन के लिए असम आया था। उक्त परिवार में ब्राह्मण और उनकी पत्नी तथा दो शिष्य थे। किसी अज्ञात बीमारी के कारण एकाएक ब्राह्मण की मृत्यु हो गई। उसकी विधवा पत्नी ब्रह्मपुत्र के उस पार में रहकर मिट्टी के बर्तन बनाकर और उसे बेचकर अपने परिवार का पालन-पोषण करने लगी। कालक्रम से उसी ब्राह्मण परिवार के संतान कुमार संप्रदाय के रूप में प्रसिद्ध हुए। कुमार लोग चाक की मदद से मिट्टी के बर्तन तैयार करते हैं।

डोली : भारत के विभिन्न राज्यों में, विशेषकर पश्चिम बंगाल और वर्तमान बांग्लादेश के अलावा असम में राजा-महाराजा को डोला में बैठाकर ले आने, ले जाने की परंपरा थी अथवा विवाह जैसी सामाजिक परंपरा में डोला उठाकर जीविका चलाने वाली जाति ही डोली संप्रदाय के रूप में विख्यात है।

ढुली : भारत के विभिन्न राज्यों में विशेषकर पश्चिम बंगाल और वर्तमान बांग्लादेश के साथ-साथ असम में भी परंपरागत रूप से ढोल बजाकर जीवन निर्वाह करनेवाला जाति ही ढुली नाम से जानी जाती है।

त्रिपुरा : त्रिपुरा डिमासा मूल की जनजाति है।

बरिया : असम की पिछड़ी जाति की सूची में बरिया नाम की जाति अंकित है।

शालाम : असम एवं मेघालय के सीमावर्ती अंचल में शालाम नामक एक जनजाति पाई जाती है। शालाम कुकी लोगों के ही अंश हैं।

बनाई : बनाई लोग कोंच लोगों के ही वंशज लगते हैं।

बांग्लाभाषी हिंदू : अंग्रेजी शासनकाल में रेल कंपनी, चाय-बागान आदि में क्लर्क, मुंशी, चपरासी, चौकीदार आदि नौकरी के लिए बांग्लाभाषी हिंदुओं का असम आगमन हुआ था। बाद में इन्हीं बांग्लाभाषी हिंदुओं ने छोटे-छोटे व्यवसाय करना शुरू किया। देश के विभाजन के समय राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक कारणों से बड़ी संख्या में बांग्लाभाषी हिंदू असम आए। उल्लेखनीय है कि 1971 ई. के बांग्लादेश के युद्ध के समय बड़ी संख्या में बांग्लाभाषी हिंदू शरणार्थी असम में आए। ये पूरे असम में फैलकर अन्य व्यवसाय के साथ खेती-बाड़ी का काम भी करने लगे।

भारत के विभिन्न राज्यों के वंशज असमीया : भारत के अन्य राज्यों के वंशजों की बात करें तो सबसे पहले असम में रहने वाले विष्णुप्रिया और मेईताई मणिपुरी के साथ-साथ मणिपुरी मुसलमानों की बात होती है। असम सरकार ने असम में रहनेवाले मणिपुरी लोगों को अन्य पिछड़ा वर्ग की तालिका में सूचीबद्ध करके उन्हें सभी सुविधाएँ प्रदान कर रही हैं। इसके बाद बिहार और उत्तर प्रदेश से आकर असम में बसे वाणिज्य-व्यवसाय एवं खेती-बाड़ी करने वाले लोगों का स्थान है। अंत में असमीया जनमानस में जो नाम उभरता है, वह है माड़वाड़ मूल के लोगों का है, जिन्हें माड़वाड़ी नाम से जाना जाता है और ये लोग मुख्य रूप से दुकान चलाते हैं।

भारत के अन्य राज्यों के वासियों के साथ-साथ असम में पंजाबी सिक्खों का भी अपना अलग समाज है। रेल-लाईन बनने, तेल शोधनागार के निर्माण, बड़े-बड़े कार्यालयों के खुलने तथा डाक-बंगला आदि के निर्माण के समय पहले-पहले पंजाबी लोग ही असम में आए थे। हालाँकि बाद में पंजाबी लोगों ने दर्जी दुकान, गाड़ियों के गैरेज, जूता दुकान, कपड़ा दुकान आदि खोलकर अपना व्यवसाय करने लगे। ये जनसमुदाय संपूर्ण असम में स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। इसके अतिरिक्त विभिन्न वाणिज्य-व्यापार में बड़ी संख्या में हिंदीभाषी मुसलमान, दूध का कारोबार करने वाले ग्वाला तथा अन्य व्यवसायों में भारत के लगभग सभी राज्यों के लोग अधिक-कम संख्या में देखे जाते हैं। इन लोगों ने अपने राज्य का परिचय, भाषा एवं

संस्कृति को अक्षुण्ण रखते हुए बहुत-से लोगों ने अपने आपको असम की संस्कृति में विलीन कर लिया है। सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए भी भारत के विभिन्न राज्यों से असम में आए हैं तथा बहुत-से लोग असम के स्थायी निवासी के रूप में यही बस गए हैं। इसके अतिरिक्त असम-अरुणाचल सीमावर्ती अंचलों में कुछ संख्या में आदि परिवार, तांग्चा परिवार, चेमा नागा आदि परिवार भी अपनी भाषा-संस्कृति के साथ असमीया बनकर असम की संस्कृति के सौंदर्य को बढ़ा रहे हैं।

बांग्लाभाषी मुसलमान : कछार के राजा और त्रिपुरा के राजा के अधीन खेती-बाड़ी करने वाले एवं राजकीय पदों पर नियुक्त लश्कर, बरभुइयाँ आदि बनकर अन्य बांग्लाभाषी इस्लामधर्मी किसान असम के बांग्लाभाषी मुसलमान हैं। ब्रिटिश शासनकाल में भी बड़ी संख्या में बांग्लाभाषी मुसलमान असम आए थे। वर्तमान का करीमगंज जिला वर्तमान बांग्लादेश के पहले के सिलहट जिला का भाग था और पहले के करीमगंज महकमा में बड़ी संख्या में बांग्लाभाषी मुसलमान रहते थे। इसलिए करीमगंज महकमा जब असम के साथ मिल गया तब उक्त बांग्लाभाषी मुसलमान असम की सीमा में घुसकर असमीया बन गए।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से वर्तमान का बांग्लादेश और पहले का पूर्वी बंगाल से झुंड के झुंड बांग्लाभाषी मुसलमान वर्तमान बांग्लादेश के ढाका, मैमनसिंह, सिलहट, पाबनाया, बगरीया, रंगपुर आदि जिलों से द्रुतगति से प्रव्रजन करके ब्रह्मपुत्र नद के बीच के उपजाऊ चर अंचलों में स्थायी रूप से बए गए। चर अंचलों में रहते हुए उनलोगों ने अपना परिचय अपने गृह जिले के आधार पर दिया। जैसे-ढाका से आने वाले ढाकिया, सिलहट से आने वाले सिलहटिया, पाबनाया जिले से आनेवाले पाबनिया, मैमनसिंह से आने वाले मैमनसिंहिया, रंगपुर या भाँटि अंचल से आनेवाले लोग अपने आपको भाटिया कहने लगे तथा सर्वसाधारण असमीया समाज में उन्हें 'पमुआ' मुसलमान के रूप में जाना जाने लगा।

यही है विचित्रमय असम। हमलोग सभी असमीया के रूप में गौरवान्वित हैं। इस प्रकार वैचित्रमय असम अनेकता के बीच एकता का तीर्थस्थान है।

●●●

आहोम

आहोम लोग मूल रूप से ताई जाति के लोग हैं। असम में आने के बाद से ही उन्हें आहोम नाम से संबोधित किया गया। इन लोगों का मूल निवास स्थान चीन देश के दक्षिण पश्चिम अंचल, वर्तमान यूनान प्रांत के मूंगमाउ राज्य में था। इन लोगों को ताई लोगों के बीच बड़े गुट के तौर पर जाना जाता है। इन लोगों के पूर्वज सन् 1228 में चुकाफा राजा के नेतृत्व में पाटकाई पर्वत पार कर पूर्वी असम या तत्कालीन सौमार में आए और राज्य की स्थापना की। बाद में धीरे-धीरे पश्चिम की तरफ मनाह तक राज्य का विस्तार कर 600 वर्षों से अधिक समय तक राज्य का शासन किया। असम में आहोम साम्राज्य के संस्थापक और असम की नींव के निर्माता स्वर्गदेव चाउलुंग चुकाफा थे। वर्तमान के चीन के मुंमाओलुंग में सन् 1192 में चुकाफा का जन्म हुआ और उन्होंने 77 वर्ष की आयु में सन् 1268 में तत्कालीन राजधानी चराइदेव में अंतिम सांस ली। उनके पावन स्मृति में प्रत्येक वर्ष 2 दिसंबर को चुकाफा दिवस या असम दिवस के रूप में मनाया जाता है। इन लोगों की आदिम भाषा ताई या शान थी; लेकिन कालक्रम में विभिन्न वजहों से खास तौर पर राज्य विस्तार के साथ देश की जनसंख्या में वृद्धि होने पर प्रजा की सुविधा के बारे में सोच कर उन लोगों ने अपनी भाषा की जगह असमीया भाषा को स्वीकार किया, लेकिन प्राचीन पूजा-पाठ, रीति-नीति संबंधी समस्त कार्य उनके पंडित पुरोहित ताई भाषा में ही करते रहे और आज भी कर रहे हैं। इसी तरह राज्य के कार्य में भी 18वीं शताब्दी तक आहोम भाषा का प्रचलन था। वर्तमान समय में ताई भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या पूर्वोत्तर भारत के असम से लेकर म्यांमार, दक्षिण चीन, थाईलैंड, लाओस, कंबोडिया, वियतनाम तक फैल गई है। आहोम के अलावा असम में खामती, फाके, खामयांग, आइतन और तुकंग नामक पांच ताई जनगोष्ठीय लोग रहते हैं।

जनसंख्या

ताई आहोम उन्नयन परिषद ने सन् 2012-14 में सर्वेक्षण चलाया था, जिसके अनुसार वर्तमान समय में आहोम लोगों की जनसंख्या लगभग 25 लाख है।

निवास-स्थान

उनका निवास स्थान वर्तमान समय में चराईदेव, शिवसागर, डिब्रुगढ़, जोरहाट, गोलाघाट, लखीमपुर, धेमाजी और तिनसुकिया जिले में है। इसके अलावा गुवाहाटी शहर सहित अन्य शहरों में भी काफी आहोम लोग रहते हैं।

जीविका

पिछली शताब्दी के अंतिम हिस्से तक उनकी मुख्य जीविका शालि धान की खेती थी। समान रूप से वे गाय, भैंस, सूअर, बकरी, मुर्गी का पालन करते थे। आजकल काफी लोगों ने जीव-जंतु पालना छोड़ दिया है। फुर्सत के समय में पुरुष रेशम कीट का पालन करते थे। महिलाएं एंडी-मुगा, रेशम-कीट पालन करती थीं। सूता काटकर घर में ही वे जरूरी कपड़े का इंतजाम करती थीं। साग-सब्जी की एक बाड़ी, केले-सुपारी का एक बगीचा, एक लकड़ी की बाड़ी आहोम लोगों के निवास स्थान का स्वाभाविक मंजर होता था, जिनके पास जमीन थी वह घर के परिसर में ही खेती करते थे। वर्तमान समय में उनको छोड़कर चाय खेती करने लगे हैं।

घर-द्वार

पहले वे लोग मचान घर में रहते थे, लेकिन बाद में जमीन में बुनियाद खोदकर दो मंजिला घर बनाने लगे। अक्सर घर के खंभे लकड़ी के होते थे, दीवारें बांस की होती थी और फूस का छप्पर होता था। आजकल सब के पास पक्के मकान हैं। रहने के घर के दो हिस्से होते हैं-बड़ा घर और अतिथि घर। बड़ा घर के अंदर एक रसोई होता है। पिछले वाले कमरे का उपयोग खाने के कमरे के रूप में किया जाता है। बाकी कमरे का उपयोग स्त्रियों के शयनकक्ष के रूप में किया जाता है। अतिथि घर का उपयोग अतिथियों के बैठने के तौर पर और सोने के तौर पर किया जाता है। इसके अलावा प्रत्येक घर के पास एक या उससे अधिक भंडार, एक मवेशी घर, एक मुर्गी का बाड़ा, एक बत्तख बकरी का बाड़ा और एक सूअर का बाड़ा रहता है।

खाद्य अभ्यास

उन लोगों का मुख्य भोजन भात है। भात के साथ स्वादिष्ट व्यंजन पकाना उनकी एक संस्कृति है। अक्सर वे लोग एक खट्टा साग या किसी दाल का व्यंजन या खार का व्यंजन विभिन्न सब्जियों, मछली या मांस आदि को भूनकर या उबालकर खाना पसंद करते हैं।

पेय पदार्थ

आहोम लोग दैनिक जीवन में जिन पेय पदार्थों का उपयोग करते हैं, उसका नाम है लाउ या साज। अक्सर लाही और बड़ा चावल को मिश्रित कर उबाल कर उसके साथ और हूरपीठा को मिलाकर लाउ तैयार किया जाता है। इन लोगों का एक और पेय पदार्थ चाय है।

धर्म-विश्वास

आहोम लोग पूर्वजों की अवस्थिति पर विश्वास करते हैं और पूर्वजों की पूजा आराधना करना उनका प्रधान धर्म था। मृत माता-पिता सहित 14 पुरखों को डाम के तौर पर मानकर स्तर स्तर पर नियमित रूप से पूजा करते हैं। 14 पुरखों के ऊपर के पूर्वजों को 'फी' देवता के तौर पर 'मे-दाम मे-फी', 'उमफा', 'साइफा' आदि पूजा की जाती है। इसके अलावा रिकखन, जासिंगफा, पफीसु आदि पूजा भी होती है। इन सभी पूजा में जीव का उत्सर्ग किया जाता है और ताई भाषा में स्तुति-वंदना की जाती है। वैसे वैष्णव धर्म ग्रहण करने के बाद से उनके तीन पंडित गुट महन-देऊधाई-बाईलुंग को छोड़कर बाकी लोगों ने इस पूजा-आराधना को छोड़ दिया है।

विवाह

आहोम लोगों के लिए विवाह वंश रक्षा के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण मांगलिक अनुष्ठान है। वे लोग 'सकलंग' और 'देऊबान' पद्धति से विवाह संपादित करते हैं।

साहित्य

इन लोगों का शब्दकोश, इतिहास, आख्यान, नीतिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, पूजाविधि आदि आहोम भाषा में रचित कई भोजपत्र ग्रंथ मौजूद हैं।

संस्कृति

इतिहास चर्चा आहोम लोगों की अनूठी संस्कृति है। इसके अलावा कृषि, स्थापत्य, शिल्पकला, रेशम और बुनाई शिल्प, पोशाक, अलंकार, खाद्य-प्रस्तुति, विश्वास-अविश्वास आदि का असमीया संस्कृति के सभी पहलुओं पर आहोम लोगों का सांस्कृतिक प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर शालि खेती का प्रचलन, पौद की सहायता से धान रोपने, गोटिया भैंस की मदद से हल जोतना, पगडंडी बनाकर खेत में सिंचाई की व्यवस्था करना, डिब्बे में बीज भरकर रखना इत्यादि। स्थापत्य कला के क्षेत्र में तूप वाले और फूल वाले घर, मचान वाले भंडार, परतदार और फाटक वाली बाड़ी इत्यादि आहोम लोगों की संस्कृति है। मुगा और रेशम के कीट पाल कर उससे सुता निकालकर कपड़ा बुनकर पोशाक तैयार करना, विभिन्न साग-सब्जी और मछली-मांस के व्यंजन तैयार करने के अलावा कई पहलुओं में उनकी संस्कृति का प्रभाव असमीया संस्कृति में मौजूद है।

उपसंहार

धन जन सहित असम को एक शक्तिशाली देश के हिसाब से निर्मित करने और यहां रहने वाले सभी लोगों को एक शासन के अधीन लाने में और एक असमीया जाति के हिसाब से निर्मित करने के अलावा

असम में रहने वाली विभिन्न जातियों-जनजातियों के बीच संपर्क-भाषा के तौर पर असमीया भाषा का प्रचलन करने में आहोम लोगों का योगदान सबसे ज्यादा है।

आहोम के कुछ उल्लेखनीय व्यक्ति के बारे में नीचे चर्चा की गई है।

लाचित बरफुकन

असम के इतिहास में देशप्रेमी वीर के तौर पर कहने पर विशेष रूप से लाचित बरफुकन का नाम लिया जाता है। ऐतिहासिक आहोम-मुगल के शराईघाट युद्ध में लाचित बरफुकन ने नेतृत्व किया था। मुगल के खिलाफ लाचित के युद्ध संचालन की कहानी में जो जातीय प्रतिबद्धता, अनुशासन और एकमुखी कार्यशैली का उदाहरण मिलता है, असम के इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। लाचित बरफुकन का जन्म 1622 में हुआ था। तिथि और स्थान के संबंध में जानकारी नहीं होने पर भी माना जाता है कि गड़गांव के आसपास उनका जन्म हुआ। उनके पिता का नाम मोमाई तामुली बरबरुवा था। सबसे छोटे लाचित के 3 बड़े भाई थे। उनके नाम थे-लालुकसोला, मरंगी और भारधरा। बचपन से ही लाचित अत्यंत साहसी थे। ईमानदारी और स्पष्टवादिता उनकी खासियत थी। उनके पिता ने उनको सही शिक्षा देने के लिए पूरी कोशिश की थी। बचपन से ही लाचित को अपने पिता के कार्यों को देखने का मौका मिला था। बरबरुवा के तौर पर स्वर्गदेव के दरबार, न्यायालय आदि में पिता के कार्य, विभिन्न अधिकारियों और मंत्रियों के साथ विचार-विमर्श को लाचित ने खुद देखा था। कुल मिलाकर पिता के साथ राज कार्य का निरीक्षण कर लाचित को बहुत कुछ सीखने का मौका मिला था।

कम समय में ही अपनी दक्षता के बलबूते पर लाचित को राजशाही में नियुक्त किया गया था। शुरू में राज्य मंत्री महोदय ने लाचित को हांसतीधरा तामुली के तौर पर नियुक्त किया। इसके कुछ दिनों बाद उन्हें घोड़ा बरुवा की पदवी मिली। इस पद पर कार्य करते समय उन्होंने राजा के घुड़साल के कई घोड़ों की निगरानी कर उनको प्रशिक्षित किया था। इसके बाद डोलिया बरुवा और सिमलुगुड़िया फुकन के पद पर उनको नियुक्त किया गया। उसी समय मीरजुमला ने असम पर हमला बोल दिया था। तब लाचित दिखौमुख में दुश्मन की सेना से लड़े थे और अपनी दक्षता का प्रदर्शन किया था। लाचित की पारदर्शिता और पराक्रम का अंदाजा लगाकर उस समय के आहोम राजा चक्रधर सिंह ने लाचित को मुख्य सेनापति बनाया था और बरफुकन पद पर नियुक्त किया।

इसके कुछ दिनों बाद 20 अगस्त 1667 को आहोम-मुगल के बीच युद्ध की शुरुआत हुई। असमीया सेना दो भागों में बंटकर ब्रह्मपुत्र के रास्ते आगे बढ़ने लगी। मुगलों के साथ पहला युद्ध ब्रह्मपुत्र के उत्तर की तरफ बांहबाड़ी में शुरू हुआ। वहां एकत्रित मुगलों पर हमला कर आहोम सेना ने युद्ध की शुरुआत की। उसके बाद दक्षिणी किनारे के काजली में स्थित मुगलों के दुर्ग पर भी आहोम सेना ने कब्जा कर लिया। ईटाखुली में जब मुगल छावनी बना कर अपनी ताकत बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे, तब उसे भी आहोम सेना ने तहस-नहस कर दिया और मुगल सेना को मनाह नदी के उस पार तक खदेड़ दिया। मुगलों के साथ हुए इस युद्ध में

हासिल की गई जीत से असमीया सेना का आत्मविश्वास बढ़ गया। सेनापति के तौर पर लाचित बरफुकन की भी सराहना की गई।

असमीया सेना के हाथों हुई मुगलों की पराजय की खबर मुगल सम्राट औरंगजेब तक पहुंची। खबर मिलते ही शर्म और अपमान के मारे उसने बदला लेने का निश्चय किया। औरंगजेब के आदेश पर राम सिंह के नेतृत्व में एक विशाल सेना ने फिर असम पर आक्रमण किया। लाचित बरफुकन अच्छी तरह जानते थे कि शत्रु की ताकत चाहे जितनी ज्यादा हो, असमीया सैनिक और सेनापति अपने दायित्व का सही ढंग से पालन करेंगे तो वे मुगलों को जरूर पराजित करेंगे। उन्होंने यह निर्देश भी जारी किया अगर कोई अपने दायित्व का ठीक से पालन नहीं करेगा या अपने कर्तव्य की अवहेलना करेगा तो यह बात पता चलते ही उसका सिर कलम कर दिया जाएगा।

लाचित ने यह भी निर्धारित कर दिया था कि सैनिक किस किस स्थान पर मौजूद रहेंगे। युद्ध की संभावित तिथि नजदीक आने के साथ ही लाचित अक्सर सेनानायकों के साथ बातचीत करने लगे ताकि रणनीति और अन्य व्यवस्था पर उनकी नजर रहे और सेना नायकों को भी उत्साहित किया जा सके। अमीनगांव के पास एक दुर्ग बनाने का दायित्व लाचित के एक मामा को सौंपा गया था। मामा की लापरवाही की वजह से दुर्ग के निर्माण का काम अधूरा रहने पर लाचित क्रोधित हो उठे और तलवार निकाल कर एक ही झटके में मामा का सिर काट कर बोले–'देश से बढ़कर मामा बड़ा नहीं होता।' लाचित की रौद्र मूर्ति देखकर दुर्ग के काम करने वाले लोग डर गए और काफी मेहनत कर उन्होंने रात के अंदर ही दुर्ग का निर्माण पूरा कर लिया। उस दुर्ग को अब 'मोमाई कोटा गड़' कहा जाता है। इसके अलावा 'देश से बढ़कर मामा नहीं होता' आज भी श्रेष्ठ देशप्रेममूलक वाक्य माना जाता है।

आहोम और मुगल के बीच अंतिम लड़ाई को शराईघाट युद्ध कहकर पुकारा जाता है। मार्च 1671 में यह युद्ध हुआ था। उस समय लाचित काफी बीमार हो गए थे। उधर मुगलों के हमले की बात सुनकर वे बेचैन हो उठे। राम सिंह ने जलपथ से बढ़कर दारू आंधारुबालि गढ़ पर कब्जा कर लिया और गुवाहाटी की तरफ बढ़ने की योजना बनाने लगे। योजना के अनुसार मुगल सैनिक आकर नौका से तोप के गोले बरसा असमीया सैनिकों की नौकाओं को नष्ट करने लगे। उस हमले का सामना नहीं करने की वजह से असमीया सैनिकों की नाव पीछे हटने लगी। असमीया सेनापति के नेतृत्व में असमीया सैनिकों की नाव मुगलों को खदेड़ कर अश्वक्लांत तक पहुंच गई। उसके बाद मुगलों ने फिर हमला शुरू कर दिया और मुगलों की नौकाएं आगे बढ़ने लगी। आहोम सेनापति लाचित बरफुकन की तबीयत खराब होने की वजह से असमीया सैनिकों का मनोबल कुछ कमजोर हो गया था। मुगलों के प्रबल आक्रमण और उनको आगे बढ़ते देख असमीया सैनिकों ने युद्ध जीतने की उम्मीद छोड़ दी। असमीया सैनिक युद्ध छोड़कर पीछे की तरफ जाने लगे। लाचित बीमार होने पर भी युद्ध की गतिविधि पर नजर रख रहे थे। उन्होंने देखा मुगलों की नौकाएं उत्तर किनारे जुरिया से अश्वक्लांत तक पहुंच गए। वे बेचैन हो गए। उधर उन्हें तेज बुखार था। वह

ठीक से खड़े भी नहीं हो सकते थे। तभी उन्होंने देखा कि मुगलों की नौकाओं की संख्या बढ़ती जा रही है और आगे बढ़ती जा रही है। और असमीया सैनिकों की नौकाएं पीछे की तरफ बढ़ रही हैं। वे समझ गए कि एक पल भी देर नहीं की जा सकती। वह आगे बढ़ते गए। पीछे हट रहे सैनिकों की नौकाओं को देखकर मल्लाहों ने सोचा कि लाचित भी लौट जाएंगे। इसलिए उन्होंने लौटने के लिए नौका को खोला। लाचित चिल्ला उठे–क्या कर रहे हो तुम लोग? स्वर्गदेव ने मुझे गुवाहाटी की रक्षा करने के लिए शत्रु के साथ लड़ने का दायित्व दिया है। मैं युद्ध छोड़कर क्या पत्नी, पुत्र के पास जाऊंगा और तुम लोग मुझसे बिना पूछे नाव पीछे की तरफ क्यों ले जा रहे हो? गुस्से के वेग में लाचित बरफुकन अस्वस्थ होने पर भी शक्तिशाली हो उठे। उन्होंने तलवार को जोर से पटक कर चार मल्लाहों को पानी में फेंक दिया। वे लोग किसी तरह जान बचाकर बाहर आए। बाद में उन्होंने उनको नाव पर उठा लिया। नहीं तो नाव कौन चलाता? एक दूसरे को चिल्लाकर कहते हुए बात इस तरह प्रचारित हो गई कि लाचित बरफुकन ने युद्ध छोड़कर जाने वालों को मारना शुरू कर दिया है, पकड़ कर नदी में फेंकना शुरू कर दिया है। इसके साथ ही कुछ डरकर और कुछ लोग उत्साह के साथ वापस आने लगे। मुगलों की नाव की तरफ आगे बढ़ते हुए लाचित बरफुकन की सात नौकाओं के साथ चारों तरफ से असमीया नौका तेजी से बढ़ने लगी। नाव में सवार असमीया सैनिकों ने आक्रमण किया। किनारे पर मौजूद सैनिकों ने भी मुगल की नौकाओं पर तोप के गोले बरसाने शुरू कर दिए। आगे बढ़ रहे मुगल सैनिक चकित हो गए। हालात इस तरह बदल जाएंगे या एक वीर सेनापति युद्ध की गति को बदल देंगे मुगलों ने ऐसा सोचा भी नहीं था।

असीम साहस के साथ असमीया सैनिक नौकाओं को लेकर मुगलों की नौकाओं के बीच घुस गए और दोनों पक्षों के बीच प्रचंड युद्ध शुरू हो गया। मूल रूप से युद्ध तीनस्थानों पर हुआ–अश्वक्लांत, ईटाखुली और कामाख्या पहाड़ की तलहटी में। युद्ध की सुविधा के लिए आहोम सैनिकों ने एक के बाद एक नाव को जोड़कर ब्रह्मपुत्र के ऊपर एक पुल ही तैयार कर दिया। इससे यह फायदा हुआ कि तेजी से सैनिक तोप आदि हथियार का संचालन करने लगे। लाचित ने सैनिकों और सेनापतियों के बीच एक ऐसा भाव पैदा कर दिया था कि युद्ध को जीतने पर ही असमीया लोगों की भूमि, स्वाधीनता और प्राण की रक्षा होगी। उधर शुरुआत में लाचित काफी बीमार थे, वह युद्ध नहीं कर सकते थे–यह बात सोचकर मुगल उत्साहित हुए थे और असमीया सैनिकों का उत्साह और आत्मविश्वास घट गया था, लेकिन युद्ध में लाचित बरफुकन की भागीदारी और प्रतापी प्रदर्शन से दृश्य बदल गया। देखा गया कि तीनों स्थानों पर मुगल सेना पराजित हुई और मुगलों की नौकाएं पीछे हटने लगीं। असमीया सैनिकों ने मुगलों को पांडू तक खदेड़ दिया और युद्ध में असमीया सेना की भारी जीत हुई। इस युद्ध को शराईघाट युद्ध के नाम से जाना जाता है।

5 अप्रैल 1671 को राम सिंह वापस लौटने लगे। हाजो छोड़ने से पहले उन्होंने वहां हयग्रीव माधव मंदिर में पूजा की। लौटते समय उन्होंने वहां के ब्राह्मणों से कहा–'लाचित बरफुकन मामूली वीर नहीं है। मुझे कहीं भी घुसने की जगह ही नहीं मिली।'

शराईघाट युद्ध में असमीया सेना की जीत की एक वजह यह थी कि प्रत्येक सैनिक अलग-अलग तरह के काम करते थे। जरूरत पड़ने पर वे नाव चलाते थे, तीर भी चलाते थे, दुर्ग भी बनाते थे। इस तरह एक एक सैनिक दस सैनिक के बराबर हो गए थे। शत्रु पक्ष होने पर भी राम सिंह ने असमीया सैनिकों की ऐसी कर्मठता, साहस और कौशल की प्रशंसा करते हुए कहा था-'प्रत्येक असमीया सैनिक नाव चलाना, तीर चलाना, गड्ढा खोदना, तोप चलाना जानते हैं। इस तरह प्रत्येक कार्य में पारंगत सैनिक मैंने भारत में कहीं देखा नहीं।' राम सिंह ने यह भी कहा था कि असम देश पर जीत हासिल करना किसी भी राजा के लिए असंभव है।

शराईघाट युद्ध के कुछ दिनों के बाद गुवाहाटी में लाचित बरफुकन की मृत्यु हो गई। शायद बीमारी की गंभीर हालत में भी युद्ध करने की वजह से ऐसा हुआ। उनकी मृत्यु से युद्ध जीतने के आनंद पर शोक की छाया पड़ गई थी। इस देशप्रेमी वीर की तुलना किसी से नहीं की जा सकती। निस्वार्थ देशप्रेम और सफल नेतृत्व के संबंध में जिक्र होने पर आहोम-मुगलों के युद्ध में लाचित बरफुकन के नेतृत्व की कहानी को याद करना ही पड़ेगा।

सती जयमती

सती जयमती कुंवरी के समय में असम की राजनीतिक स्थिति अत्यंत जटिल थी। मंत्री लालूक सोला उस समय असम का भाग्य विधाता बन गया था। दूसरे उपयुक्त राजकुमारों के मौजूद रहने पर भी लालूक सोला ने शामगुड़िया गुट के 14 वर्षीय सरु गोहाईं को सन् 1679 में कार्तिक महीने में असम का राजा बनाया था। आहोम के अनुसार सुलिकफा और हिंदू के अनुसार रत्नध्वज सिंह नाम रखा था। उम्र कम होने की वजह से प्रजा के बीच राजा को ल'रा-राजा नाम से पुकारा गया।

लालूक सोला ने सुलिकफा को राजा बना कर स्वर्गदेव सुदेफा को जहर देकर मार दिया। सन् 1679 में आतन बूढ़ागोहाईं को भी अगहन महीने में परिवार सहित मार डाला। आतन के स्थान पर दिलीहियाल के दीघला लांगी को बूढ़ागोहाईं बनाया। जबंग को खत्म कर मादुरी के लाई थेपेना को बरगोहाईं बनाया।

लालूक ने अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए लड़ा राजा को रिश्ते की डोर में भी बांधा। अपनी 5 साल की लड़की को 14 साल के राजा के साथ विवाह करवा कर राजरानी बना दिया। बंगाल के नवाब से आश्वासन पाकर लालूक राजा बनने के लिए लालायित हो उठा।

राज परिवार के चार गुटों में राजकुमार मौजूद थे। ऐसी हालत में लालूक की आकांक्षा की पूर्ति नहीं हो सकती थी और उसे राजकुमारों से खतरा नजर आने लगा था। कौन कब विद्रोह कर सिंहासन छीन लेगा इसका कोई ठिकाना नहीं था।

लालूक ने लड़ा राजा से कहा उपयुक्त और बालिग कई राजकुमारों की मौजूदगी में उसने उनको राजा बनाया, यह बात राजकुमारों को सहन नहीं हो रही है। कौन राजकुमार कब स्वर्गदेव की जान ले ठीक नहीं। रास्ता साफ करने के लिए राजकुमारों का अंग भंग कर उनकी योग्यता छीननी पड़ेगी और ऐसा करने से पहले

अधिकारियों को हटाना पड़ेगा। लड़ा राजा के दिमाग में लालूक ने अपने तर्क से अपनी बात बैठा दी। इसके साथ ही लालूक ने राजकुमारों को मारना शुरू कर दिया।

तुंग–खूंगियागुट के लांगी गदापानी को छोड़कर सभी गुट के राजकुमारों को लालूक ने पकड़कर अंग भंग करवा दिया या मार डाला। गदापानी को लालूक के गुप्तचर पकड़ नहीं पाए, तब लालूक का खाना–पीना हराम हो गया। मंत्री लाई थेपेना बरगोहाईं गदापानी के ससुर और निचले असम के बन्दर बरफुकन उनके बहनोई थे। गदापानी को पकड़ा नहीं जा रहा था, न ही इस बात का पता लालूक को चल रहा था कि वे कहां थे। गदापानी की पत्नी जयमती कुंवरी थी।

गदापानी और जयमती अपने दो छोटे बच्चों के साथ अपने निवास स्थान तुंगखूंग में थे। लालूक के हाथों राजकुमारों की हत्या की खबर पाकर उन्होंने अपने दोनों लड़कों को नगा राज्य के किसी गुप्त स्थान पर रख दिया था। जयमती ने अपने पति से भी कहीं छिप जाने के लिए कहा था, लेकिन गदापानी ऐसी कायरता के लिए तैयार नहीं हुए। जयमती ने कुंवर को राज्य और प्रजा की दुहाई देकर समझाया कि अगर वे नहीं रहेंगे तो राज्य भी नहीं रहेगा। इस तरह जयमती की विनती सुन कर गदापानी कुंवर भागने के लिए तैयार हुए। गदापानी भाग गए। नगा का वेश धारण कर नगा पहाड़ की तरफ चले गए।

राज्यसभा में लाकर स्वर्गदेव का आदेश सुना कर लालूक ने जयमती से गदापानी के बारे में पूछा, गदापानी कहां है? कुंवरी ने कोई उत्तर नहीं दिया और चुप रही। लालूक ने जल्लाद को आदेश दिया जयमती को जेरेंगा के इलाके में निर्जन स्थान पर रख कर किसी भी तरह से जयमती के मुंह से गदापानी की खबर निकालनी पड़ेगी।

जल्लाद जयमती को जेरेंगा पथार के निर्जन स्थान तक ले गए। जल्लाद ने अनेक तरीके से समझा कर, डरा कर, फुसलाकर, उकसा कर गदापानी कुंवर के ठिकाने के बारे में पूछने की कोशिश की और जब कुछ पता नहीं चला तो जल्लाद कुंवरी को दंडित करने लगा। जयमती सभी दंड को सहनशील वसुधा की तरह चुपचाप सहती रही। इस तरह 14 दिन निर्जन जेरेंगा में दंड सहने के बाद सन् 1679 के 13 चैत के दिन गुरुवार दशमी चांद के उगने से पहले सती जयमती नश्वर देह का त्याग कर नरपिशाच के सान्निध्य से अन्तर्धान हो गई। अपने पीछे वह नारी के सीमाहीन मनोबल की महिमा, स्वामी की रक्षा के लिए स्त्री के महान त्याग का आदर्श और असमीया नारी का पवित्र्य उदाहरण छोड़ गई। पृथ्वी पर ऐसा उदाहरण विरल है।

सती जयमती के ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय रूद्र सिंह ने अपनी माता की स्मृति को अमर बनाने के लिए जेरेंगा पथार में सन् 1697 में सागर समान विशाल जलाशय बनाया और उसका नाम जय सागर रखा। इसके 5 साल के बाद रुद्र सिंह स्वर्गदेव ने माता जयमती के खून से पवित्र बने जेरेंगा पथार तक गड़गांव से राजधानी स्थानांतरित की। उसका नाम रखा रंगपुर। उसके बाद स्वर्गदेव ने पुरनि आली और बर आली के बीच माता के नाम पर मैदाम का निर्माण किया। इस पवित्र मैदाम ने अभी भी सती जयमती की स्मृति को जीवंत कर रखा है।

असम के प्रथम शब्दकोश प्रणेता टेंगाई महन

पंडित टेंगाई महन का जन्म सन् 1715 में चराईदेउ के महंग-माइसेऊ परिवार के तकन्वरी के घर में मुहुंग हुआ था। वे तीन भाइयों में सबसे छोटे थे।

आहोम शासन के अंतिम हिस्से में जागरूक और बुद्धिजीवी लोगों को संकट का सामना करना पड़ रहा था। इसकी वजह थी आहोम दरबार में विभिन्न कारणों से आहोम भाषा की जगह असमीया भाषा का प्रचलन बढ़ता जा रहा था। दूसरी तरफ आहोम भाषा धीरे-धीरे उपेक्षित होने लगी थी, जिसकी वजह से दैनिक बातचीत में उसका प्रचलन घटता जा रहा था। ऐसी हालत में जागरूक बुद्धिजीवी आहोम लोग चिंतित हो गए कि कहीं एक समय भाषा पूरी तरह लुप्त न हो जाए और ऐसा होने पर असम से एक जीवंत सभ्यता इतिहास से लुप्त हो जाएगी, क्योंकि असम में आते समय आहोम लोग अपने साथ साहित्य, इतिहास, धर्म, नैतिकता, ज्योतिष, दर्शन आदि विषयों की अनेक पुस्तकें लेकर आए थे। इसके अलावा बाद में शासन के दौरान विभिन्न विषयों की अनेक पुस्तकों की रचना हुई थी। ऐसी पुस्तकों की रचना एक समय तक केवल आहोम भाषा में ही हुई थी। आहोम सभ्यता संस्कृति की सारी बातें इन ग्रंथों में ही सिमटी हुई थी। भविष्य की पीढ़ी आहोम भाषा सीख सके इसके लिए उन्होंने आहोम शब्दकोश रचने का काम हाथ में लिया, क्योंकि भाषा को जिंदा रखने के लिए सबसे पहले भाषा के शब्दों को जिंदा रखना पड़ेगा। इसके अलावा सभी इस भाषा को सीख सकें इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने इस काम को शुरू किया। सन् 1995 में गौरी नाथ सिंह के शासन के अंतिम हिस्से में उन्होंने 'बड़काकत हू मूंग पूथी' नामक इस शब्दकोश की रचना की। भोज पत्र पर लिखे इस ग्रंथ के 42 पन्ने थे। इसकी माप 40-10 सेंमी थी। हरेक पृष्ठ पर 8-9 पंक्तियां हैं। इसमें प्रत्येक आहोम शब्द के सामने संभावित असमीया अर्थ दिए गए हैं। प्रत्येक शब्द के विपरीत साम बा दिया है जिसका अर्थ है यानी। उदाहरणस्वरूप का साम बा काउरीक (कौए को का कहते हैं)। का साम बा जावर (जाने को का कहते हैं)। खा साम बा खेरक (फूस को खा कहते हैं) इत्यादि। इस तरह शब्दों को शामिल किया गया है। असमीया शब्दों के अंत में क और र वर्ण का व्यवहार किया गया है। इसका कारण है क वर्ण जिनमें है, वह विशेषण है और र वर्ण जिसमें दिया गया वो क्रिया है।

सन् 1912 में कोच बिहार के कैलाश चंद्र सेन नामक एक बाबू से हेमचंद्र गोस्वामी ने टेंगाई महन के लिखे बरकाकत हू मूंग ग्रंथ का उद्धार किया और इतिहास एवं पुरातत्व विभाग को सौंप दिया। सन् 1932 में नंदनाथ फुकन ने इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए संपादन का काम शुरू किया। महन के ग्रंथ का संपादित रूप असम इतिहास और पुरातत्व विभाग द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित आहोम लेक्सिकन का एक भाग है।

बर काकत हू मूंग के अलावा लिपिबद्ध की गई 40 से अधिक उसके मिली है। टेंगाई महन को असम का प्रथम शब्दकोष प्रणेता माना जाता है। आहोम भाषा की पुस्तकों का अनुवाद करने के लिए अंग्रेज अधिकारी भी उनको विदेश ले गए थे। इस महान शब्दकोशकार का देहांत सन् 1825 में डिब्रुगढ़ जिले के खुवांग में हुआ।

पंडित प्रवर डंबरूधर देऊधाई फुकन

अक्टूबर, 1912 में एक शुभ क्षण में तत्कालीन चराईदेऊ महकमा के अंतर्गत खालैघोगूरा मौज़ा के अंतर्गत आखैया देऊधाई गांव के एक मध्यवर्गीय परिवार में डंबरूधर देऊधाई फुकन का जन्म हुआ। पिता का नाम गंगाराम फुकन और माता का नाम सादई फुकन था। पिता गंगाराम फुकन शिक्षा अनुरागी व्यक्ति थे। शुरू में लाकुवा नाहर हाबी चाय बागान में किरानी के तौर पर नौकरी करते हुए अंत में गांव के मुखिया बने थे। डंबरूधर फुकन ने एम.वी. स्कूल की पढ़ाई करने के बाद आगे की पढ़ाई न करते हुए ताई भाषा-संस्कृति का अध्ययन करना शुरू किया। उनके बड़े भाई सरुनाथ देऊधाई फुकन और नन्दनाथ फुकन घर में ही उन्हें भाषा शिक्षा दे रहे थे। कम समय के भीतर ही ताई भाषा में पारंगत होने के बाद फुकन एक ताई पंडित के रूप में विख्यात हुए। घर में रहकर खेतीबारी करते हुए ताई भाषा का अध्ययन करते समय असम इतिहास और पुरातत्व विभाग के प्रमुख डॉ. सूर्यकुमार भूइयां सन् 1931 में भाषा के विशेषज्ञ के तौर पर उनको आहोम इतिहास का अनुवाद करने के लिए गुवाहाटी लेकर गए। असम इतिहास और पुरातत्व विभाग में 4 सालों तक काम करने के बाद सन् 1935 में स्वेच्छा से अवकाश लेकर घर लौट आए। उनके नेतृत्व में सन् 1936 में पाटसाको के भेसेली जलाशय के किनारे असम स्तरीय फुरलांग सम्मेलन आयोजित हुआ। सन् 1963 में भारत में बौद्ध संस्कृति में फ्रालुंग संस्कृति का अहम योगदान शीर्षक संगोष्ठी के लिए बोधगया के विश्व बौद्ध संस्कृति सम्मेलन में शामिल हुए। सन् 1964 में ताई भाषा संस्कृति के उद्धार के लिए उन्होंने लकड़ी बांस से एक विद्यालय भवन का निर्माण किया। यही केंद्रीय ताई अकादमी, पाटसाको है। सन् 1975 में अखिल असम बौद्ध फ्रालुंग संघ की स्थापना हुई। सन् 1981 में दिल्ली में आयोजित प्रथम अंतर्राष्ट्रीय ताई शिक्षा सम्मेलन में भाग लेकर 19 देशों के ताई पंडितों के साथ आहोम भाषा के संबंध में विचार-विमर्श किया था। इस अधिवेशन से लौटकर धेमाजी के प्रमोद भवन में 8 अप्रैल, 1981 को पूर्वांचल ताई साहित्य सभा का गठन किया और संस्थापक अध्यक्ष बने। सन् 1984 में बैंकाक में आयोजित द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय ताई शिक्षा सम्मेलन में आमंत्रित होकर 1 महीने तक थाईलैंड के सियांगमाई शहर में रहकर ताई भाषा-संस्कृति की साधना की। उनसे मिलने के लिए थाईलैंड, फ्रांस ,आस्ट्रेलिया, जर्मनी के कई गवेषक आते थे और उनके घर में रहकर शोध कार्य करते थे। ताई आहोम भाषा-संस्कृति का अध्ययन करने वाले गवेषकों में थे-डॉ. वानसप बंधुमेधा, खूंकाई श्री निमनान हेमीन्दा, प्रमाहा मालिन्य, डॉ. बेन, जॉन तारुवेल, ज्यां बारली, रानु बिसासीन, आसिफा पुण्य मेधा और अनेक बौद्ध भिक्षु और महाथेर।

असम के एक कोने से दूसरे कोने तक ताई भाषा-संस्कृति का विकास करने के लिए घूमने वाले फुकन का देहांत डिब्रूगढ़ जिले में आयोजित पूर्वांचल ताई साहित्य सभा के दसवें अधिवेशन के दूसरे दिन 15 फरवरी 1993 की शाम दिल का दौरा पड़ने की वजह से डिब्रुगढ़ चिकित्सा महाविद्यालय में हो गया।

पद्मनाथ गोहाईं बरुवा

असम के यशस्वी साहित्यकार पद्मनाथ गोहाईं बरुवाजी का जन्म 24 अक्टूबर, 1871 को उत्तर

लखीमपुर के नकारिगाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम घिणाराम और माता थी लक्ष्मीदेवी। उन्होंने उत्तर लखीमपुर से छात्रवृत्ति परीक्षा में उत्तीर्ण होकर शिवसागर हाईस्कूल में दाखिला लिया, किंतु बाद में कोहिमा हाईस्कूल से सन् 1890 में एंट्रेस परीक्षा उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए वे कोलकाता गये तथा उन्होंने वहाँ एफए तथा कानून की पढ़ाई की। उन्होंने सबसे पहले कोहिमा मध्य अंग्रेजी विद्यालय में प्रधानाध्यापक के रूप में नौकरी की तथा बाद में जोरहाट में कुछ मसय तक शिक्षक रहे। वे सन् 1893 में तेजपुर नॉर्मल स्कूल में आकर वहीं पर स्थायी रूप से रहने लगे।

पद्मनाथ गोहाईं बरुवा ने कविता, नाटक, उपन्यास आदि समेत साहित्य की सभी विधाओं में अहम् योगदान दिया। उनके प्रख्यात काव्य संकलनों – 'जुरणि', 'लीला', 'फूलर चानेकी' आदि शामिल हैं। इतिहास प्रसिद्ध नाटकों में 'जयमती', गदाधर', 'साधना', 'लाचित बरफुकन', 'बाणरजा' आदि शामिल हैं। प्रहसन नाटकों में 'गाँवबूढ़ा', 'टेटोन तामुली', 'भूत ने भ्रम' आदि शामिल हैं। उपन्यासों में – 'भानुमती' व 'लाहरी' है। आत्मजीवनी में 'मोर सोंवरणी' तथा संग्रह में 'साहित्य संग्रह' व 'जीवनी संग्रह' शामिल हैं। धार्मिक ग्रंथों में हैं – 'श्रीकृष्ण' व 'गीतासार'। इसके अलावा उन्होंने भूगोल दर्पन', 'नीतिशिक्षा', 'शिक्षाविधान' समेत कई पाठ्यपुस्तकों की रचना की थी। उनके द्वारा संपादित पत्रिकाओं में – 'बिजुली', 'आसाम बन्ति' व 'उषा' शामिल हैं।

शिवसागर में आयोजित असम साहित्य सभा के प्रथम अधिवेशन (1917) के अध्यक्ष रहें। तेजपुर के बाण रंगमंच के साथ भी वे ओतप्रोत रूप से जुड़े हुए थे। वर्षों तक तेजपुर पौरसभा के अध्यक्ष पद पर भी आसीन थे। असम व्यवस्थापक सभा के भी सदस्य चुने गये थे। उन्होंने विभिन्न साहित्यिक तथा सामाजिक अनुष्ठानों के अधिवेशनों में भी अध्यक्षता की थी। इसने महान साहित्यकार का 7 अप्रैल, 1946 को देहावसान हो गया।

कृष्णकांत संदिकै

इनका जन्म सन् 1898 को जोरहाट में हुआ था। उनके पिता का नाम राधाकांत संदिकै तथा माता थी नारायणी संदिकै। उन दोनों के वे प्रथम पुत्र थे। सन् 1913 को जोरहाट सरकारी हाईस्कूल से प्रथम विभाग में एंट्रेस परीक्षा उत्तीर्ण कर कॉटन कॉलेज में दाखिला लिया। वहाँ से प्रथम विभाग में आई.ए. परीक्षा में उत्तीर्ण होकर वे कोलकाता चले गए। कोलकाता के संस्कृत कॉलेज से सन् 1917 को उन्होंने संस्कृत विषय में प्रथम श्रेणी के सम्मान (मेजर) सहित बी.ए. की उपाधि हासिल की। सन् 1919 को कोलकाता विश्वविद्यालय से उन्होंने संस्कृत के वेद ग्रुप में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान हासिल कर एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद विलायत जाकर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से आधुनिक इतिहास विभाग में सम्मान (मेजर) के साथ सन् 1923 को एम.ए. की उपाधि हासिल की। सन् 1923–27 की अवधि में पेरिस तथा बर्लिन विश्वविद्यालय में ग्रीक, लेटिन व इटली आदि भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त किया। सन् 1930 को जोरहाट जे.बी. कॉलेज की स्थापना के साथ-साथ वहाँ के प्रथम अवैतनिक प्राचार्य के पद पर आसीन हुए। सन् 1948 को गौहाटी

विश्वविद्यालय की स्थापना होने के बाद वे प्रथम कुलपति नियुक्त हुए। सन् 1957 तक इसी पद पर बने रहे।

कृष्णकांत संदिकै एक पंडित थे। खासकर संस्कृत विषय में उनका विशेष पांडित्य था। उनके द्वारा प्रकाशित तीन अंग्रेजी ग्रंथ – श्रीहर्ष रचित नैषध चरित का अंग्रेजी अनुवाद तथा टीका संबंधी पुस्तक 'निषध चरित' (1934), सोमदेव द्वारा रचित यशगान संबंधी पुस्तक 'यशस्तिलक एंड इंडियन कल्चर' (1949) तथा मराठी लेखक प्रवर सेना द्वारा रचित पुस्तक सेतुबंधन की भाषा 'सेतुबंधन' शामिल हैं। इसके अलावा विभिन्न शोध पत्रिकाओं में भारततत्व संबंधित विभिन्न लेख भी वे लिखे थे। सन् 1951 को भारतीय प्राच्यविद्या सम्मिलन के लखनऊ अधिवेशन की अध्यक्षता भी उन्होंने की थी। सन् 1953 को वालटेयर में आयोजित आंत: विश्वविद्यालय समिति के अध्यक्ष भी रहे। असमीया साहित्य के प्रति भी उनकी विशेष रुचि थी। उन्होंने स्कूली जीवन में ही नकुल चंद्र भूयाँ आदि के साथ मिलकर हस्त-लिखित पत्रिका निकाली थी। बाँही, मिलन, आवाहन, चेतना आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी वे अनेक लेख लिखे थे। 'कृष्णकांत संदिकैर रचना संभार' में उनकी सभी रचनाएँ संगृहीत हैं। युवावस्था में उन्होंने कई गीतों की भी रचना की थी। सन् 1929 को असम छात्र सम्मिलन की अध्यक्षता की थी। असम साहित्य सभा के गुवाहाटी अधिवेशन (1937) की अध्यक्षता की। भारत सरकार ने सन् 1955 में उन्हें पद्मश्री तथा सन् 1967 में पद्मभूषण उपाधि से विभूषित किया था। गौहाटी तथा डिब्रुगढ़ विश्वविद्यालय ने उन्हें सम्मानित डी लिट की उपाधि प्रदान की थी।

उन्होंने जे.बी. कॉलेज की विज्ञान शाखा को ग्यारह हजार तथा चंद्रकांत अभिधान के लिए पचास हजार रुपए दान दिये थे। मृत्यु से ठीक पहले वे अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय को गौहाटी विश्वविद्यालय को दान स्वरूप सौंप गए।

प्रश्नावली

1. आहोम लोग पहले किस जाति के थे?
2. आहोम लोगों का मूल निवास स्थान कहां था?
3. आहोम लोगों ने कितने सालों तक असम पर शासन किया?
4. आहोम लोगों की मूल भाषा क्या थी?
5. आहोम लोगों के कुछ उत्सवों के नाम लिखो।

6. संक्षेप में टिप्पणी लिखो :

(क) लाचित बरफुकन (ख) सती जयमती (ग) टेंगाई महन

(घ) पंडित प्रवर डंबरुधर देऊधाई फुकन

(ङ) पद्मनाथ गोहाईं बरुवा (च) कृष्णकांत संदिकै

●●●

कछार की जनगोष्ठियाँ

असम के दक्षिणी हिस्से के तीन जिलों के नाम हैं–कछार, हैलाकांदी और करीमगंज। इन तीन जिलों के बीच से प्रवाहित नदी का नाम बराक है। इस नदी के नाम के साथ जोड़कर तीनों जिलों को एक साथ बराक घाटी कह कर पुकारा जाता है।

बराक घाटी में विभिन्न जातियों और उपजातियों के लोग रहते हैं। सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक क्षेत्र में विभिन्न समय घटी घटनाओं की वजह से भारत के अलग–अलग इलाकों से लोग आकर बराक घाटी में बसते रहे हैं। प्रत्येक जनगोष्ठी के लोग अपनी भाषा–संस्कृति का संरक्षण करते रहे हैं। अलग–अलग भाषा और संस्कृति के लोगों के सह–अस्तित्व के कारण मानवशास्त्री बराक घाटी को एंथ्रोपॉलजिकल गार्डन (Anthropological Garden) यानी 'नृतत्व का बगीचा' कह कर संबोधित करते हैं।

बराक घाटी में रहने वाली जनगोष्ठियों के नाम, उनके प्रमुख उत्सवों के नाम और उत्सव आयोजित होने के समय की सूची नीचे दी जा रही है।

जनगोष्ठियों के नाम	**प्रमुख उत्सवों के नाम**	**आयोजित करने का समय**
बंगीय समाज	शारदीय दुर्गापूजा (हिंदू) ईद–उल–फितर (मुसलमान)	.....
मणिपुरी	लाइ हराओबा	.....
मणिपुरी विष्णुप्रिया	रासयात्रा	नवंबर
भोजपुरी	छठ पूजा	नवंबर
असमीया	बिहू	अप्रैल
राजवंशी	बिहू	अप्रैल
राजस्थानी	महावीर जयंती	मार्च
बर्मन (डिमासा)	बुसु	जनवरी
रंगमाई नगा	गांदनाई	नवंबर/दिसंबर

मार	सिकपुई रुए	5 दिसंबर
कार्बी	कार्बी रेसो निमसो आरंग गाजे	फरवरी
रियांग	होजागिरि	नवंबर
खासिया	सेनखासी सेनग्रिते	फरवरी
भेईकेई	साऊयांग कूट	अक्टूबर
कूकी, पैते	मीमकूट	जनवरी
मिज़ो	सापसार कूट	मार्च
सिमते, गांगते	कूट	नवंबर
चकमा	बुद्धपूर्णिमा	अप्रैल
चीरू	चाकठारकम	अक्तूबर
चरै, रांखल, शाकचेप	खोदय	फरवरी
नेपाली	दशेई तिहार	सितंबर/अक्तूबर

चांद्रमास के अनुसार इस्लाम धर्म के वर्ष की गणना की जाती है। इसीलिए ईद-उल-फितर उत्सव का समय हर साल बदल जाता है। ईसाइयों का प्रमुख उत्सव बड़ा दिन 25 दिसंबर को आयोजित होता है।

बराक घाटी के लोग तीन तरह से जीविका का निर्वाह करते हैं-खेती-बारी, व्यवसाय और नौकरी।

असम फुटबॉल संघ की स्थापना सन् 1946 में हुई थी। बराकघाटी बंगीय समाज के **सुनील मोहन** संघ के संस्थापक कोषाध्यक्ष थे। उन्हें असम हॉकी संस्था का अध्यक्ष भी मनोनीत किया गया था। सन् 1951 में मुंबई में और सन् 1957 में हैदराबाद में आयोजित संतोष ट्रॉफी फुटबॉल प्रतियोगिता में असम प्रदेश फुटबॉल के वे मैनेजर थे।

महिला समाज के विकास के लिए जीवन भर **मालती श्याम** रचनात्मक काम करती रही। उनके नेतृत्व में सन् 1938 में 'नारी कल्याण समिति' की स्थापना हुई। महिलाओं की प्रतिभा का विकास करने के लिए उस समिति ने कई कदम उठाए थे। मालती श्याम की कोशिशों की वजह से बराक घाटी की महिलाओं ने सामाजिक रुकावट को लांघकर सन् 1935 में सबसे पहले रंगमंच पर कदम रखा था।

पूर्वोत्तर भारत की प्रत्येक जनगोष्ठी के लोक नृत्य की शैली उनके पूर्वजों की धरोहर है। पर्व-त्यौहार आदि में नृत्य गीत आवश्यक रूप से जुड़े हुए होते हैं। **मुकुंद दास भट्टाचार्य** ने लोक नृत्य का संरक्षण, प्रचार और प्रसार करने में उल्लेखनीय योगदान किया। उनकी आजीवन साधना को मान्यता देते हुए सन् 1997 में उनको 'बिष्णु राभा पुरस्कार' प्रदान किया गया।

असम के इतिहास और पुरातत्व गवेषणा के क्षेत्र में **राज मोहन नाथ** का योगदान अभूतपूर्व रहा है। पेशे से वे अभियंता थे, लेकिन इतिहास के अध्ययन में उनकी काफी दिलचस्पी थी। इस संबंध में उनका

उल्लेखनीय ग्रंथ है 'द बैकग्राउंड ऑफ असामीज कल्चर' (The Background of Assamese Culture)। इस पुस्तक का प्रकाशन सन् 1948 में हुआ था। श्रीमंत शंकरदेव के साहित्य और दर्शन के बारे में भी राज मोहन नाथ अध्ययन करते रहे थे। सन् 1958 में तिनसुकिया में आयोजित असम साहित्य सभा के 13वें अधिवेशन में वे इतिहास शाखा के अध्यक्ष थे।

इतिहासकार **कमालुद्दीन अहमद** करीमगंज कॉलेज के इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष थे। बाद में वे प्राचार्य भी बने थे। कमालुद्दीन अहमद ने साहित्य की रचना भी की थी। उनके संपादित साहित्य पत्र का नाम 'दिग्वलय' था। असम के शिल्प और स्थापत्य के संबंध में लिखी गई उनकी पुस्तक का नाम 'द आर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ असम' (1994) (The Art and Architecture of Assam (1994)) है। सैकड़ों शोध पत्रों के अलावा उन्होंने उपन्यास आदि रचनात्मक साहित्य की भी रचना की थी।

बराक घाटी के बर्मन समाज के कई विशिष्ट व्यक्तियों के नाम है–नंदन बर्मन, मनी चरण वर्मन, नलिनींद्र कुमार बर्मन और अनिल कुमार बर्मन।

राजमंत्री वंश के **नंदलाल बर्मन** समाज सेवक थे। एक प्रभावशाली व्यवसायी के रूप में उन्होंने समाज में पहचान बनाई थी। बर्मन समाज के लोग उनको आदर के साथ 'मिलाउ' और दूसरे समाज के लोग 'महाजन' कह कर संबोधित करते थे। शिक्षा अनुरागी नंद लाल बर्मन ने ग्रामीण विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए कछार जिले के बरखला में सन् 1901 में एक स्कूल की स्थापना की थी। स्कूल का वर्तमान नाम 'राजा गोविंद चंद्र मेमोरियल स्कूल' है।

डिमासा भाषा तत्व के बारे में पहली पुस्तक की रचना मनी चरण बर्मन ने की थी। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में प्रकाशित पुस्तक का नाम 'हैड़िम्ब भाषा प्रवेश' है।

नलिनींद्र कुमार बर्मन शिक्षक थे। सन् 1930 के जून महीने में दीमा हसाओ जिले के सदर हाफलांग मिशन स्कूल में उन्होंने शिक्षक की नौकरी शुरू की थी। डिमासा जाति की विरासत और परंपरा के संबंध में उन्होंने काफी अध्ययन किया था। इस संबंध में उनकी लिखी गई पुस्तक का नाम The Queen of Cachar or Herambo and the History of the Cacharis है। डिमासा समाज में श्राद्ध का आवश्यक अंग कीर्तन है। उन्होंने श्राद्ध कीर्तन पदावली के एक संकलन का प्रकाशन किया था। उस पुस्तक का नाम है 'हैड़िंबराज गोविंदा चंद्र कृत हिंदू शास्त्रीय श्राद्धादि कीर्तन गीतिका'।

बचपन से ही **अनिल कुमार बर्मन** समाज सेवा का काम करते रहे थे। सन् 1942 में उन्होंने डिमासा छात्र समिति नामक एक संस्था की स्थापना की थी। वकालत के पेशे में व्यस्त रहने पर भी उन्होंने विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाओं के साथ सक्रिय योगदान किया था। काफी दिनों तक वे 'निखिल कछार हैड़िम्ब बर्मन समिति' के अध्यक्ष थे।

रंगमाई नगा जनगोष्ठी के **गाइन गामलंग** असम फुटबॉल टीम के खिलाड़ी थे। अपने समाज में उन्होंने कामेइ खेल संस्कृति को प्रसारित किया था।

समाजसेवक **रियांग लुयांग रिपोओ** रंगमाई नागा समाज की कला-संस्कृति के विकास के लिए काम करते रहे थे। **इरुंगबम चंद्र सिंह** मणिपुरी समाज के प्रथम अर्थशास्त्र विज्ञान के षाण्मासिक स्नातक थे। ग्रामीण विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए उन्होंने कई सार्थक कदम उठाए थे। गरीब विद्यार्थियों की मदद करने के लिए उन्होंने एक स्कूल की स्थापना की थी। स्कूल का वर्तमान नाम 'खेलम हाईस्कूल' है।

सोगाइजमे **बसंत कुमार सिंह संतोष ट्रॉफी** फुटबॉल प्रतियोगिता में असम प्रदेश टीम के खिलाड़ी थे। बाद में वे प्रदेश स्तर के रेफरी भी बने थे।

मणिपुरी विष्णुप्रिया समाज के **राजकुमार सेनारिक सिंह** और **गुरु बिपिन सिंह** नृत्य कला के क्षेत्र में अविस्मरणीय व्यक्तित्व हैं। विद्यार्थियों को मणिपुरी नृत्य कला सिखाने के लिए राजकुमार सेनारिक सिंह को रविंद्रनाथ ठाकुर ने शांति निकेतन बुलाया था। नृत्य कला में योगदान की वजह से गुरु बिपिन सिंह को सन् 1966 में 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' प्रदान किया गया था। परवर्ती समय में उनको मध्य प्रदेश सरकार का 'कालिदास सम्मान' भी मिला था। कोलकाता में 'मणिपुरी नर्तनालय' नामक एक नृत्य कला शिक्षण संस्थान की उन्होंने स्थापना की थी।

जगत मोहन सिंह एक शिक्षक और साहित्यकार थे। विष्णुप्रिया मणिपुरी भाषा में उन्होंने कविता, नाटक, लेख आदि लिखे थे। वे 'निखिल विष्णुप्रिया मणिपुरी साहित्य परिषद' के संस्थापक अध्यक्ष थे।

प्रश्नावली

1. नृतत्वविदों ने बराक घाटी को क्या कह कर संबोधित किया है?
2. बराक घाटी में रहने वाली विभिन्न जनगोष्ठियों के नाम क्या-क्या है?
3. बराक घाटी के लोगों की मुख्य जीविका क्या है?
4. द बैकग्राउंड ऑफ असामीज कल्चर (The Background of Assamese Culture) पुस्तक की रचना किसने की थी?
5. हैदराबाद में आयोजित संतोष ट्रॉफी फुटबॉल प्रतियोगिता में असम फुटबॉल टीम के मैनेजर कौन थे?
6. **संक्षिप्त टिप्पणी लिखो :**
   (क) राजमोहन नाथ (ख) कमालुद्दीन अहमद
   (ग) नन्दलाल बर्मन (घ) नलिनींद्र कुमार बर्मन
   (ङ) इरुंगबम चंद्र सिंह (च) बिपिन सिंह

● ● ●

कार्बी

कार्बी असम की प्रमुख जनजाति है। विष्णुप्रसाद राभा ने अमेरिका के आविष्कारक कोलंबस के साथ तुलना करते हुए कार्बी लोगों को असम का कोलंबस बताया था। इस कथन का तर्क के साथ समर्थन कोलकाता के मशहूर इतिहासकर सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय ने किया था।

निवास अंचल : असम के मध्य में स्थित कार्बी आंग्लांग और पश्चिम कार्बी आंग्लांग में कार्बी लोग मुख्य रूप से रहते हैं।

दोनों इलाकों को मिलाकर कार्बी आंग्लांग स्वायत्त परिषद का गठन किया गया है। इसमें 26 निर्वाचित सदस्य और चार मनोनीत सदस्य हैं। कुल 30 सीटें हैं। इसका क्षेत्रफल 10,343 वर्ग किलोमीटर है।

इसके अलावा शोणितपुर, विश्वनाथ, लखीमपुर, कामरूप, सोनापुर आदि स्थानों पर भी कार्बी लोग बसे हुए हैं। मणिपुर,नागालैंड, मेघालय, अरुणाचल आदि राज्यों में भी कार्बी लोग बसे हुए हैं।

वेशभूषा : स्त्री और पुरुष के वस्त्र अलग-अलग होते हैं। पुरुषों के वस्त्रों को घुटनों तक पे सेलेंग, सई हंगथर,सई इक, सई लक् (कार्बी जैकेट), पहो आदि कहते हैं। आजकल कार्बी जैकेट को सई हंगथर कहते हैं। पहो (कार्बी मफ़लर) 4 और 5 इंच चौड़ा और लगभग 5-6 फीट लंबा होता है। इसके दोनों सिरे पर विभिन्न रंगों के फूल बनाए जाते हैं।

सेपान आबू- लगभग 3 इंच चौड़ा और लगभग छह फीट लंबा होता है। दोनों सिरे पर कौड़ियों से जुड़े चमकीले काले कपड़े होते हैं। इसका उपयोग युवक करते हैं।

स्त्रियों के वस्त्र हैं-पीनी, पेकक और वांकक। इसके अलावा पे सेलेंग, पे खंजारी, पे सारपी आदि प्रमुख वस्त्र भी होते हैं।

पिबा- यह डेढ़ फीट से दो फीट चौड़ा और 6 फीट लंबा होता है। दोनों सिरे पर कौड़ियों से जुड़े चमकीले काले कपड़े होते हैं। महिलाएं इसमें बच्चों को रखकर साथ ले जाती हैं।

आभूषण-लेक हिकी, नथेंग्पी, नलांगपंग, नजांगसाई, लेक रुवे, लेक पांखारा, लांग आवो, रई पांखारा, रई पाहू आदि प्रमुख हैं।

उत्सव-पर्व-पेंग हेम्फू, रंगकेर, सजून आदि प्रमुख हैं। पेंग हेम्फू घरेलू उत्सव है। इस उत्सव में आम तौर पर तीन पूजाएं होती हैं-रिंग आंग्लांग, बुईसम और पेंग। साल की शुरुआत में ही यह उत्सव होता है, ताकि साल भर कोई अमंगल न हो। इसे घरेलू उत्सव कहा जाता है।

सजून उत्सव (घरेलू उत्सव Family Festival) : यह उत्सव हर साल नहीं मनाया जाता। 4, 5 या 9 साल के अंतराल पर मनाया जाता है।

रंकेर उत्सव (सामुदायिक उत्सव Community Festival) : इसे गांव का उत्सव कहा जाता है। इसे साल के आरंभ में मनाया जाता है। पूजा की मूल वेदी पर पंछी, बकरी, अंडे आदि समर्पित कर देवता की संतुष्टि के लिए आराधना की जाती है।

गुट–कार्बी लोगों के 5 गुट हैं–1.तिमूंग 2.टेरन 3.टेरांग 4.इंग्ही 5.इंग्ती। इन गुटों की भी कई शाखाएं हैं।

कार्बी युवा महोत्सव–हर साल 15 से 19 फरवरी तक यह उत्सव तारालांग्सों, डिफू शहर में आयोजित होता है।

कार्बी लोगों के बीच असमीया जातीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान देते हुए आज भी स्मरणीय बने कुछ विशेष व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षेप में उल्लेख किया गया है।

सेमसन सिंग इंग्ती

वे कार्बी आंग्लांग के स्वप्नद्रष्टा और रूपकार माने जाते हैं। उनका जन्म 8 फरवरी, 1910 को पश्चिम कार्बी आंग्लांग के टीका पहाड़ नामक स्थान पर हुआ था। पिता का नाम थेंकुरसिंग इंग्ती और माता का नाम रूथ माधवी (काजीर तीमूंग्पी) था। उन्होंने सन् 1916 में गोलाघाट के मिशन स्कूल से पढ़ाई शुरू की और सन् 1928 में गोलाघाट बेजबरुवा हाईस्कूल से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा उतीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने गुवाहाटी के कॉटन कॉलेज में दाखिला लिया, मगर स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने की वजह से उनकी पढ़ाई अधूरी रह गई। बाद में सन् 1933 में सिल्हट के मुरारीचंद कॉलेज से अंतिम परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होकर वे कार्बी समाज के प्रथम स्नातक बन गए। फिर उन्होंने गोलाघाट के बेजबरुवा हाईस्कूल में अध्यापन शुरू किया। सन् 1933 में मिकिर हिल ट्रेक का गठन होने पर ब्रिटिश सरकार ने उनको सन् 1934 में नगांव जिले के शिक्षा विभाग में उप-निरीक्षक के पद पर नियुक्त किया। उन्होंने कार्बी भाषा में कई पाठ्यपुस्तक लिखकर असमीया माध्यम के स्कूलों में अतिरिक्त पाठ्यपुस्तक के रूप में पाठदान शुरू करवाया। उनके द्वारा रचित पुस्तकों के नाम हैं–'बिटूस अकिताप', 'कालाखा अकिताप', 'टेमपुरु और वपी'।

सामसिंग हांसे

सामसिंग हांसे लगातार लेखक, कवि, गीतकार, उपन्यासकार, सिनेमा निर्माता, राजनेता, साहित्य प्रेमी व्यक्ति थे। 18 अप्रैल, 1948 को उनका जन्म नगांव जिले के सरुबाट मौजा के अंतर्गत पंडितघाट या आर्हीकेलक गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम जयसिंग हांसे और माता का नाम काएट टेरनपी था। जब वे

छोटे थे, तब उनका परिवार हंगक्राम नामक स्थान पर आकर बस गया। हंगक्राम प्राथमिक विद्यालय में उनकी शिक्षा शुरू हुई। बाद में उन्होंने टीका मध्य अंग्रेजी विद्यालय और कामपुर मध्य अंग्रेजी विद्यालय में पढ़ाई की। उन्होंने डिफू सरकारी बालक विद्यालय में दाखिला लिया, मगर प्रवेशिका परीक्षा उतीर्ण नहीं कर पाने पर सेना में भर्ती हो गए। तीन साल बाद नौकरी से इस्तीफा देकर सन् 1967 में बैठालांग्सू उच्च अंग्रेजी विद्यालय से मैट्रिक परीक्षा उतीर्ण की। सन् 1973 में उन्होंने स्नातक की डिग्री हासिल की।

भाषा साहित्य के विकास के लिए उन्होंने कार्बी और असमीया भाषा में कई पुस्तकों की रचना की। उनमें प्रमुख हैं–'ताई हाईमू', 'कार्बी प्रणय गीत', 'साबिन आलून' (कार्बी रामायण), कुमलिन, 'रोमीर एमुठि कार्बी कविता' (अनुदित) और 'सेर हंजेंग'। वे सन् 1983–84 में 'कार्बी लालमते आमेइ' (कार्बी साहित्य सभा) के सचिव और सन् 1984–85 में अध्यक्ष चुने गए।

सन् 1985 में विधानसभा चुनाव में डिफू सीट से विजयी होकर कैबिनेट मंत्री बने। 13 जनवरी, 1998 को उनका देहांत हो गया। कार्बी भाषा–साहित्य के साधक और एक पथ प्रदर्शक के रूप में उनको हमेशा याद रखा जाएगा।

बंगलंग तेरांग

कार्बी साहित्य के पुरोधा व्यक्ति बंगलंग तेरांग का जन्म 10 अक्टूबर, 1909 को दिलाई नदी के किनारे निहांगलांग्सों नामक स्थान पर हुआ। सबसे पहले उन्होंने ही कार्बी साहित्य को लिखित रूप प्रदान किया। उनके पिता का नाम सार तेरांग और माता का नाम कारेंग तिस्सपी था। 13 साल की उम्र से उन्होंने साहित्य साधना शुरू कर दी थी। उनके द्वारा लिखित पुस्तकों के नाम हैं–'वर्ड बुक' (Word Book), 'आदाम आसार' (विवाह नियम), 'रुकासेन', 'हाईमू', 'सेर हांगठम', 'कार्बी कपूसन', 'कार्बी स रंगजे', 'आरन आटेंग', 'रंगलीन', 'सार आलून' और 'सार लामसाम'।

सन् 1973 में उनको कार्बी साहित्य सभा ने कार्बी साहित्य के पुरोधा व्यक्ति के रूप में पुरस्कृत किया। असम सरकार की तरफ से उनको एक सौ रुपए की एकमुश्त वित्तीय मदद के साथ ही साहित्यिक पेंशन भी प्रदान की गई। 17 जुलाई 2001 को उनका देहावसान हो गया।

लंकाम तेरन

जाने–माने साहित्यकार लंकाम तेरन का जन्म सन् 1932 को हुआ था। उनके पिता का नाम डिप्लू तेरन और माता का नाम कासाई हांसेपी था। सन् 1957 में कासे रंगहांग्पी के साथ उनका विवाह हुआ। सन् 1964 में उनको मिकिर पहाड़ जिला परिषद का जन संपर्क अधिकारी बनाया गया। उनको कार्बी आदरबार

का महासचिव और अध्यक्ष भी चुना गया था। वे कार्बी साहित्य सभा के संस्थापक अध्यक्ष थे और 1986 में उनको **असम साहित्य सभा** के कामपुर अधिवेशन में उपाध्यक्ष बनाया गया था। उन्होंने 41 पुस्तकों का लेखन, संकलन और अनुवाद किया था। उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं–'रंग केसेंग', 'तामाहीदी', 'किताब किमी', 'कार्बी लामकुरु', 'कार्बी जनगोष्ठी', 'कार्बी लामकुरु लांसेंग', 'कार्बी भाषा परिचय', 'कार्बी लामतासाम' आदि।

प्रश्नावली

1. कार्बी लोगों को असम का कोलंबस किसने कहा था?
2. कार्बी पारंपरिक वेशभूषा के बारे में लिखिए।
3. कार्बी उत्सव-पर्व के बारे में लिखो।
4. कार्बी लोगों के मूल गुट क्या-क्या हैं?
5. कार्बी महिलाओं द्वारा परिधान किए गए कुछ वस्त्रों और अलंकारों के नाम लिखिए।
6. संक्षेप में टिप्पणी लिखिए–
   (क) सेमसनसिंग इंग्ती (ख) खरसिंग इंग्ती
   (ग) सामसिंग हांसे (घ) बंगलंग तेरांग
   (ङ) लंकाम तेरन

● ● ●

कोच-राजवंशी

19वीं शताब्दी के पहले दशक से लेकर

20वीं शताब्दी के अंतिम दशक तक जो नृवैज्ञानिक, गवेषक, सरकारी सर्वेक्षण करने वाले कमिश्नर, डॉक्टर, समाज वैज्ञानिक आदि कोच-राजवंशी के बारे में शोध कर रहे थे, उनमें से ज्यादातर इस बात पर सहमत थे कि असम, उत्तर बंगाल, नेपाल, भूटान, बिहार, मेघालय और बांग्लादेश में जो राजवंशी लोग रहते हैं, वे लोग मूल रूप से कोच हैं। असम में इसीलिए उन लोगों को कोच-राजवंशी कह कर पुकारा जाता है। ये लोग हिंदू धर्मावलंबी हैं। कुछ लोग कोच और राजवंशी को अलग-अलग समुदाय में बांटकर देखना चाहते हैं। एक समय ऐसी कोशिश की गई थी, लेकिन वह सटीक थी ऐसा नहीं कहा जा सकता। कई स्थानों पर सिर्फ कोच और सिर्फ राजवंशी लिखा जाता है, लेकिन राजवंशी का मूल जो कोच है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मेघालय और मेघालय के असम सीमांत इलाके में कुछ कोच लोग प्राचीन कोच भाषा और संस्कृति का पालन करते रहे हैं-उनकी धारा जो है वह आर्येतर धारा है। दूसरी तरफ पश्चिम असम, उत्तर बंगाल, नेपाल, बिहार आदि इलाकों में राजवंशी लोगों की भाषा-संस्कृति आर्य भाषा-संस्कृति है, जिन्हें केवल राजवंशी कह कर पुकारा जाता है। उन लोगों ने हिंदू धर्म को ग्रहण कर अपनी पहचान राजवंशी के तौर पर बनाई है। कुछ लोग कोच के तौर पर आर्य भाषा-संस्कृति का पालन करते हैं। दो अलग-अलग भाषा-संस्कृति का पालन करने के बावजूद नृतात्विक रूप से सभी कोच-राजवंशी लोगों का मूल कोच है। अलग-अलग स्थान पर ये लोग कोच, कोच-राजवंशी, क्षत्रिय राजवंशी या राजवंशी, किसी स्थान पर सिर्फ क्षत्रिय के रूप में जाने जाते हैं। ये लोग भले ही अपना परिचय क्षत्रिय के रूप में परिचय देते हैं, फिर भी आर्य क्षत्रिय नहीं है। सबकी संस्कृति पर जनजातीय प्रभाव स्पष्ट है। सरकारी तौर पर इन लोगों को जनजाति का दर्जा नहीं मिलने पर भी इन लोगों को कोच-राजवंशी जनजाति कहना सही होगा। असम, बंगाल, बिहार, नेपाल और बांग्लादेश आदि स्थानों पर ये लोग राजवंशी के रूप में जाने जाते हैं। परवर्ती समय में मदासी, हाजंग, जलधा, धिमाल, झलो, मालो, बरुवा मग आदि अनेक छोटी-छोटी जनगोष्ठियों के लोग राजवंशी के तौर पर अपना परिचय देने लगे, लेकिन इनमें से अधिकतर का मूल कोच है। इस संबंध में कुछ विशिष्ट विद्वानों के कथनों

का उल्लेख किया जा सकता है। बुकानन हैमिल्टन का कहना है-'मुझे कोई संदेह नहीं है कि कोच जनजातीय लोगों की उत्पत्ति एक ही उत्स से हुई है और अधिकतर राजवंशी कोच हैं।' (बी हैमिल्टन,1809)

सन् 1889 की आदम सुमारी रिपोर्ट में हंटर ने उल्लेख किया है कि अर्ध हिंदू जनजाति के तौर पर उल्लेखित कोच, पालिया और राजवंशी जनगोष्ठी के लोग जो कोचबिहार राज्य और संलग्न जनजाति हैं, वे लोग मूल रूप से एक ही वंश से उद्भव उपजाति हैं (डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर,1877)। ग्रियर्सन के हिसाब से भी जो कोच वर्तमान में हिंदू धर्मावलंबी है, वे भी मुख्य रूप से राजवंशी के रूप में अपना परिचय देते हैं। (ग्रियर्सन,1903)

रिजली ने भी कोच, पालिया और राजवंशी लोगों को नृतात्विक रूप से एक ही वंश से जुड़ा हुआ माना है। (रिजली,1981)। इसी तरह जे ए वास का तथ्य भी समर्थन करता है कि रंगपुर (वर्तमान बांग्लादेश) के राजवंशी लोग कोच जाति से उत्पन्न हुए हैं और मंगोलीय गोष्ठी से जुड़े हैं। उनकी धारणा है कि उन लोगों का रक्त द्रविड़ रक्त से मिश्रित हुआ है, लेकिन उनकी धमनियों में आर्य रक्त नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है। (जेए वास,1911) ऊपर वर्णित विद्वानों के नृतात्विक विचारों से पता चलता है कि कोच से ही राजवंशियों की उत्पत्ति हुई है, इसमें कोई संदेह नहीं है। दूसरी तरफ वे लोग मंगोलीय गोष्ठी से जुड़े हैं यह बात भी सर्वविदित है।

भाषातत्व के अनुसंधानकारी देशी-विदेशी प्राचीन विद्वानों के विचारों से आधुनिक काल के विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि कोच बृहतर तिब्बत बर्मी भाषा-गोष्ठी के लोग थे। परवर्ती समय में इन लोगों ने अपनी प्राचीन भाषा-संस्कृति को छोड़कर आर्य भाषा-संस्कृति को ग्रहण किया। ऐतिहासिक विद्वानों के लिखे इतिहास से भी पता चलता है कि 16वीं शताब्दी के मध्य भाग में कोच राजा विश्व सिंह के नेतृत्व में कुछ कोच लोगों ने अपनी प्राचीन भाषा और धर्म को छोड़कर हिंदू धर्म ग्रहण कर राजवंशी के रूप में अपनी पहचान बनाई और पूरी तरह वर्ण हिंदू की तरह भाषा का व्यवहार करने लगे। (ए विश्वास,2005)

यह परिघटना खासतौर पर पश्चिम असम और उत्तर बंगाल के इलाकों में घटी थी। इसलिए वर्तमान समय के पश्चिम असम में यानी धुबड़ी, बंगाईगांव, ग्वालपाड़ा, कोकराझाड़, चिरांग आदि जिलों में उत्तर बंगाल, बिहार के उत्तरांचल, नेपाल के झापा, मोरङ आदि जिलों में और बांग्लादेश के प्राचीन रंगपुर जिले में राजवंशी के तौर पर परिचय देने वाले कोच लोगों की संख्या ज्यादा है। इन लोगों की भाषा-संस्कृति, जातितत्व आदि राजवंशी के रूप में परिचित है।

भाषा और संस्कृति

कोच-राजवंशी लोगों की भाषा के संबंध में देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने विचार व्यक्त किया है। उनमें प्रमुख जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन है। उनको भारतीय भाषा समूह का जनक कहा जाता है। भारत के भाषा

सर्वेक्षण ग्रंथ (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया) में उन्होंने राजवंशी भाषा का उल्लेख किया है। कोच-राजवंशी लोगों की मातृभाषा राजवंशी भाषा का निजी शब्द भंडार, निजी क्रिया रूप, शब्द रूप, मौखिक और लिखित साहित्य, सर्वनाम, उच्चारण भंगिमा, मौलिक वाक्य गठन पद्धति आदि हैं। इसीलिए यह अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषा समूह से अलग और स्वतंत्र पहचान रखने वाली एक समृद्ध भाषा है।

कोच-राजवंशी लोगों की प्राचीन और अनूठी संस्कृति है। भारत वर्ष में आर्यलोगों ने जो वर्ण आधारित समाज व्यवस्था स्थापित की उससे कोच-राजवंशी की समाज-व्यवस्था पूरी तरह अलग है। समय की धारा के साथ वे लोग इस व्यवस्था के अंतर्गत भले ही आ गए, लेकिन आर्य क्षत्रिय हिंदुओं की संस्कृति के साथ उनकी कोई समानता नहीं है। वर्ण हिंदू की आचार-नीति ग्रहण करने के बाद भी कोच-राजवंशी का अपना आचार-संस्कार, पूजा-पाठ, धार्मिक विश्वास, खाद्य-भंडार, पोशाक, अलंकार, गीत-संगीत आदि विद्यमान है। इन सब की अपनी अलग पहचान है।

कोच राजवंशी के जन्म-मृत्यु, विवाह में अपनी आचार-नीति, मरने के बाद आत्मा के अस्तित्व का विश्वास, मृतक के प्रति श्रद्धा, नाना इंद्रजाल की क्रिया, तंत्र-मंत्र पर विश्वास, प्रकृति के सर्जक की माता के तौर पर पूजा, बरगद के पेड़ की पूजा, टोटम के प्रति श्रद्धा, जीव-जंतु की पूजा, लोगों की बीमारी और बुरी घटनाओं के पीछे बुरी शक्तियां या भूत प्रेत के हाथ को मानना, अनेक तरह का निषेध या अनुशासन, भोजन, बेषमा या विषुवा, पुषुनाकाति गजा, होली, सड़क पूजा, गाजन, मनसा, विषहरी, शीतला, मासान, काली आदि पूजा में अर्धहिंदू या जनजातीय पहचान मौजूद है। सार्वजनिक कार्यों में चावल, केला, केले का पेड़, नारियल, सुपारी-पान, पीठागुड़ी आदि का व्यवहार गौरतलब है। धर्म पालन के क्षेत्र में वर्ण हिंदुओं के देव-देवी की पूजा-अर्चना, भक्ति-श्रद्धा करने के साथ ही वे लोग अपने तरीके से बूढ़ा-बूढ़ी, तीस्ताबूढ़ी, हुदुम पूजा, ग्राम पूजा, धाम पूजा, मसान, यखा, सोनाराय, काति, साइटल आदि की पूजा करते हैं। धार्मिक संस्कार के अंतर्गत आमती (अंबुवासी), यात्रा पूजा, चड़क पूजा, सत्यनारायण पूजा, त्रिनाथ पूजा आदि का प्रचलन है।

खाद्य भंडार के अंतर्गत उन लोगों का सेका, पेलका, भेलका, सिदल, सुट्का, तोपला भात आदि अपनी खास पहचान दर्शाते हैं। वेशभूषा के अंतर्गत महिलाएं पाटानी, बुकुनी, फोटा, सेउता का व्यवहार करती है। अलंकार के तौर पर हाथ में मूठाखारु, चुर, शाखा, बाजु, गले का सूर्य हार, चंद्र हार, सिक्का हार, कान में माकिरी, अन्ति, नाक में नोलोक, फूल, पैरों में टोला खारु, फेला खारु का प्रयोग करते हैं।

गीत-संगीत के क्षेत्र में कोच-राजवंशी लोग भवाईया गान, विभिन्न पूजा के गीत, रावण गान, कुषाण गान, डोतारा गान, बिषहरी पूजा का गान, मारी पूजा का गान, तुक्खा गान, लाहांकरी गान, नटुवा,साँगी ढाक का गान, डाक नाम, जाग गान आदि का प्रयोग करते हैं। समग्र रूप से विचार करने पर देखा जाता है कि इन लोगों

के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के क्षेत्र में अपनी संस्कृति के साथ बौद्ध, शैव, शाक्त का प्रभाव पड़ा है और वर्ण हिंदू के प्रति आकृष्ट होने की वजह से पौराणिक प्रभाव, शंकरी वैष्णव और गौड़ीय प्रभाव नजर आता है। इसके बावजूद इन लोगों की संस्कृति में प्राचीन जनजाति की विशेषता खास तौर पर नजर आती है। कोच-राजबंशी समाज के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है-

जननेता शरत चंद्र सिंह - एक अनूठा व्यक्तित्व

उनका जन्म 1 जनवरी, 1914 को हुआ था। पिता का नाम लालसिंग सिंह और माँ का नाम आयासिनी सिंह था। वे आजादी के बाद असम की राजनीति के एक प्रमुख श्रेष्ठ व्यक्ति थे। वे सही अर्थों में जनता के नेता थे, इसलिए उनको जननेता कह कर पुकारा जाता है। सिंह गांधी के आदर्शों का पालन करने वाले व्यक्ति थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। जनसाधारण की सेवा करना ही उनके जीवन का संकल्प था। भ्रष्टाचार मुक्त राज्य के तौर पर असम को रचने का जो सपना उन्होंने देखा था, उसे साकार करने के लिए जीवन के अंतिम समय तक कोशिश करते रहे थे। वे सन् 1972 से सन् 1978 तक असम के मुख्यमंत्री के पद पर रहे थे। सन् 1946 से सन् 1952 तक, सन् 1962 से सन् 1967 तक, सन् 1972 से सन् 1978 तक और सन् 1978 से सन् 1982 तक असम विधानसभा के विधायक के रूप में चुने गए थे। असम के मुख्यमंत्री रहते हुए उन्होंने कई विकास के कार्य किए थे। उन्होंने कृषि उत्पादन वृद्धि, कृषक विकास, गरीबी निवारण, भ्रष्टाचार निवारण, ग्रामीण अर्थनीति के विकास का आदर्श सामने रखकर कुछ उल्लेखनीय योजनाएं शुरू की थी। उनकी उल्लेखनीय योजनाओं में प्रमुख थीं-(1)आपातकालीन रबी फसल योजना (2)गांव पंचायत सहकारी समिति (3)कृषि निगम (4)आकलन पत्र योजना (5) निगरानी कोष योजना (6)पंचायत राज (7)शिलांग से दिसपुर तक अस्थाई राजधानी का स्थानांतरण (8)खाद्य फसल का सरकारी व्यवसाय और (9) शैक्षणिक संस्थान सुधार योजना।

इस जननेता का देहांत 24 दिसंबर, 2005 को 93 वर्ष की उम्र में हो गया।

अंबिकाचरण चौधरी

16 अगस्त, 1930 को बंगाईगांव जिले के अंतर्गत बरपाड़ा नामक गांव में अंबिका चरण चौधरी का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम नरेश्वर चौधरी और माँ का नाम काशिश्वरी चौधरी था। मेधावी चौधरी ने बचपन से ही आर्थिक अभाव के बीच बंगाईगांव के प्राथमिक और उच्च विद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर गुवाहाटी के कॉटन कॉलेज से सन् 1955 में दर्शन शास्त्र में ऑनर्स के साथ स्नातक की डिग्री हासिल की। परवर्ती काल में शिलांग में नौकरी करते हुए उन्होंने बी.टी. की पढ़ाई की। एम.ए. और बी.एल. (वर्तमान में एलएलबी)

पढ़ने के लिए गौहाटी विश्वविद्यालय में दाखिला लेने के बावजूद आर्थिक अभाव के चलते नौकरी शुरू करते हुए वे उस डिग्री को संपूर्ण नहीं कर पाए थे।

विद्यार्थी जीवन से ही अंबिका चरण चौधरी विभिन्न सामाजिक कार्यों से जुड़े हुए थे। सन् 1953-54 में कॉटन कॉलेज के समाज सेवा विभाग के सक्रिय सदस्य के तौर पर पलाशबाड़ी, मिर्जा इलाके में बाढ़ और भूस्खलन से प्रभावित लोगों की सहायता करने की वजह से तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने उनकी सराहना की थी।

अंबिका चरण चौधरी मृत्यु से पहले तक छोटी-बड़ी लगभग 32 इतिहास, संस्कृति, समालोचना की पुस्तकें लिख चुके थे। अंग्रेजी, असमीया और राजवंशी तीनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। अंग्रेजी और असमीया भाषा में उन्होंने 100 से अधिक लेख लिखे थे।

सन् 1961 में असम साहित्य सभा के ग्वालपाड़ा अधिवेशन में अंबिका चरण चौधरी को 'रत्नपीठ का रत्न' सम्मान प्रदान किया गया था। सन् 1992 में उत्तर बंगाल सांस्कृतिक संघ की तरफ से उनको 'कामतारत्न' की उपाधि दी गई थी। सन् 1994 में उनको साहित्यिक पेंशन प्रदान की गई। सन् 2003 में उनको नई दिल्ली के प्रेंदरी संघ की तरफ से महेंद्र नाथ बड़ा पुरस्कार मिला। प्राथमिक शिक्षक संस्था की तरफ से उनको 'शिक्षाबांधव' की उपाधि मिली। इसके अलावा अपने जीवन काल में उनको बंगाईगांव जिला साहित्य सभा, बरपेटा साहित्य सभा, विभिन्न शाखा साहित्य सभा, असम प्रकाशन परिषद, भारत विकास परिषद ,बंगाईगांव जिला प्रशासन, बंगाईगाँव नॉर्मल स्कूल प्रबंधन की तरफ से विशेष रूप से सम्मानित किया गया था।

अरुण कुमार राय

अरुण कुमार राय का जन्म 8 अक्टूबर, 1925 को हुआ था। उनका निवास बंगाईगांव के सीपन सिला गांव में था। उनके पिता का नाम प्रकाश चंद्र राय और माँ का नाम अभयेश्वरी राय था। चिरांग जिले के बेंगतल प्राथमिक विद्यालय से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने बहलपुर के उच्च माध्यमिक स्कूल में दाखिला लिया। वहीं से फिर बंगाईगाँव वीरझरा उच्च माध्यमिक स्कूल से एंट्रेंस तक की पढ़ाई करने के बाद कला गुरु विष्णु प्रसाद राभा की संगत में आकर वे आरसीपीआई में शामिल हो गए। वामपंथी विचारधारा का प्रचार करने के कारण उनको जेल में भी समय गुजारना पड़ा। सन् 1964 में किसान आंदोलन के साथ सक्रिय रूप से जुड़ गए। गृह रक्षी विभाग में कुछ दिनों तक काम करने के बाद उन्होंने बेंगतल एम.वी. स्कूल में अध्यापन का काम किया। सन् 1974-75 में उन्हें कोकराझाड़ महकमा परिषद का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1983 में उन्हें उत्तर सालमारा महकमा परिषद का अध्यक्ष बनाया गया। कुछ दिनों तक प्रतिरक्षा संस्था के निचले असम के समन्वयक का दायित्व निभाने के बाद सन् 1993 में कोच-राजवंशी साहित्य सभा की स्थापना करने में उन्होंने

अग्रणी भूमिका निभाई। सन् 1999 से सन् 2015 तक कोच-राजवंशी जनजाति की भाषा-साहित्य-संस्कृति की उन्नति के लिए काम करते रहे। उन्होंने राजवंशी भाषा में कोच-राजवंशी लोगों की संस्कृति के संबंध में कई पुस्तकों की रचना की। साथ ही नाटक, कविता और शब्दकोश भी लिखे। उन्होंने कुल 10 पुस्तकों की रचना की। सन् 2004 में उनको असम सरकार की तरफ से साहित्यिक अनुदान प्राप्त हुआ। सन् 2013 में असम सरकार के सांस्कृतिक निदेशालय की तरफ से संचालित गुरु-शिष्य परंपरा योजना के अंतर्गत 'लोक-संस्कृति के गुरु' के रूप में उनको स्वीकृति और सम्मान प्राप्त हुआ। सन् 2013 में उनको जिला छात्र संघ की तरफ से 'कामतारत्न अंबिका चरण चौधरी स्मारक पुरस्कार' मिला। कोच-राजवंशी तथा उनके भाषा-साहित्य के लिए किए गए योगदान की स्वीकृति के तौर पर कोच राजवंशी साहित्य सभा ने मरणोत्तर रूप से सन् 2016 में उनको 'साहित्य रत्न' का सम्मान प्रदान किया।

रुक्मिणी कांत राय

कोच राजवंशी समुदाय के पश्चिम असम के प्रसिद्ध बुद्धिजीवी, शिक्षाविद्, राजनीतिविद्, समाजसेवी और हास्य रसिक व्यक्ति के तौर पर रुक्मिणी कांत राय का नाम प्रसिद्ध है। साधारण निम्न मध्यवर्गीय परिवार में जन्म ग्रहण कर विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर वे जीवन में सफलता हासिल करने में सफल हुए थे। शैक्षिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन के विभिन्न पहलुओं में उन्होंने आदर्श की स्थापना की।

साधारण छात्र की तरह गांव के एक स्कूल में जीवन का आरंभ कर अपनी मेधा के बल पर गौहाटी विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर कक्षा के अर्थनीति विभाग में प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान प्राप्त कर असम के एक मेधावी युवा के रूप में उन्होंने पहचान बनाई थी। अपने समुदाय और पश्चिम असम के मेधावी बुद्धिमान व्यक्ति के तौर पर रुक्मिणी कांत राय विख्यात थे। उनको समाज और सांस्कृतिक जीवन में अपनी मातृभाषा राजवंशी भाषा का प्रयोग करना अच्छा लगता था। मातृभाषा में भाषण देखकर वे सबका मन जीत लेते थे।

उन्होंने समाज के विकास के लिए कई स्कूलों, कॉलेजों, मठ-मंदिरों की स्थापना में विशेष भूमिका निभाई थी। राजनीतिक जीवन के क्षेत्र में जिला स्तर से लेकर राज्य स्तर तक पहुंचे थे और केंद्रीय स्तर के नेताओं का ध्यान आकर्षित करने में सक्षम हुए थे। एक मामूली क्लर्क की नौकरी से वे कॉलेज के अध्यापक, प्राचार्य तथा विधायक तक तब्दील हुए थे। एक दक्ष फुटबॉल खिलाड़ी के रूप में प्रशंसा प्राप्त करने के साथ ही जीवन के अंतिम उम्र में एक धार्मिक वक्ता के तौर पर भी उन्होंने अपनी पहचान बनाई थी। कृष्णानंद ब्रह्मचारी के साथ काफी समय गुजारने के बाद उन्होंने धर्म विषयक गंभीर लेख लिखे।

पानीराम दास

आजीवन शुद्ध खादी धोती कुर्ता धारण करने वाले, समय की रेत पर अपने कदम के निशान बनाने वाले, देश प्रेम का आदर्श सामने रखकर समझौता किए बगैर निरंतर संग्राम चलाने वाले समाजसेवी, स्वाधीनता सेनानी पानीराम दास का जन्म 7 अप्रैल, 1917 को मंगलदै राजस्व चक्र के अंतर्गत जलजली गांव के एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। सन् 1934 में पाथरीघाट स्कूल से अच्छे अंकों के साथ 7 वीं श्रेणी की परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने मंगलदै हाईस्कूल में दाखिला लिया। परवर्ती समय में सन् 1937 में कोलकाता से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा उतीर्ण करने के बाद महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश भर में चल रहे स्वाधीनता संग्राम में शामिल हो गए। सन् 1938 में कांग्रेस में शामिल हुए और सन् 1941 में महात्मा गांधी के सत्याग्रह में शामिल होकर जेल की सजा भुगी। अपने देश के विकास के लिए उन्होंने काम किया था। सन् 2005 में भारत के राष्ट्रपति डॉक्टर एपीजे अब्दुल कलाम ने इस स्वाधीनता संग्रामी को राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित किया था। उसी साल भारतीय सेना की तरफ से ऐतिहासिक पथरूघाट में आयोजित 'कृषक शहीद दिवस' में उनको 'खादी धारी सेनाध्यक्ष' (द जनरल इन खादी) उपाधि से सम्मानित किया गया था।

30 नवंबर, 2010 को इस स्पष्टवादी स्वाधीनता संग्रामी की मृत्यु हो गई। देश की सेवा की स्वीकृति के तौर पर भारतीय सेना के 65 नंबर फील्ड रेजीमेंट ने सैनिक सम्मान के साथ उनकी अंतिम विदाई की और असम पुलिस ने भी गोले दागकर उनके प्रति राष्ट्रीय मर्यादा के साथ अंतिम सम्मान व्यक्त किया था।

प्रश्नावली

(1) कोच-राजवंशी लोगों का धर्म क्या है?
(2) कोच-राजवंशी लोगों की भाषा और संस्कृति के बारे में लिखिए।
(3) कोच-राजवंशी लोगों के भोजन और वेशभूषा के बारे में लिखिए।
(4) कोच-राजवंशी लोगों के गीत-संगीत क्या-क्या है?
(5) संक्षेप में टिप्पणी लिखिए-
  (क) जन नेता शरतचंद्र सिंह
  (ख) अंबिका चरण चौधरी
  (ग) अरुण कुमार राय
  (घ) रुक्मिणी कांत राय
  (ङ) 'दूरंत तरुण' पानी राम दास

● ● ●

गरिया, मरिया और देशी लोग

असम में विभिन्न जातियां-उपजातियां एक साथ रहती हैं। इन सबको मिलाकर ही बृहत्तर असमीया जाति का गठन हुआ है। दूसरी स्थानीय जनगोष्ठियों की तरह असमीया जाति गठन प्रक्रिया में भागीदार गरिया, मरिया और देशी के नाम से मशहूर इस्लाम धर्मावलम्बी स्थानीय लोग असम की प्राचीन जनगोष्ठियों के अंश हैं। असम में इस जनगोष्ठी का उद्‌भव एक उल्लेखनीय परिघटना है। इसवीं सन् 1205-06 में तिब्बत-चीन जीतने के मकसद के साथ बंग के तुर्की सेनापति बख्तियार खिलजी के नेतृत्व में कामरूप में प्रवेश करने वाले मुसलमान सैनिक कामरूप के राजा पृथु के हाथों शोचनीय रूप से पराजित हुए और कुछ सैनिक असम में ही बस गए। गौरतलब है कि खिलजी को राह दिखाने की भूमिका इस्लाम अपना चुके एक जनजातीय राजा 'आली मेस' ने निभाई थी। इतिहास में मेस को प्रथम धर्मांतरित जनजातीय राजा माना जाता है। स्वाभाविक है कि राजा के साथ काफी प्रजा ने भी इस्लाम धर्म को अपनाया था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार असम में इस्लाम धर्म का पदार्पण सातवीं शताब्दी में उस समय हुआ, जब तुर्की के शासक सौष्ठव हसन की चीन विजय से वापसी के वक़्त कुछ सैनिक यहां ठहर गए। (प्रसंग इस्लामीय ऐतिज्य आरू असम-रफीउल हुसैन बरुवा)। जो भी हो, सातवीं सदी में हो या तेरहवीं सदी में हो, असम में इस तरह विभिन्न समय में आकर बस गए युद्धबंदियों के साथ हुए वैवाहिक संबंध और विभिन्न समय में आए धर्म प्रचारक पीर-फकीर के संदेश के प्रभाव से प्राकृतिक धर्मावलम्बी और हिंदू धर्मावलंबी स्थानीय लोगों के मन पर इस्लाम का गहरा असर होने लगा। इस तरह स्वेच्छा से या खास हालात के चलते स्थानीय लोग इस्लाम को अपनाने लगे, लेकिन इस्लाम को अपनाकर भी इन लोगों ने अपनी स्थानीय लोक-संस्कृति को नहीं छोड़ा। समय की धारा में ऐसे युद्धबंदी लोग अपनी पहचान को खोकर असम की भाषा-परंपरा-संस्कृति के साथ घुलते चले गए। धर्म प्रचार के लिए आए पीर-फकीर भी स्थानीय लोगों की मानसिकता को समझ कर धार्मिक संदेशों में स्थानीय भाषा-संस्कृति और हिंदू धार्मिक शब्दों के साथ संगत रखकर प्रचार करने के लिए विवश हुए। असमीया भाषा

साहित्य के भंडार को समृद्ध बनाने वाले महान पीर हजरत अजान फकीर के रचित जिकिर इसी बात के उदाहरण हैं। इस तरह इस्लाम अपनाने वाले लोग मूल समाज से अलग छूट चुके समाज में शामिल हो गए। ऐसे लोगों को गरिया या रगिया कहकर पुकारा गया। वैसे गरिया शब्द की उत्पत्ति को लेकर और कई मत प्रचलित हैं, मगर उनके दैहिक गठन, लोक-संस्कृति, परंपरा और आबादी आदि के आधार पर ऊपर दर्शाया गया मत अधिक सटीक है। दूसरी ओर आहोम राज में पीतल-कांसे के धंधे से जुड़े मुसलमानों को मरिया के नाम से जाना जाता है। ऊपरी असम के कुछ इलाके,नगांव जिला, निचले असम की गुवाहाटी के उजान बाज़ार और हाजो में मरिया लोग रहते हैं। देशी लोग खास तौर पर अविभाजित ग्वालपाड़ा जिले में रहते हैं। इस इलाके में कोच राजवंशी भाषा-संस्कृति संपन्न स्थानीय मुसलमान देशी या देशी मुसलमान कहलाते हैं। देशी लोग खासकर कोच राजवंशी, मेस कछारी आदि स्थानीय जनगोष्ठियों से धर्मांतरित लोग हैं।

असम के जातीय हित में गरिया-मरिया-देशी का योगदान

सन् 1206 में असम में इस्लाम का पदार्पण हुआ और आहोम राज की शुरुआत सन् 1228 में हुई। इसी आहोम राज में मोमाई तामूली बरबरुवा ने 2 कोच परिवार, 2 ब्राह्मण परिवार, 2 कलिता परिवार, 2 आदि परिवार, 2 गरिया परिवार और 2 मरिया परिवार के साथ महान असमीया समाज गठन का उदाहरण पेश किया था। (प्रसंग: डॉ. सूर्यकुमार भुईया द्वारा संपादित 'देउधाई असम बुरंजी',पृष्ठ 95)। इस तरह इस बात का आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि सदियों से धर्म निरपेक्ष समाज संस्कृति को अपनाने वाले असमीया लोगों के जाति गठन की प्रक्रिया में गरिया,मरिया और देशी लोग स्वदेश हित में त्याग करते रहे हैं और आहोम काल से ही असम के शिल्प, कला, साहित्य, संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में अहम योगदान करते रहे हैं।

नीचे ऐसे ही कुछ गणमान्य व्यक्तियों का परिचय दिया जा रहा है।

बाघ हजारिका : असली नाम इस्माइल सिद्दीकी था। बाघ को युद्ध में परास्त करने की वजह से बाघ नाम पड़ा था। अदम्य साहस और दक्षता के चलते आहोम शासन ने उनको हजारिका का पद दिया था। शराईघाट युद्ध में लाचित बरफुकन के सहयोगी सेनापति के रूप में प्रबल पराक्रम के साथ मुगलों के खिलाफ जंग लड़ी थी।

अज़ान फकीर साहब : जिन मुसलमान पीरों ने सहज-सरल जुबान में इस्लाम धर्म की वाणियों का

प्रचार किया, उनमें अजान फकीर प्रमुख थे। उनका दूसरा नाम शाह मिलन था। वे सुदूर बगदाद से इस्लाम धर्म प्रचार करने आए और असम में बस गए, लेकिन उनके रचित एक दो जिकिर में उल्लेख किए गए 'भिखारी आजाने कम आहो परदेश, भाटिर परा आहिल साहाब दाढ़ी पकाँ' वाक्य में 'परदेश' और 'भाटि' शब्दों से अनुमान लगाया जाता है कि वे पश्चिम असम के कामरूप, ग्वालपाड़ा आदि स्थानों से आए थे। उनके एक सौ साठ जिकिर असमीया भाषा की अनमोल धरोहर हैं। जिकिर का रचनाकाल किसी-किसी के अनुसार सन् 1634 तो किसी के अनुसार सन् 1734 है। राजा गदाधर सिंह ने रुपाई गरिया दा-धरा नामक एक इस्लामधर्मी अधिकारी के उकसावे में आकर पीर की आंखें निकलवा ली थी, मगर बाद में अपनी गलती का एहसास होने पर उनको सरागुरी चापरी में जमीन-जायदाद देकर स्थायी रूप में बसा दिया था। वहीं उनका देहांत हुआ। प्रतिदिन सुबह-शाम मस्जिद में अजान देने की वजह से लोग उनको अजान पीर कहकर पुकारने लगे।

बहादुर गांवबूढ़ा : बहादुर गाँवबूढ़ा (मुखिया) एक स्वतंत्रता सेनानी थे। वे बकता से जाकर जोरहाट में बस गए थे।

सन् 1857 के सिपाही विद्रोह के साथ देश की आज़ादी की जो जंग शुरू हुई, उसमें मणिराम देवान, पियली बरुवा आदि के साथ बहादुर (बाहदिल) ने अहम योगदान किया था। अंग्रेजों के खिलाफ बगावत के आरोप में उनको कमिश्नर सी हलरीड ने आजीवन कालापानी की सजा सुनाई थी।

सैयद अब्दुल मलिक : गोलाघाट जिले के नाहरनी गांव में 16 मई, 1919 को अब्दुल मलिक का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम सैयद रहमत अली था। वे एक प्रसिद्ध साहित्यकार थे। सन् 1935 में 'बंध कोठा' नामक एक कहानी का सबसे पहले प्रकाशन हुआ। उसके बाद जीवन भर उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता पुस्तकों का सृजन कर असमीया साहित्य को समृद्ध किया। गौहाटी विश्वविद्यालय के लोक-संस्कृति विभाग की शोध योजना के तहत उन्होंने सन् 1954 से सन् 1956 तक 'असमीया जिकिर और जारी' विषय पर शोध किया।

सन् 1956-57 में उन्होंने एशियन रायटर्स कांफ्रेंस में भारत का प्रतिनिधित्व किया। सन् 1977 में उनको असम साहित्य सभा के अभयापुरी अधिवेशन का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1952-1955 में वे भारतीय गण नाट्य संघ के उपाध्यक्ष रहे। 'अघरी आत्मार काहिनी' उपन्यास के लिए उनको साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। सन् 1997 में असम साहित्य सभा ने उनको साहित्याचार्य की उपाधि दी।

उनको सन् 1992 में असम उपत्यका सम्मान, सन् 1993 में अजान पीर सम्मान, सन् 1988 में हारमोनी सम्मान, सन् 1995 में महापुरुष शंकरदेव के जीवन कर्म के आधार पर उनके द्वारा रचित 'धन्य नर तनु भाल' नामक उपन्यास के लिए शंकरदेव सम्मान मिला। सन् 1999 में उनको साहित्य अकादमी फ़ेलोशिप मिली। भारत सरकार ने सन् 1984 में पद्मश्री और सन् 1992 में पद्मभूषण सम्मान से उनको सम्मानित किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस साहित्यकार का 19 दिसंबर, 2002 को निधन हो गया।

नवाब साहिदूर रहमान : वे सुभाष चंद्र बोस की 'आज़ाद हिंद फौज' के एक प्रमुख नेता थे। भारत की आज़ादी की जंग में यह महान असमीया नेता आजाद हिंद फौज के वे प्रथम शहीद थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के वक़्त 31 मार्च, 1945 को मित्र वाहिनी के बम धमाके की वजह से उनकी मौत हो गई।

फकरुद्दीन अली अहमद : फकरुद्दीन अली अहमद का जन्म 13 मई, 1905 को दिल्ली में हुआ। सन् 1927 में उन्होंने कैंब्रिज सेंट कैथोलिक कॉलेज से इतिहास में स्नातक और लंदन के इनर टैंपल से बार एट् लॉ की डिग्री हासिल कर सन् 1931 में असम लौटकर वकालत करने के साथ ही राजनीति में कदम रखा। सन् 1966 में संसदीय चुनाव जीतकर केंद्रीय मंत्री बने। सन् 1974 में भारत के राष्ट्रपति बने। दिल की धड़कन रुकने से 19 फरवरी, 1977 को उनका देहांत हो गया।

प्रश्नावली

1. बख्तियार खिलजी ने असम में कब प्रवेश किया था?
2. बख्तियार खिलजी ने किसलिए असम में प्रवेश किया था?
3. बख्तियार खिलजी को किसने परास्त किया था?
4. इस्लाम धर्म में धर्मांतरित होने वाले प्रथम जनजातीय राजा का नाम क्या था?
5. 'गरिया' शब्द का विश्लेषण कीजिए। असम में गरिया किसे कहते हैं?
6. आहोम काल में असम में कुछ स्थानीय लोगों द्वारा इस्लाम धर्म अपनाने के दो कारण लिखिए।
7. मरिया और देशी जनगोष्ठी के बारे में वर्णन कीजिए।
8. महान असमीया समाज गठन का उदाहरण किसने किसके राज में प्रस्तुत किया?
9. संक्षेप में लिखिए–
   (क) बाघ हजारिका (ख) अज़ान फकीर साहब
   (ग) सैयद अब्दुल मलिक (घ) नवाब साहिदूर रहमान
   (ङ) फकरुद्दीन अली अहमद

● ● ●

गारो

गारो असम की एक प्राचीन जनगोष्ठी है। इस जनगोष्ठी के कुछ लोग खुद को वृहत्त मंगोलीय मूल के मानते हैं। भाषा की दृष्टि से गारो इंडो-चीन के अंतर्गत तिब्बत-बर्मी बोड़ो भाषा मूल के लोग हैं।

वर्तमान में, इस जनगोष्ठी के लोग पश्चिम बंगाल से लेकर उत्तर-पूर्वांचल के प्राय: सभी राज्यों में फैले होने के अलावा बांग्लादेश के कई स्थानों पर इस जनगोष्ठी के लोग रहते हैं। वासस्थान और भाषा की दृष्टि से गारो लोगों को आमबेंग, मातसी, माताबेंग, गारागानसी, दुवाल, रुगा और मेगाम उपजनगोष्ठियों में विभाजित किया जा सकता है।

किवदंतियों के अनुसार, गारों लोगों के पूर्वज तिब्बत के थरुवा नामक स्थान पर रहते थे। एक बार अकाल पड़ने के कारण जापफा, जालीमफा, चुकफा, बंगिफा और बिंजिफा आदि की अगुवाई में इस स्थान को छोड़कर हिमालय पर्वत पार कर सीधे कोचबिहार आ गए और वहाँ कफी लंबे समय तक रहे। लेकिन वहाँ से असम आने के समय उन्हें छोटे-छोटे राज्यों जैसे-धुबड़ी और बिजनी के राजाओं के साथ युद्ध करना पड़ा। अंत में राजा आब्रासेन ने हाब्राघाट में अपनी राजधानी बनाई और आस-पास के इलाकों को अपने राज्य में मिला लिया। दूसरी ओर, कुछ एक-दूसरे से नाराज होकर अगल-अलग स्थानों की ओर चले गए। एक समूह गारो पहाड़ तो दूसरा समूह बांग्लादेश जाकर रहने लगा।

जहाँ तक धार्मिक आस्था की बात है तो गारो लोगों के पूर्वज पूजा-अर्चना करते थे। पूजा करने वालों को गारो लोग 'संसारेक' कहते हैं। इनके देवी-देवता थे चालजंग, गवेरा, खालखामे, आसिमा, डिंगसिमा, सुसिमे आदि। देवी-देवताओं की पूजा में पालतू पशुओं की बलि दी जाती थी, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में गारों लोगों ने ईसाई धर्म अपनाना शुरू किया और पूजा-अर्चना की परंपरा खत्म होने लगी। कालांतर में गारों लोगों का मुख्य उत्सव 'उवानगालाओ' भी विलुप्त हो गया।

गारो लोगों के वाद्य यंत्रों में ढामा ख्राम (ढोल), गगना, भैंस की सींग से निर्मित बाँस के पाइप लगी बंसुरी आदि हैं। इसके अलावा वे रंग-बिरंगी पोशाक पहनते थे, लेकिन वे कपड़े घुटनों के ऊपर तक ही पहनते थे। वर्तमान में गारो महिलाएँ दागाबांदा, दागशारी, चुनी आदि पहनती हैं।

सामाजिक रूप से गारो परिवार का गठन माँ से शुरू होता है। एक से अधिक परिवार या लोगों के बीच एक 'माहारी' बनता है। परंपरागत रूप से गारो लोगों का अनुवांशिक 'माहारी' अर्थात् उपाधि के अलावा अतिरिक्त उपाधि भी होती है। उदाहरणस्वरूप 'आगीतक माहारी' के एक व्यक्ति को अपने नाम के साथ सांगमा लिखना पड़ता है या कुछ लोग केवल सांगमा ही लिखते हैं। गारो समाज में 'माहारी' को इतना अधिक महत्व दिया जाता है कि दो अलग-अलग स्थानों या दो अलग-अलग देशों के होने के बावजूद एक ही 'माहारी' या उपाधि के लोगों के बीच वैवाहिक संबंध निषिद्ध है, क्योंकि उन्हें एक ही गोत्र का माना जाता है।

प्राचीन काल में पहाड़ी गारो युवाओं की शिक्षा के प्रमुख केंद्र 'नकपांथे या डेकाचांग' थे। यहाँ गाँव के सभी युवक एकत्र होकर बाँस-बेंत आदि विभिन्न हस्तकला, वाद्ययंत्र बजाने, खेल-कूद आदि सीखते थे। ये काम एक बड़े भाई द्वारा परिचालित किये जाते थे।

स्वभाव से गारो लोग गुस्सैल और उग्र होते हैं। यही कारण है कि पड़ोसी राजा उन पर शासन नहीं कर पाए। यहाँ तक कि ब्रिटिश शासकों ने दमन नीति के बदले मिशनरियों की मदद से धर्म प्रचार का सहारा लिया। जगह-जगह पर गिरजाघर, विद्यालय आदि की स्थापना कर मिशनरियों को मिशन संचालित करने दिया गया। इस तरह कह सकते हैं कि उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ से गारो समुदाय में सामाजिक बदलाव शुरू हो गया।

मांसाहारी गारो लोग मुर्गा, सूअर और गौ मांस का सेवन करते हैं। सूखी मछली और खार (सिरका) गारों लोगों का अति प्रिय भोजन है। विभिन्न तरह की स्वादिष्ट सब्जियों के बावजूद गारो लोगों के भोजन की थाली में सूखी मछली और 'खार' का व्यंजन जरूर होता है।

गारो जनगोष्ठी के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में संक्षिप्त चर्चा -

रामखे ओवाथ्रे मोमीन

मेघालय के वर्तमान उत्तर गारो पहाड़ी पर अवस्थित माटछक ग्रे नामक एक छोटे से पहाड़ी गाँव में सन् 1834 को रामखे ओवाथ्रे मोमीन का जन्म हुआ था।

रामथे ने 8 फरवरी 1863 को रेवारेंट डॉ. माइल्स ब्रनसन के हाथों गुवाहाटी के शुक्लेश्वर घाट पर ईसाई धर्म ग्रहण किया था। उसके कुछ दिनों बाद दामरा में आकर रामखे ने एक स्कूल स्थापित कर प्राचार्य के रूप में काम करना शुरू किया। रामखे ओवाथ्रे मोमीन ने ईसाई मिशनरियों के प्रभारी मिशनरी के तौर पर भी काम किया था। वर्तमान उत्तर गारो पहाड़ी पर स्थित राजा शिमला गारो आबादी वाले गाँव में चालीस सदस्यों को लेकर सबसे पहले एक ईसाई मिशनरी के रूप में एक गिरजाघर की स्थापना की। इसके बाद डामरा में मिशन

की स्थापना की और एक स्कूल भी खोला। बाद में डामरा के स्कूल को शिक्षक प्रशिक्षण केंद्र बनाया गया। हालांकि हर दृष्टि से सुविधाजनक नहीं होने के कारण इसे ग्वालपाड़ा में स्थानांतरित किया गया। रामखे ओवाथ्रे मोमीन केवल मिशन और स्कूल के संस्थापक ही नहीं थे, बल्कि ग्वालपाड़ा और तुरा नॉर्मल स्कूल में शिक्षक के रूप में भी उन्होंने काम किया था। रामखे एक शिक्षाविद्, लेखक, गीतकार आदि के रूप में गारो समाज के प्रथम व्यक्ति थे। इसलिए वे गारो समाज के मार्गदर्शक माने जाते हैं। उनकी हस्त लिखित पुस्तक कला और संस्कृति को मेघालय सरकार ने सन् 1990 में प्रकाशित किया। उनका लिखा 45000 शब्दों वाला बांग्ला-गारो शब्दकोश चिरस्मरणीय रहेगा। रामखे ओवाथ्रे मोमीन द्वारा लिखित कविताएँ हैं-(1) 1881 में 'बिचिक ख्रिता' (2) 1882 में 'सिमानो आटसियानी' (3) 1883 में 'रिपेंगतांखो निकग्रिकानी' (4) 1884 में 'आ. आको दाकानी' और (5) 'ड' अरांग'।

रामखे ओवाथ्रे मोमीन ने 21 गीतों की रचना की थी। इन गीतों को ईसाई समुदाय के लोग गिरजाघर में प्रार्थना के समय गाते हैं। गीतों का नामकरण 'आस्किनी रिंगानिरांग' के रूप में किया गया था।

ग्वालपाड़ा जिले के अंतर्गत दुधनै के दक्षिण भाग में अवस्थित निसानग्राम गाँव गारो बहुल गाँव था और रामखे डब्ल्यू मोमीन ने इस गाँव को आदर्श गाँव बताया था।

भारत के उत्तर-पूर्व प्रांत के जनजातीय लेखकों में रामखे भी एक थे। इसके अलावा रामखे एक सामाजिक कार्यकर्ता और आर्थिक सुधारक थे। इसलिए कुछ मिशनरियों ने उन्हें आधुनिक गारो समुदाय का जनक (Father of Modern Garo Community) कहा है।

रेभा. गिलबर्थ के मराक

गिलबर्थ के मराक का जन्म 1925 में पश्चिम खासी पहाड़ और दक्षिण कामरूप जिले के सीमा पर अवस्थित रांग्सापाड़ा गाँव में हुआ था। वे रेभा. रामखे और सांगमा के इकलौते पुत्र थे। उन्होंने 1933 में प्राथमिक शिक्षा समाप्त की। सन् 1941 में उच्च माध्यमिक परीक्षा पास करने के साथ ही उन्हें डॉ. भिक्टर हिउगस्वॉर्ड की मदद से चेरापूँजी थियोलॉजिकल कॉलेज में पढ़ने का अवसर मिला और सन् 1949 में एल.टी.एस. परीक्षा पास की। गिलबर्थ के मराक ने सन् 1960 में लिनार्ड थियोलॉजिकल कॉलेज से डिग्री ऑफ बैचलर ऑफ रिलिजियस एडुकेशन प्राप्त की।

गिलबर्थ के मराक ने कामरूप जिले के गोहालकोना उच्च माध्यमिक विद्यालय में अध्यापन किया था। अध्यापन काल के दौरान ही जोरहाट सेमीनरी के प्राचार्य डॉ. डुफीसा ने उन्हें पंजीयक (Registrar) के पद पर नियुक्त किया। गिलबर्थ के मराक और डॉ. डुफीसा ने एकमत होकर *लियू ऑफ द सेमीनरी स्कूल* का नाम बदलकर ईस्टर्न थियोलॉजिकल कॉलेज रखा।

गिलबर्थ के मराक स्विट्जरलैंड के जीनिवा के वर्ल्ड काउंसिल ऑफ क्रिश्चियन एजुकेशन के मुख्यालय में भारत के सलाहकार के पद पर नियुक्त हुए।

कुछ दिन बाद उन्हें वर्ल्ड काउंसिल फॉर चर्च का सदस्य बनाया गया। इसके सदस्य के रूप में उन्होंने दुनिया के कई देशों का भ्रमण किया। उन्होंने थाईलैंड के गिरजाघरों, वर्तमान के म्यांमार, हांगकांग, जापान, पाकिस्तान, मिस्र, लेबनान, एडेन, थियोपिया, केनिया, तंजानिया, कंगो, इटली, स्विट्जरलैंड, फ्रांस और जर्मनी आदि स्थानों का भ्रमण किया।

गिलबर्थ के मराक की कार्यक्षमता को देखते हुए ईसाई संगठनों ने उन्हें ससम्मान 'रेभारेंड' की उपाधि प्रदान की और तब से वे रेभा. गिलबर्थ के मराक नाम से परिचित हुए। क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी ऑफ इंडियन के अनुरोध पर उन्होंने सन् 1972 में पवित्र बाईबल का फिर गारो भाषा में अनुवाद किया।

रेभा. गिलबर्थ के मराक केवल ईश्वरनिष्ठ व्यक्ति ही नहीं थे, बल्कि वे सामूहिक शिक्षा के प्रति आग्रही होने के साथ-साथ साहित्य, काव्य आदि के क्षेत्र में भी अपना योगदान किया था। उनकी कविताओं का नामकरण इस प्रकार किया गया है-'आंग गिसिक खू आनिंग बिदल -1 और बिदल -2' तथा उनके निबंधों में 'गारोहिल्स : द ऑदर डेजर्ट' प्रमुख था। सन् 2007 में मेघालय के पश्चिम गारो पहाड़ जिले के प्रमुख नगर तुरा में रेभा. गिलबर्थ के मराक ने अपनी इहलीला समाप्त की।

सोनाराम रंगरकग्रे सांगमा

सोनाराम रंगरकग्रे सांगमा का जन्म उत्तर -पूर्व गारो पहाड़ और ग्वालपाड़ा जिले के सीमा पर अवस्थित नासिरंगदिक नामक गाँव में सन् 1867 में हुआ था। उनके पिता का नाम खांगाबिल मोमीन और माता का नाम सामरे रंगरकग्रे सांगमा था। निशानग्राम में प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने तुरा मिशन स्कूल में छठवीं तक की पढ़ाई की। उस समय गारो पहाड़ पर छठवीं कक्षा से ऊपर की कक्षा का विद्यालय अर्थात् उच्च प्राथमिक विद्यालय कहीं नहीं था। अत: सोनाराम की शिक्षा छठवीं कक्षा के बाद समाप्त हो गई। वे साहसी, आत्मविश्वासी, परोपकारी और सभी से प्रेम-स्नेह रखने वाले व्यक्ति थे। इसके अलावा उनका सबसे बड़ा गुण था दूसरों की निंदनीय बातों को महत्व न देना और अन्याय-अत्याचार को सहन कर पाना। सोनाराम ने हमेशा अत्याचार और उत्पीड़न का विरोध किया और उन्हें समूल नष्ट करने का जी-तोड़ प्रयास किया।

उस समय ब्रिटिश सरकार जनता से बिना मजदूरी दिए काम करवाती थी। इसके अलावा पहाड़ों के पेड़-पौधों के संरक्षण के नाम पर गारो पहाड़ पर रह रहे गारो लोगों की झूम खेती पर रोक लगा दी थी। ब्रिटिश सरकार की इन कठोर नीतियों को वे बर्दाश्त नहीं कर पाए तथा उन्होंने सरकार का विरोध किया था। उन्होंने

ब्रिटिश सरकार से श्रम के विनिमय में गाँव के लोगों को पारिश्रमिक देने और संरक्षित वनांचल हटा लेने की माँग की थी। 21 अगस्त 1916 ई. को उनका निधन हो गया।

हावर्ड डेनिसन मोमीन

हावर्ड डेनिसन मोमीन को 'आधुनिक गारो साहित्य का जनक' कहा जाता है। उन्होंने सबसे पहले Achik ku-rang अर्थात् 'गारो मानुहर मात' (गारो लोगों की आवाज) नामक गारो भाषा की एक पत्रिका का प्रकाशन किया था।

प्रारंभ में अध्यापन ही उनकी आजीविका का मूल साधन था। लेकिन कालांतर में वे सामाजिक कार्यों में व्यस्त हो गए।

20 फरवरी 1913 ई. को मेघालय के छोटे से शहर तुरा में हावर्ड डेनिसन का जन्म हुआ था। उनके पिता जबांग डी मराक पढ़ने के लिए अमेरिका जाने वाले गारो संप्रदाय के प्रथम व्यक्ति थे। जबांग डी मराक ने सन् 1905 से सन् 1911 तक अमेरिका के हावर्ड विश्वविद्यालय के 'डेनिसन स्कूल' में शिक्षा हासिल की। उसी की स्मृति में उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र का नाम हावर्ड डेनिसन डब्ल्यू मोमीन रखा। इसका अर्थ है शिक्षा और धर्म की उत्पत्ति। हावर्ड डेनिसन डब्ल्यू मोमीन ने कलकत्ता में पढ़ाई करते समय अपना नाम बदलकर 'हावर्ड डेनिसन मोमीन' रख लिया।

नौ वर्ष की उम्र में कलकत्ता के सेंट जेम्स इंग्लिश स्कूल में उनका दाखिला कराया गया। इस स्कूल में पढ़ते समय उनके द्वारा बनाया गया एक चित्र लंदन में आयोजित ग्यारहवीं कॉमनवेल्थ प्रदर्शनी में भेजा गया था और हावर्ड डेनिसन ने सम्मानजनक पुरस्कार प्राप्त किया था। हाईस्कूल पास करने के बाद उन्होंने कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज से सन् 1934 में स्नातक की डिग्री हासिल की। उन्होंने सन् 1936 में अंग्रेजी साहित्य में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की। हावर्ड डेनिसन मोमीन अंग्रेजी में स्नातकोत्तर डिग्री हासिल करने वाले गारो संप्रदाय के प्रथम व्यक्ति थे।

हावर्ड डेनिसन मोमीन को तुरा के प्रशासन विभाग में विचारक के रूप में नियुक्ति दी गई थी। सन् 1940 में वे गुवाहाटी के कॉटन कॉलेज में अंग्रेजी के प्रवक्ता नियुक्त हुए। कॉटन कॉलेज में कार्य करते समय कुछ गारो छात्र-छात्राओं के सहयोग से उन्होंने *आछिक खुरांग* नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया।

उनकी लिखी कविताओं में 1941 में *'गारो मात-बोल',* NANGKO GISIK RAGEN 'तौमालै मनत परिब' (तुम्हारी याद आती है), DO. MA SKINI GIT 'चातकी चराइर गीत' (चातकी चिड़िया का गीत), SENGWAT 'जोनाकी परुवा)(जुगनू), ME. CHIK ARO TA-MAKU 'माइकी आरु तंबाकू' (महिला और तंबाकू), और 1942 में लिखी BILSI GITAL 'नतुन बसर' (नववर्ष) प्रमुख हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय शरणार्थियों की मदद के लिए वे मणिपुर गए थे।

22 फरवरी, 1990 को तुरा शहर में 77वीं पुण्यतिथि पर हावर्ड डेनिसन मोमीन को ससम्मान KA CHALANG (खा छालांग) प्रदान किया गया।

प्रश्नावली

1) गारो लोगों की उप-जनगोष्ठियाँ कौन-कौन सी हैं?
2) गारो बहुल इलाके कौन-कौन से हैं?
3) गारो समुदाय में पूजा करने वाले व्यक्ति को क्या कहा जाता है?
4) प्रारंभ में गारो लोगों का धर्म क्या था और बाद में कौन-सा धर्म अपना लिया?
5) गारो लोगों के प्रधान वाद्य यंत्र क्या-क्या हैं?
6) संक्षिप्त टीका लिखो :
   (क) थांगखान खोकची सांगमा (ख) रामखे ओवाथ्रे मोमीन
   (ग) रेभा. गिलबर्थ के मोमीन (घ) सोनाराम रंगरकग्रे सांगमा
   (ङ) हावर्ड डेनिसन मोमीन

● ● ●

साउताल (संथाल)

साउताल लोग अपनी मातृभाषा संथाली में खुद को 'होड़ हपन' कह कर संबोधित करते हैं। सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय (चटर्जी) के अनुसार साउताल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'समांतराल' से हुई है। असम में चाय उद्योग शुरू होने से बहुत पहले वर्तमान असम में रहने वाले साउताल कामरूप में रहते थे। ऐसा डॉ. वाणीकांत काकति द्वारा रचित पुस्तक 'The Mother Goddess Kamakhya' और प्रताप चंद्र चौधरी द्वारा संपादित 'The History of Civilisation of the People of Assam' नामक पुस्तक में उल्लेख मिलता है।

सामाजिक जीवन :

साउताल लोगों की सामाजिक जीवन प्रक्रिया अत्यंत अनूठी है। वे लोग गांव बसा कर रहते हैं। गांव के जनसाधारण को प्रणाली बद्ध तरीके से शासन करने के लिए गांव के नागरिकों में से 5 लोगों को चुनकर शासन करने का दायित्व सौंपा जाता है। उन पांच व्यक्तियों को 'मोड़े होड़' कहा जाता है। 'मोड़े होड़' के प्रमुख को मुखिया या 'माझी' कहा जाता है। गांव के नागरिकों के बीच विवाद होने पर गांव के 'माझी' से शिकायत की जाती है। उस शिकायत के आधार पर माझी 5 'गडेत' को गांव की जनता को एकत्रित करने का दायित्व सौंपता है। ऐसी प्रक्रिया से समाज की किसी भी समस्या का समाधान किया जाता है।

साउताल लोगों का समाज पितृ प्रधान है। उन लोगों की मुख्य जीविका खेती है। उर्वर कृषि भूमि की खोज में वे लोग अपने निवास स्थान को बदलते रहते हैं। साउताल लोगों के 12 गोत्र हैं, जैसे-मुर्मू, हेंब्रम, किस्कू, बेसरा, टुडु, सरेन, बास्के, हासदा: मार्डी, चोंड़े, पाओरिया और बेडेया। प्रत्येक गोत्र के उप गोत्र है। जैसे - मुर्मू का उप गोत्र ठाकुर, किस्कू का उप गोत्र रापाज आदि।

साउताल महिलाएं मुख्य रूप से लूंगी पंछी (पंछी -पाड़ हाड़) पहनती हैं। संथाली भाषा में पोशाक

को 'होर : बंदे' कहते हैं। महिलाएं शरीर के ऊपरी हिस्से में पंछी और नीचे के हिस्से में पारहाँड़ (लूंगी) पहनती हैं। पुरुष पंछी पहनते हैं।

विवाह उत्सव में साउताल पुरुष धोती पहनते हैं और कन्या जो हल्दी सनी वेशभूषा पहनती है, उसे 'सिंदूर खंडी' कहते हैं। विवाह में वर हल्दी सनी चादर और सफेद कपड़े की तटड़वा : (टोपी) पहनते हैं। उनका प्रमुख उत्सव 'बाहा' और 'सहराई' है। प्रमुख गीत-नृत्य हैं - दंग नृत्य-दंग गीत, लँगड़े नृत्य-लँगड़े गीत, सहराई, बाहागीत आदि।

गीत-नृत्य में इस्तेमाल किए गए उनके वाद्य यंत्र हैं तामाक, टुमडा, करताल, ढोल आदि। विवाह उत्सव में कांसे के पात्र, थाल, कटोरी और लोटे का इस्तेमाल होता है। महिलाएं चांदी के गहने पहनती हैं।

साउताल लोगों के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षिप्त रूप में उल्लेख किया जा रहा है।

बेनेडिक्ट हेंब्रम

संथाली भाषा-साहित्य का उत्थान करने के लिए बेनेडिक्ट हेंब्रम ने अतुलनीय योगदान किया। उनके पिता का नाम डातु लक्ष्मण हेंब्रम और माता का नाम रानी सोरेन था। माता-पिता की इकलौती संतान हेंब्रम का जन्म 18 अक्तूबर, 1967 को कोकराझाड़ जिले के गोसाईंगांव महकमे के पलाशगुड़ी (जियाडांगा) गांव में हुआ था।

गांव के प्राथमिक स्कूल से शिक्षा शुरू कर उन्होंने सन् 1993 में कॉटन कॉलेज से जीव विज्ञान में अच्छे अंकों के साथ एमएससी की डिग्री हासिल की। वे निचले असम के प्रथम संथाल व्यक्ति थे, जिनको एमएससी की डिग्री मिली।

उन्होंने गोसाईंगांव बी एड कॉलेज से बी.एड की डिग्री हासिल की और ग्राहमपुर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्यापन करने लगे। इसके साथ ही उनको संथाली भाषा-साहित्य शोध केंद्र का अध्यक्ष बनाया गया। उनके नेतृत्व में स्वर्गीय लुबींद्रनाथ सोरेन और श्री सुबोध बासकेर के कठोर परिश्रम के बलबूते पर असम सरकार संथाली पाठ्यपुस्तकें नि:शुल्क मुहैया कराने लगी। उन्होंने संथाली भाषा में कई कविताएँ तथा लेख आदि लिखने के अलावा असम में सबसे पहले संथाली व्याकरण लिखकर संथाली भाषा-साहित्य को समृद्ध बनाया।

वे एक सफल वक्ता और कुशल खिलाड़ी थे। संथाली लोगों के बीच शिक्षा का अलख जगाने के लिए वे बीच-बीच में जागरुकता सभाओं का आयोजन किया करते थे।

वे सहज-सरल और संकल्प के धनी व्यक्ति थे। वे अपने कर्तव्य की कभी भी अवहेलना नहीं करते थे। सही समय पर कार्य स्थल पर उपस्थित होना उनका बहुत बड़ा गुण था। मृत्यु से एक दिन पहले भी वे अपना कार्य सुचारु रूप से कर रहे थे।

कई सालों तक मधुमेह रोग से पीड़ित रहने के बाद 5 अक्तूबर 2013 को उनका देहांत हो गया।

बदन हासडा

उनका जन्म कोकराझाड़ जिले के खापरगांव में 1957 में हुआ था। उनके पिता का नाम माझी हासडा और माता का नाम सलमा बेसरा था।

कोकराझाड़ कॉलेज से आईए की पढ़ाई कर हासडा अपनी जनगोष्ठी का शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक उत्थान करने में जुट गए। सन् 1980 में उनके नेतृत्व में अखिल असम संथाल छात्र संघ की स्थापना हुई। सन् 1986 में उनके नेतृत्व में आदिवासी सेवा समिति का गठन हुआ और वे वर्षों तक इसके अध्यक्ष बने रहे। वे असम संथाली साहित्य सभा के भी सलाहकार थे। जब सन् 1996 में जातीय दंगा हुआ तब अमन की बहाली के लिए उन्होंने अहम भूमिका निभाई। कोकराझाड़ जिला उपायुक्त ने उनको 'शांति एवं एकता पुरस्कार' देकर सम्मानित किया। सन् 2003 में बीटीसी समझौता होने पर उनको संथाल जनगोष्ठी के प्रतिनिधि के तौर पर परिषद में कार्यकारी सदस्य बनाया गया।

1 मई, 2007 को आतंकियों के हमले में उनकी जान गई। उनके योगदान को बीटीसी के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा रहेगा।

मिथियस टुडु

असम में साउताल समुदाय के लिए मिथियस टुडु ध्रुव तारा की तरह थे। सन् 1930 में उनका जन्म कोकराझाड़ जिले के गोसाईंगांव महकमे के माटियाजुरी गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम रेवरेंड कानहु टुडु और माता का नाम मारथा मुर्मु था। गांव के प्राथमिक स्कूल से शैक्षिक जीवन शुरू कर उन्होंने कॉटन कॉलेज से बीए की डिग्री हासिल की। पश्चिम बंगाल के बेरहमपुर से उन्होंने बीटी की डिग्री हासिल की थी।

ग्राहमपुर हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक के रूप में सन् 1954 में उनको नियुक्त किया गया। राहेल सोरेन के साथ उनका विवाह हुआ। सन् 1957 में उन्होंने गोसाईंगांव क्षेत्र से विधानसभा चुनाव जीत कर असम विधानसभा में विधायक चुने गए। 1957 से 1991 तक वह लगातार सात बार विधायक बने। सन् 1972–1978 की अवधि में वे असम सरकार के श्रमिक–कल्याण विभाग के मंत्री थे। सन् 2001–2005 में वे फिर विधानसभा चुनाव जीतकर राजस्व मंत्री बने थे। सन् 2005 से 2010 तक वे बीस सूत्री योजना के उपाध्यक्ष रहे।

असम में चालीस सालों तक विधानसभा में संथाल लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाले वे एकमात्र व्यक्ति थे। वे असम संथाली साहित्य सभा के अध्यक्ष, संथाली भाषा–साहित्य शोध केंद्र के संस्थापक अध्यक्ष, संथाल कॉलोनी परगना बाइसी के अध्यक्ष, ग्राहमपुर सहकारी समिति के संस्थापक, मरनाई चाय बागान प्रबंधन समिति के अध्यक्ष, सेवापुर मिशन अस्पताल के अधीक्षक आदि पदों पर रहे थे।

वे एक दक्ष फुटबाल खिलाड़ी थे। किताब पढ़ना, बागवानी, खेती की देखरेख और शिकार करना उनका शौक था।

वे एक धार्मिक व्यक्ति थे। वे कभी कड़वी बात नहीं बोलते थे। हरेक रविवार को चर्च जाते थे।

10 जुलाई, 2017 को उनका देहांत हो गया।

राहेल किस्कू

राहेल किस्कू का जन्म 1925 में कोकराझाड़ जिले के गोसाईंगांव महकमे के बरसनपुर गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम जहन किस्कू और माता का नाम लुक्षी मुर्मु था।

बचपन से उनको पढ़ाई में दिलचस्पी थी। हाराफुटा मिशन स्कूल से शिक्षा शुरू कर सन् 1951 में लखनऊ के एक कॉलेज से स्नातक की डिग्री हासिल की। वे प्रथम संथाल महिला स्नातक थीं।

नौकरी करते समय समाज की गरीब महिलाओं की मदद के लिए अपने खर्च पर उन्होंने उनके लिए सिलाई प्रशिक्षण का काम शुरू किया था। वहाँ महिलाओं को नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की गई थी।

भ्रष्टाचार, शराबखोरी, डायन हत्या के खिलाफ जागरूकता पैदा करते हुए उन्होंने महिलाओं के बीच शिक्षा का अलख जगाने का काम किया था। ग्राहमपुर हाईस्कूल में सन् 1952 में उनको सह–शिक्षिका के तौर पर नियुक्त किया गया था, जहां से सन् 1980 में वे प्रधानाध्यापिका के रूप में सेवानिवृत्त हुईं।

अवकाश के बाद उन्होंने सामाजिक, धार्मिक और शैक्षणिक विकास के लिए काम किया। संथाली भाषा में उन्होंने साहित्य का सृजन किया। वे संथाली भाषा की कवयित्री व दक्ष लेखिका थीं। महिलाओं और बच्चों से जुड़े मसलों पर उन्होंने लेखनी चलाई। राहेल किस्कू का संथाली साहित्य जगत में जो योगदान रहा, वह सबके लिए अमूल्य संपदा है। 6 अप्रैल, 2001 को उनका देहांत हो गया।

प्रश्नावली

1. सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय के अनुसार साउताल शब्द की उत्पत्ति कहां से हुई है?
2. साउताल लोगों की मुख्य जीविका क्या है?
3. 'मोड़े होड़' (पाँच व्यक्ति) के प्रधान व्यक्ति को क्या कहा जाता है?
4. साउताल लोगों की उपाधियाँ कितनी और क्या-क्या हैं?
5. साउताल लोगों की कला-संस्कृति के बारे में संक्षेप में लिखिए।
6. साउताल लोगों के सामाजिक जीवन का वर्णन कीजिए।
7. अर्थ लिखिए-

सिंदूर खांडी,	हल्दी सनी वेषभूषा
टाटड़वा	टोपी
होर: बांडे	पोशाक
माझी	मुखिया
पाड़ हाँड़	लूँगी

8. संक्षेप में टिप्पणी लिखिए-

(क) बेनेडिक्ट हेंब्रम (ख) बदन हासडा

(ग) मिथियस टुडु (घ) राहेल किस्कू

●●●

चाय जनगोष्ठी

असम में विभिन्न समय में विभिन्न प्रांतों से अनेक नृ-गोष्ठियों का प्रवजन हुआ था। भारत के कई राज्यों से चाय जन गोष्ठी के लोग असम आए थे, लेकिन इस जनगोष्ठी के लोगों का प्रवजन स्वाभाविक नहीं था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने चाय मजदूरों की जरूरत की पूर्ति करने के लिए भारत के विभिन्न इलाकों से मजदूरों को जुटाया था। कंपनी ने सन् 1835 से ऊपरी असम के चाबुआ में सबसे पहले व्यवस्थित रूप से चाय की खेती शुरू की। इसके चार साल के बाद असम चाय कंपनी (द असम टी कंपनी) की स्थापना हुई। असम चाय कंपनी के अंतर्गत चाय खेती का धीरे-धीरे विस्तार होता गया, लेकिन जरूरत के अनुसार स्थानीय मजदूरों का अभाव था। इसीलिए चीन और भारत के विभिन्न इलाकों से मजदूर जुटाने पर विचार किया गया। इसके लिए कंपनी ने कुछ बिचौलियों को नियुक्त किया था। इन बिचौलियों ने पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मद्रास आदि स्थानों से मजदूरों का संग्रह किया था। इस तरह असम में मजदूरों को लाने के कार्य को मजदूर चालान कहा जाता था। मजदूर चालान दो प्रकार का होता था। एक होता था 'गिरमिटिया' चालान और दूसरा होता था 'आड़काठिया' चालान। लिखित समझौते (एग्रीमेंट) के अनुसार निश्चित समय के लिए मजदूरों को लाया जाना 'गिरमिटिया' चालान कहलाता था और समझौते के बगैर छल-बल-कौशल से लाए गए मजदूरों को 'आड़काठिया' चालान कहा जाता था।

असम चाय कंपनी ने 19वीं शताब्दी के मध्य हिस्से में हजारीबाग जिले से सबसे पहले 652 मजदूरों का संग्रह किया था, किंतु ये मजदूर असम नहीं पहुंच पाए। बीमार होकर आधे मजदूरों की मौत रास्ते में ही हो गई और बाकी लौट गए। इसके बाद छोटानागपुर से कंपनी ने बिचौलियों के द्वारा मजदूरों का संग्रह किया। इनमें से भी कुछ ही मजदूर असम पहुंचने में सफल हुए। शेष मजदूरों की मृत्यु रास्ते में ही हो गई, लेकिन धीरे-धीरे मजदूरों की संख्या बढ़ती गई। सन् 1877 में समझौते के अंतर्गत लाए गए मजदूरों की संख्या 46,765 हो गई। भारत के विभिन्न प्रांतों से मजदूर आए थे, इसीलिए उन लोगों की जाति, वर्ण, धर्म, भाषा, संस्कृति में विभिन्नता थी। असम में आकर चाय बागान के एक ही माहौल में उनको काम करना पड़ रहा था।

शुरुआत में कुछ असुविधा होने पर भी समय गुजरने के साथ-साथ उनके बीच पारस्परिक संपर्क और सौहार्द का भाव बढ़ता गया था। समझौते के तहत आए कुछ मजदूर वापस अपने इलाके में चले गए, लेकिन बाकी इसी असम को अपनी भूमि मानकर बस गए। असम में स्थाई रूप से रह जाने वाले मजदूरों के बीच एक संपर्क भाषा तैयार हुई, जिसे बगनिया भाषा कह कर पुकारा जाता है। असल में बगनिया भाषा एक बोली ही है। यह अभी भी भाषा के स्तर तक पहुंच नहीं पाई है।

चाय चनगोष्ठी अब असम के समाज जीवन का एक अनिवार्य अंग है। चाय श्रमिकों और पूर्व चाय श्रमिकों की संख्या मिलाकर असम में चाय जनगोष्ठी की आबादी लगभग साठ लाख है। इनमें हिंदू और इसाई धर्मावलंबियों की संख्या अधिक है। जो हिंदू हैं, उनमें अधिकतर शाक्त धर्मावलंबी और जड़ उपासक। वे दुर्गा, काली, मनसा आदि अनेक देव-देवी की पूजा करते हैं। अनुकूल ठाकुर के अनुयायियों की संख्या भी कतई कम नहीं है।

वर्तमान चाय जनगोष्ठी समाज के बीच असम के अलावा विभिन्न राज्यों के आदिवासी, जाति, जनजाति, उपजाति और विभिन्न समुदाय के लोग हैं।

असम की ब्रह्मपुत्र और बराक घाटी के चाय बागानों में लंबे समय से रहने वाले चाय जनगोष्ठी के लोग असमीया समाज के अपरिहार्य अंग बन चुके हैं। असमीया भाषा संस्कृति को अपनाकर उन्होंने अपनी पहचान को भी कायम रखा है। उन लोगों की अपनी कला-संस्कृति, आचार-व्यवहार पूरी तरह लुप्त नहीं हुए हैं। करम, तुसु और शहंराइ उनके अत्यंत जनप्रिय उत्सव हैं। करम पर्व के झूमर नृत्य-गीत चाय जनगोष्ठी समाज की पहचान को उजागर करते हैं।

असम के समाज जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन कर भी चाय जनगोष्ठी समाज कई मामलों में पिछड़ा हुआ है। राज्य की अर्थनीति में उल्लेखनीय भूमिका निभाने के बावजूद चाय मजदूरों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। उनका जीवन स्तर भी काफी पिछड़ा हुआ है। चाय मजदूरों को दैनिक मजदूरी तुलनात्मक रूप से कम मिलती है। उनके बीच निरक्षरता का प्रतिशत राज्य के प्रतिशत से ज्यादा है। शिक्षा की रोशनी से दूर चाय जनगोष्ठी समाज में अंधविश्वास और कुरीतियां प्रचलित है। भूत प्रेत, डायन, झाड़ फूंक, मंत्र पूजा अनुष्ठान आदि से भी वे प्रभावित हैं। असल में वर्षों से बागान प्रबंधन के कठोर अनुशासन और आर्थिक संकट के बीच जीवन गुजारने की वजह से बाहरी जगत से चाय मजदूर काफी दूर रहते आए हैं, लेकिन धीरे-धीरे उनकी स्थिति में बदलाव आ रहा है। बागान प्रबंधन के साथ ही सरकार अगर कल्याणकारी योजनाएं शुरू करेगी तो चाय जनगोष्ठी समाज के लोग समय के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ने में सक्षम होंगे।

चाय जनगोठी के कई विशिष्ट लोगों ने उल्लेखनीय योगदान किया है, जिनमें से कुछ व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

मेघराज कर्मकार

चाय जनगोष्ठी के जिन लोगों ने असमीया भाषा-साहित्य चर्चा कर ख्याति अर्जित की है, उनके बीच ऊपरी असम के जामिता चाय बागान के मेघराज कर्मकार का नाम प्रमुख है। वे चाय जनगोष्ठी समाज के प्रथम साहित्यिक पेंशनर हैं। 'चालुक वचन' सहित उनकी कई किताबें प्रकाशित हैं। असम प्रकाशन परिषद ने 'मेघराज कर्मकार रचनाबली' का प्रकाशन किया है। वे बरबरुवा हाईस्कूल में अध्यापन करते थे।

संतोष कुमार तप्न

मरान के संतोष कुमार तप्न की 'मुंडा जातिर चमु परिचय' (मुंडा जाति का संक्षिप्त परिचय) नामक पुस्तक चाय जनगोष्ठी की पहली प्रकाशित पुस्तक है। वे असम चाय जनजाति छात्र संघ के संस्थापक सचिव थे। 1924 में पैदा हुए तप्न के पिता का नाम दयाल तप्न और माँ का नाम मारथा तप्न था। जोरहाट जेबी कॉलेज से स्नातक की डिग्री प्राप्त करने वाले तप्न ने समाज सेवा के साथ साहित्य साधना भी की थी। असम के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख प्रकाशित हुए। सहज-सरल जीवन-यापन करने वाले इस महान व्यक्ति का देहावसान 21 नवंबर 1994 को हो गया।

साइमन सिंह होर

टियोक के साइमन सिंह होर जन्म 1929 में हुआ। पिता का नाम मासीराम होर और माता का नाम सारा होर था। उन्होंने शिवसागर के मिशन स्कूल में शिक्षा जीवन की शुरुआत करने के बाद जोरहाट के जेबी कॉलेज से स्नातक की डिग्री हासिल की। सरकारी नौकरी को ठुकरा कर उन्होंने समाज सेवा की तरफ ध्यान दिया। वे उदार मन के थे। ईसाई धर्मावलंबी होने पर भी हिंदू धर्म का नामघर बनाने के लिए उन्होंने अपनी जमीन का दान किया था। शिक्षा के बारे में सोचकर पिछड़े इलाके में उन्होंने स्कूल की स्थापना कर शिक्षा की रोशनी फैलाई थी। उनका देहावसान 26 जून 1979 को हो गया।

कॉलेज की शिक्षा से शिक्षित इन दोनों व्यक्तियों ने चाय जनगोष्ठी के समाज को एकत्रित करने में अग्रणी भूमिका निभाई। इसीलिए दोनों को चाय जनगोष्ठी के समाज निर्माण का अग्रदूत कहा जाता है।

देश के स्वाधीनता संग्राम में चाय जनगोष्ठी का विशेष योगदान रहा है। संग्राम के अलग-अलग कार्यक्रम में भाग लेकर कई लोगों को सरकारी अत्याचार का सामना करना पड़ा था और कुछ लोगों को मौत को गले लगाना पड़ा था। सन् 1921 में असहयोग आंदोलन में भाग लेकर वर्तमान शोणितपुर जिले के तेजपुर

एंड घगरा टी इस्टेट की मांगड़ी उरांव ने अपनी जान कुर्बान कर दी थी। स्वाधीनता संग्राम में जीवन का त्याग करने वाली वह असम की पहली महिला शहीद थी। असम के विदेशी बहिष्कार आंदोलन में भी चाय जनगोष्ठी के लोगों ने सक्रिय रूप से भागीदारी की थी। सरकारी दमन - अत्याचार के शिकार होकर कुछ लोगों की जान भी गई थी। सन् 1980 में दरंग जिले के कोपाती चाय बागान के बाधना उरांव असम आंदोलन में जान देने वाले चाय जनगोष्ठी के प्रथम शहीद थे।

प्रश्नावली

1. असम का पहला चाय बागान कौन-सा है और कब स्थापित हुआ था?
2. असम की पहली चाय कंपनी का नाम क्या था और कब स्थापित हुई थी?
3. 'गिरमिटिया' और 'आड़काठिया' चालान के बारे में क्या जानते हैं लिखिए?
4. चाय जनगोष्ठी समाज की 10 जातियों-उपजातियों के नाम लिखिए।
5. चाय जनगोष्ठी के बीच कौन कौन-से धर्म के लोग हैं?
6. स्वाधीनता संग्राम में पहली महिला शहीद का नाम क्या है?
7. असम आंदोलन में प्राण उत्सर्जित करने वाले चाय बागान के प्रथम शहीद का नाम क्या है?
8. संक्षेप में लिखो-

(क) मेघराज कर्मकार (ख) संतोष कुमार तप्न

(ग) साइमन सिंह

●●●

सुतिया

असम के आदिम अधिवासियों के बीच सुतिया लोग प्रमुख माने जाते हैं। आनुमानिक छठी शताब्दी से प्राचीन सुतिया राज्य के ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं। तब से लेकर आहोम स्वर्गदेव सुहुंगमूंग दिहिंगिया राजा के शासनकाल (1523 ईस्वी) में अहोम राज्य के अंतर्गत होने तक के लंबे समय तक ये लोग मुख्य रूप से ब्रह्मपुत्र के उत्तरी किनारे पर शासन करते थे। गौरतलब है कि आहोम के साथ हुए युद्ध में सुतिया लोगों की रानी वीरांगना सती साधनी ने पराक्रम के साथ युद्ध किया था और आहोम की अधीनता स्वीकार करने की जगह मौत को बेहतर जानकर कुबेर प्रदत्त संपत्ति की सीने में बांधकर चंदनगिरि पर्वत से नीचे कुंड में छलांग लगाकर जान दे दी थी।

हिमालय के उत्तर के मानस सरोवर से पूर्व में स्थित स्वात सरोवर के आसपास के इलाके सुतिया लोगों के मूल निवास स्थान थे। वहां से वे लोग सोवनशिरि नदी के किनारे किनारे पश्चिम की तरफ प्रवजन कर वर्तमान के लखीमपुर इलाके में पहुंचे थे। स्वात सरोवर के किनारे के इलाके से आने की वजह से इन लोगों को स्वातिया कहा जाता था। कालांतर में इसी स्वातिया शब्द से सुतिया शब्द की उत्पत्ति हुई।

दूसरी तरफ यह भी कहा जाता है कि जि या डि या टि यानी पानी या नदी,सू यानी नदी,सू टि यानी पवित्र नदी; उस नदी के किनारे बसे हुए लोग सुतिया कहलाए। (विष्णु प्रसाद राभा रचनावली, प्रथम खंड,1982, पृष्ठ 336, 337)।

सुतिया लोगों के शासन वाले सदिया राज्य का पुराना नाम विदर्भ था और इसकी राजधानी का नाम कुंडल नगर था। सुतिया लोग खुद का परिचय विदर्भ राज्य के राजा भीष्मकर के वंशज के रूप में देते हैं। ये लोग देवी के उपासक थे और सदिया की केंसाईखाती या ताम्रेश्वरी देवी की पूजा नरबलि से करते थे। सुतिया राज्य जब आहोम राज्य में शामिल हुआ, तब आहोम लोग भी केंसाईखाती देवी की पूजा करने लगे। स्वर्गदेव गौरीनाथ सिंह के दिन से नर बलि की प्रथा समाप्त हो गई।

सुतिया लोगों की एक समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा थी। ये लोग मंगोलियन नृगोष्ठी की वृहद बोड़ो जनगोष्ठी के अंतर्गत हैं।

ये लोग नगर बसा कर रहते थे, ऐसा अनुमान किया जाता है। कुंडिल नगर,भीष्मक नगर, लक्ष्मी नगर, रत्नपुर या रतनपुर आदि नाम और उनमें से कुछ नगरों के अवशेष से इन लोगों की उन्नत सभ्यता-संस्कृति का परिचय मिलता है। आहोम राजा ने सुतिया राज्य जीतने के बाद जो विभिन्न सामग्री और पेशेवर लोगों को हासिल किया था, उसका उल्लेख 'सातसरी असम बुरंजी' में किया गया है। उनमें हाथी 30, घोड़े 60, तोप 79, पुरस्कार-पदवी, दंडछत्र केंकोरा डोला, तलवार, पीकदान, गाय-भैंस आदि शामिल हैं। गणक, ब्राह्मण, तांती (बुनकर), सोनार, लोहार, तेली, माली, धोबी, चमार कई अन्य जाति के लोग युद्ध के दौरान मिले। इस उदाहररण में मौजूद दंडछत्र, केंकोरा डोला, तलवार, पीकदान आदि और तांती, सोनार, लोहार आदि पेशेवर लोगों की सूची देखकर सुतिया राज्य की उन्नत सभ्यता और श्रम के विशिष्ट विभाजन वाले एक समाज का प्रमाण मिलता है।

ये लोग भास्कर्य शिल्प में भी समृद्ध थे। मयूर पंछी के साथ विष्णु मूर्ति, शिव-पार्वती की मूर्ति, सूर्य की मूर्ति, ताम्रेश्वरी मंदिर, केंसाईखाती थान, मालिनी थान आदि इन लोगों के स्थापत्य भास्कर्य का परिचय प्रस्तुत करते हैं। इन सबके अलावा सोने से निर्मित डुगडुगी, सोने का हार, सोने का कंगन, सोने और चांदी का कंगन, सोने की बिल्ली, तीन परत वाला सिंहासन, शतरंज, काली, सरा नाव आदि व्यवहार करने का प्रमाण मिलता है, जिससे इन लोगों की उन्नत संस्कृति-चेतना का परिचय मिलता है।

इतिहासकार बेणुधर शर्मा ने लिखा है-सुतिया लोगों से जो हजारों शस्त्र मिले उनके भीतर 'मीठाहोलोंग' नामक बर तोप उत्कृष्ट था। तोप के ऊपरी हिस्से का पीतल से निर्माण किया गया था, जिसमें मीनाकारी कर सोने की सज्जा की गई थी। एक सुतिया व्यक्ति ने बांस से दो मंजिले घर का निर्माण किया था। उस समय तक लोहित के दक्षिण किनारे दो मंजिला घर नहीं था। स्वर्गदेव को निर्माण की शैली देखकर काफी संतोष हुआ और उसी के आधार पर राजा का घर दो मंजिला बनाने का आदेश दिया।

सुतिया लोग कहीं फिर से बगावत न कर दें, इस आशंका के चलते आहोम राजा ने सुतिया लोगों को अलग-अलग टुकड़ों में बांटकर असम के विभिन्न स्थानों पर बसा दिया, जिसकी वजह से सुतिया लोग अपनी सभ्यता-संस्कृति का ठीक तरह से संरक्षण नहीं कर पाए।

सुतिया जनगोष्ठी के अनेक लोगों ने असमीया जातीय जीवन के विभिन्न क्षेत्र में जो योगदान किया है, वे आज भी स्मरणीय बने हुए हैं। नीचे ऐसे ही कुछ लोगों के बारे में संक्षेप में परिचय दिया गया है।

वैष्णव पंडित सोनाराम सुतिया

वर्तमान जोरहाट जिले के काकजान अंचल के बाम कुकरासोवा गांव में सन् 1915 में जन्म लेने वाले सोनाराम सुतिया देव ने विशेष रूप से असम के धार्मिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया है। उन्होंने सन् 1935 में पांच

विषयों में लेटर सहित मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर कॉटन कॉलेज से विज्ञान विषय में ख्याति के साथ स्नातक की डिग्री हासिल की और प्रखंड विकास अधिकारी के रूप में नौकरी की। भारत के स्वाधीनता आंदोलन में योगदान कर उन्हें दो साल तक जेल में रहना पड़ा। परवर्ती समय में उन्होंने संस्कारधर्मी मानसिकता के साथ श्रीमंत शंकरदेव संघ में योगदान किया और नौ कार्यकाल तक पदाधिकार के पद पर काम किया। उनकी उल्लेखनीय कृतियों के नाम हैं–'असम के वैष्णव दर्शन की रूपरेखा', 'नाम धर्म प्रकाश', 'महापुरुष श्रीश्री हरि देव चरित', 'भागवत माहात्म्य', 'महापुरुषीया धर्म जिज्ञासा', 'वेद और महापुरुषीया धर्म' इत्यादि। केंद्र सरकार ने इस धर्म पारायण व्यक्ति को स्वाधीनता संग्रामी के तौर पर मान्यता दी थी। असम सरकार ने उनको श्रीमंत शंकरदेव पुरस्कार दिया था और कैबिनेट पद का दर्जा प्रदान कर सम्मानित किया था। दूसरी तरफ श्रीमंत शंकरदेव संघ ने श्रीमंत शंकरदेव–माधवदेव पुरस्कार और वैष्णव पंडित की उपाधि प्रदान कर उनके जीवन भर के योगदान को स्वीकृति दी थी।

इतिहासकार डॉ. स्वर्णलता बरुवा

डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग की प्रमुख तथा श्रीश्री अनिरुद्ध देव पीठ की अध्यापिका के तौर पर कार्य करने के बाद सेवानिवृत्त होने वाली स्वर्णलता बरुवा उत्तर–पूर्व की एकमात्र महिला इतिहासकार के रूप में स्वीकृत हुई थी। 'सुतिया जातिर बुरंजी' (सुतिया जाति के इतिहास) की मुख्य संपादक इस महिला ने 'A Comprehensive History of Assam', 'Last Day of Ahom Monarchy : A History of Assam From 1769-1826' आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों के अलावा अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक लेखों के जरिए असम के इतिहास अध्ययन क्षेत्र को समृद्ध बनाया है। गौरतलब है कि इस इतिहासकार ने 'Status of Women in Non-Tribal Societies of Assam' नामक शोधपत्र के जरिए व्यापक प्रशंसा हासिल की थी।

कर्मप्राण हरिप्रसाद नेउग

जोरहाट नगर से लगभग 5 किलोमीटर दूर केंदुगुरी के 2न. बामुन गांव में पैदा होने वाले हरिप्रसाद नेउग (सन् 1929–1973)मरियानी कॉलेज के प्राचार्य के रूप में कार्य करने के अलावा डिब्रुगढ़ विश्वविद्यालय की पाठ्यपुस्तक प्रणयन समिति के प्रथम सचिव के तौर पर भी कार्य करते थे। कर्म दक्षता की वजह से असम साहित्य सभा के छह वर्षों तक सहायक सचिव और 4 वर्षों तक प्रधान सचिव बने रहे। इस तरह उन्होंने सांगठनिक दक्षता और कर्तव्यनिष्ठा का प्रमाण प्रस्तुत किया। सभा के प्रधान सचिव के तौर पर महा समारोह के साथ साहित्य रत्न लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा जन्मशताब्दी का आयोजन उनकी सांगठनिक दक्षता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। उन्होंने 'राधाकांत संदिकै', 'विश्वनाथ राजवंशी', 'चंद्रकुमार अग्रवाल' आदि ग्रंथों का लेखन करने के अलावा 'असमीया संस्कृति' (लीला गोगोई के साथ संयुक्त रूप से), 'डिंबेश्वर नेउग', 'रघुनाथ

चौधरी', 'अंबिका गिरी रायचौधरी', 'नकुल चंद्र भूइयां' आदि ग्रंथ और जोवार, 'साहित्य दूत', 'गति पथ' आदि पत्रिकाओं का संपादन कर असमीया जातीय जीवन में महत्वपूर्ण योगदान किया।

चिदानंद सैकिया

वर्तमान गोलाघाट जिले के बोकाखात गांव में सन् 1924 में पैदा होने वाले आजीवन शिक्षाव्रती, स्वाधीनता संग्रामी चिदानंद सैकिया मुख्य रूप से साम्यवादी दर्शन के समर्थक थे। उन्होंने 27 पुस्तकों की रचना कर असमीया साहित्य को समृद्ध बनाया। उनमें से कुछ उल्लेखनीय पुस्तकों के नाम है-'सोवियत नारी', 'सीमांत गांधी', 'महर्षि कार्ल मार्क्स', 'जुये पोरा सोन', 'रंगसुवा पृथ्वीर सेउजिया बोल', 'जिया ढल बागरि जाय', 'प्रवीण श्रमिक नेता सानू खेड़िया', 'रशियन साहित्यर आभास', 'स्वाधीनता संग्रामत गोलाघाटर अवदान', 'शंकर बरुवा : कर्म आरू जीवन', 'धीरेन दत्तर कविता', 'आधुनिक रचना शिक्षा' (प्रथम, द्वितीय और तृतीय खंड), 'नतुन आदि पाठ', 'सत्याग्रही' आदि। इसके अलावा उन्होंने कई ग्रंथों का संपादन भी किया था और अखबारों-पत्रिकाओं में लेख लिखे थे। साहित्य चर्चा की वजह से मास्को और ताशकंद भ्रमण करने की सुविधा पाने वाले इस साहित्यकार को सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, साहित्यिक पेंशन और शिक्षक पुरस्कार मिले थे। असम की पत्रकारिता जगत में भी उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान किया। बोकाखात शहर के समीपवर्ती काजीरंगा मौजा के कलाखोवा गांव के भूमिहीन लोगों को 10 बीघा जमीन (दाग नंबर 112,पट्टा नंबर 93) दान कर उन्होंने गरीब लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति का प्रदर्शन करते हुए अपने उदार व्यक्तित्व का उदाहरण प्रस्तुत किया।

दुबरी वन के कवि कोषेश्वर बरुवा

छयद्वार कॉलेज के संस्थापक प्राचार्य, इतिहासकार कोषेश्वर बरुवा का जन्म सन् 1936 में तत्कालीन लखीमपुर जिले के धौलपुर मौजा के बरठेकेबारी गांव में हुआ था। असम सरकार से साहित्यिक पेंशन प्राप्त करने वाले इस कवि ने विभिन्न विषयों की कई पुस्तकों की रचना कर असमीया साहित्य को समृद्ध बनाया। उन पुस्तकों में प्रमुख हैं-'कलेजार दुबरी वन', 'अनुभव', 'प्रजन्मर उमानत', 'लगन', 'आगंतुक' आदि कविता संकलन; 'धन्य जन्म भारतवरिषे', 'जननेता भीमवर देवरी', 'लुइतर अगारीर असमीया सभ्यता', 'छोट कोंवरर बुरंजी', 'ऐतिहासिक विवर्तनत असमर सुतिया जनगोष्ठी', 'सुतिया रजा रत्नध्वज पाल', 'Sati Sadhini', 'Deuri Chutia Language' और 'An outline Grammar of the Deuri Chutia Language

Spoken in Upper Assam by W.B Brown' आदि प्रमुख हैं। इसके अलावा उन्होंने गीतों के दो संग्रह और विभिन्न अखबारों व पत्रिकाओं में 500 से भी अधिक लेख लिखे थे। गौरतलब है कि वे सन् 1992 में गहपुर विधानसभा क्षेत्र से असम विधानसभा के लिए चुने गए थे। उन्हें डॉ. अंबेडकर फ़ेलोशिप के साथ ही असम सरकार की तरफ से दिया जाने वाला सुतिया जाति उन्नयन परिषद का सती साधनी पुरस्कार भी मिला था।

सहायक ग्रंथ :

1. Nath Rajmohan, "The Background of Assamese Culture, p.68.
2. Devi Lakshi, "Ahom Tribal Relation, 1968, p59.

प्रश्नावली

1. सुतिया लोगों का मूल निवास स्थान कहां था?
2. सुतिया शब्द की उत्पत्ति किस शब्द से हुई थी?
3. सुतिया लोगों की एक वीरांगना का नाम लिखिए।
4. नीचे दिए गए किसी एक के बारे में संक्षेप में लिखिए।
   (क) सोनाराम सुतिया (ख) डॉ. स्वर्णलता बरुवा (ग) चिदानंद सैकिया (घ) कोषेश्वर बरुवा।
5. सुतिया लोगों के बारे में संक्षिप्त परिचय लिखिए।

● ● ●

ठेंगाल कछारी

असम में रह रही एक प्राचीन जाति का नाम है कछारी जाति। प्राचीनकाल में कछारियों को किरात नाम से जाना जाता था। नृतत्वविदों ने इन किरातों को मंगोलीय या मंगोलयड की संज्ञा दी थी। एक जमाने में सिर्फ असम में ही नहीं समग्र उत्तर भारत में किरातों का काफी बोलबाला था।

मंगोलीय (किरात) समुदाय की शारीरिक विशेषताएं इस प्रकार हैं—'शरीर का रंग पीला या पीला पिंगल, बाल काला, ऋजु तथा असमान, दाढ़ी-मूंछ अधिक, शरीर के लोम कम, चेहरा चौड़ा तथा नाक चिपटा। ललाट स्पष्ट आकार का, नेत्र संकीर्ण या वक्र, नेत्रच्छेद की मोड़ मंगोलीय का एक विशेष लक्षण है।' इन किरातों के खासतौर पर बड़ी नदी या पहाड़ के नजदीकी क्षेत्रों में रहने के कारण संस्कृत में इन्हें कक्षवाट कहते हैं। कक्षवाट से कक्ष में > कच्छ के साथ अरि संयोग होकर कच्छ + अरि = कछारी नाम की उत्पत्ति हुई है। असम के ब्रह्मपुत्र घाटी में रहने वाले मंगोलीय समुदाय के किरात या कछारी लोग खुद को बोड़ो या बोड़ो फिसा कहना चाहते हैं। मंगोलीय समुदाय के इन बोड़ो लोगों को भारत के अन्य हिंदू लोग समय-समय पर किरात, म्लेच्छ, कछारी आदि नामों से पुकारते आ रहे हैं, किंतु दरअसल में कछारी ही उनके प्रचलित नाम है।

डॉ. भुवन मोहन दास ने पूर्वोत्तर भारत के मंगोलीय लोगों का विभाजन इस प्रकार किया है—(1) खासी, (2) बोड़ो, (3) लुसाई कुकी, (4) नागा, (5) अरुणाचल की जनजाति, (6) अन्य। अन्य जातियों में मिसिंग, देउरी, हाजंग आदि को शामिल किया गया है। बोड़ो समुदाय में गारो, राभा, मेस, तिवा, डिमासा, ठेंगाल, सोनोवाल, झारुवा आदि को शामिल किया गया है।

अत: ठेंगाल कछारियों को मंगोलीय प्रजाति के बोड़ो समुदाय की पूर्वी शाखा में शामिल किया जा सकता है।

ठेंगालों को खासकर पांडववीर भीम के पुत्र घटोत्कच के वंशज के रूप में भी जाना जाता है। हिडिम्बा राक्षसी नामक एक कन्या के साथ भीम का वैवाहिक संबंध हो जाने के कारण घटोत्कच का जन्म हुआ। हिडिम्बा के नाम के अनुसार कछारियों के राज्य का नाम 'हिडिम्बा' राज्य या 'हेडेम्बा' राज्य तथा राजधानी का नाम 'हिडिम्बापुर' कहा जाता था। वहां के राजाओं ने भी खुद का परिचय हिडिम्बापति के रूप में दिया था।

ठेंगाल कछारी की उत्पत्ति : समर, संघात तथा हार-जीत के बीच हेडेम्बियाल कछारी गुट के प्रख्यात धनुर्धर जंग बहादुर तथा चक्रध्वज नामक दो युवकों ने कुछ कछारी परिवारों को साथ लेकर दैयांग घाटी काछमारी मैदान में एक राज्य की स्थापना करते हुए जंग बहादुर को वहां का राजा बनाया। उनके

सैनिकों को ठेंगा (Pantloos) पहनकर युद्ध करने दिया गया था। युद्ध में पहने गये ठेंगा शांति के वातावरण में भी पहनकर घूमने-फिरने के कारण दूसरे लोग उनकी प्रजा तथा जंग बहादुर को ठेंगाल कछारी कहते थे।

ठेंगाल कछारी का अवस्थान : ऐतिहासिक ब्यौरे से अनुमान लगाया जा सकता है कि असम के ऊपरी हिस्से के सदिया से दैयांग, धनसिरि घाटी तथा नगांव तक ठेंगाल कछारियों के वंशज का अवस्थान था। कालान्तर में ऐतिहासिक तथा आर्थिक कारणों से वे असम के विभिन्न प्रांतों जैसे ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तथा दक्षिणी तट पर विभाजित हो गए। दक्षिणी तट पर मौजूदा जोरहाट जिले के 37 नंबर राष्ट्रीय राजमार्ग से नागा पहाड़ तक तिताबर को केंद्र बनाकर विस्तृत अंचल ठेंगाल कछारी लोगों से परिपूर्ण है। गोलाघाट जिले के धनसिरि तट के ठेंगाल गांव पंका, मरंगी, बुढ़ागोहाईं खाट, सरूपथार, बरपथार, चाउदांग पथार, गमारी, सिचुपानी, मेरापनी, काछमारी, दैयांग, कार्बी-आंग्लांग जिले के कालियनी, शिवसागर जिले के सोनारी क्षेत्र, नाजिरा, डिब्रुगढ़ जिले के नाहरणी ठेंगाल गांव, साचनी, उत्तरी तट के लखीमपुर जिले के बिहपुरिया, कावैमारी बागान, बंगालमारा, नाहरणी, पकादौल, खोलागुड़ी, बराइखना, नाववैसा के सोनापुर, लोकामपुर, ढेकियाजुली, दलपापथार, बालीगांव, दक्षिण लालुक, हारमोती, बंदरदेवा, उत्तर लालुक, फुलबारी, कदम, धेमाजी, गोगामुख, कृष्णपुर, गढ़पाड़ा, नाहरबाड़ी, पानीगांव, दंगीबिल, जकाइ पेलोवा, जोनाई आदि में घनी आबादी वाले ठेंगाल कछारी लोगों के गांव हैं।

ठेंगाल कछारी लोग ठेंगाल नाम से जानकार होने के बाद से 'ठेंगाल' उपाधि लिखते आ रहे हैं। फिर भी उनमें से कई लोग 'कछारी' उपाधि का भी इस्तेमाल करते आए हैं। ठेंगाल कछारियों को राजघराने का पदभार प्राप्त हुआ था। उनके द्वारा लिखी गई उपाधियां ही इसका प्रमाण हैं। ये उपाधियां हैं—सइकीया, हजारिका, बरा, नेउग, बरुवा, राजखोवा, दास, बर सइकीया, बरबरुवा, हातीबरुवा, घोंरा बरुवा, भराली, चांगमाई आदि।

ठेंगाल कछारी के समाज-संस्कृति का संक्षिप्त परिचय : ठेंगाल कछारी समुदाय के लोग पहले से ही समाज बनाकर रहते आए हैं। इस समुदाय के लोग अब असमिया समाज जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। ठेंगाल कछारी समाज पुरुष-प्रधान होने के कारण संयुक्त परिवारयुक्त हैं। पिता ही परिवार के मुखिया होते हैं।

समाज-संरचना : प्राचीनकाल में ठेंगाल लोगों का समाज 'कैरातज' धार्मिक संरचना से संचालित था। किंतु 50वीं सदी में महापुरुष शंकरदेव ने नव-वैष्णव एकशरण नामधर्म के प्रचार के जरिए असम के चारों ओर सामाजिक आदर्श की स्थापना की। उनके इस आदर्श से ठेंगाल कछारी लोग भी काफी प्रभावित हुए। इसके परिणामस्वरूप समाज में हर एक गांव की समाज-संरचना के उपकरणस्वरूप नामघरों की प्रतिष्ठा हुई। धार्मिक-सांस्कृतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में नामघरों ने उनके समाज में एक अहम भूमिका अदा की। सत्र की पद्धति के अनुसार ठेंगाल कछारियों के बीच एक वृहत इलाके के भीतर बरमेधि, कुरिया मेधि, चुक मेधि, बर टेकेला, टेकेला आदि पदाधिकारियों तथा हर गांव में या कस्बे में नामघर रहने के साथ ही नामघरीया, भराली, पाठक, बायन, देउरी, ढुलीया-ओझा आदि पदाधिकारी रहते हैं तथा सत्र के सत्राधिकार राजमेधि, पाचनि तथा बरमेधि के जरिए ठेंगाल कछारी समाज के साथ संपर्क रखते हुए समाज की धार्मिक रीति-रिवाज आदि का संचालन करते हैं। दूसरी ओर ठेंगाल कछारी की समाज-व्यवस्था या सामाजिक

जीवन में महिला का स्थान भी पुरुष के समान ही है।

आर्थिक जीवन : ठेंगाल कछारी समुदाय के अधिकांश लोग गांव में रह कर कृषि कार्य पर निर्भर रहते हुए अपनी जीविका का निर्वाहन करते हैं। धान उनलोगों की मुख्य खेती है। बैल, भैंस, हंस-कबूतर, कुक्कुट, बकरी आदि का पालन कर उसे बिक्री करते हुए भी वे अपनी जीविका का निर्वाहन करते हैं। बारी में तांबुल-पान, विभिन्न प्रजातियों के बांस की खेती, आलू-कद्दू तथा अन्य मौसम की फसलों की खेती करते हुए आर्थिक समस्या का समाधान करते हैं।

सामूहिक जीवन-पद्धति : मंगोलीय जन-समुदाय की सबसे बड़ी विशेषता है सामूहिक जीवन पद्धति। कछारी लोग हर एक गांव में सामूहिक रूप से बसते हैं। खेती-बाड़ी, घर निर्माण करने, मछली पकड़ने, उत्सव-पर्व, विपद-आपद, खुशी-आनंद समेत लगभग सभी कामों में एकजुट होकर खड़े होते हैं। ठेंगाल कछारी समाज में 'हारिया मता' यानी 'हाउरि' प्रथा का प्रचलन आज भी है। विवाह आदि में पंडाल बनाना, घर निर्माण करना, खेत से धान काटकर घर लाना, मछली पकड़ना आदि कामों में वे एकजुट होकर निकलते हैं।

उत्सव पर्व : ठेंगाल कछारी समाज के लोग अपने निजी सामाजिक उत्सव, पूजा-पर्व आदि का नियमानुसार पालन तो करते ही हैं, साथ-साथ असम के जातीय उत्सव बिहू का भी पारंपरिक रूप से पालन करते हैं। ठेंगाल कछारी युवतियां चैत महीने के शुरुआती दिन से ही 'रात्रि बिहू' का आयोजन करती थी। पीपल या वटवृक्ष के नीचे बिहू का मैदान तैयार किया जाता था। रात्रि बिहू का आयोजन चैत संक्रांति तक यानी बैसाख बिहू के 'उरुका' के दिन तक होता था। ठेंगाल कछारियों के बीच 'तरासिरा' बिहू या 'बालि-हुसरी', 'बोका बिहू' तथा 'नरासिंगा बिहू' का भी प्रचलन है। इस समाज के लोग असमीया संस्कृति की पारंपरिक प्रथा के अनुसार कार्तिक बिहू तथा माघ बिहू का भी यथा रीति-रिवाज के तहत पालन करते आए हैं।

खाद्य संभार : ठेंगाल कछारी लोगों का प्रधान खाद्य भात है। साग-सब्जी के अलावा मांस-मछली भी उनके प्रिय खाद्य हैं। कछुआ, कुसिया, केकड़ा, जिपांकरी, आमरलि, निंकरि, एड़ी, लेता, मुंगा पलू, चाकचन, कंदो-बरल आदि ठेंगालों के प्रिय खाद्य हैं। सूखी मछली, सूखा मांस भी जनजातियों के सामान्य खाद्य हैं। ठेंगाल समाज के लोग एक विशेष पद्धति के जरिए सूखी मछली पीस कर चूंगा या मिट्टी के कटोरे में रख देते हैं। इसे सुकति मछली की संज्ञा भी दी गई है। सूखी मछली, सुकति मछली, सूखा मांस, खरिचा, काहूदि, खारलि, पानीटेंगा, सोकोता आदि ठेंगाल लोगों के बचा कर रखे गए खाद्य हैं।

साज-पोशाक : ठेंगाल कछारी समाज के पुरुष असमिया लोगों की तरह ही पोशाक आदि परिधान करते हैं। इस समाज की महिलाएं असम के जनजाति समाज में प्रचलित छाती पर मेखेला तथा मेठनि पहनती थी। महिलाएं ब्लाउज का इस्तेमाल नहीं करती। महिलाएं हस्तशिल्प में भी अति निपुण हैं। समाज की बहुएं रिहा-मेखेला तथा चादर परिधान करती हैं।

ठेंगाल कछारी लोगों में सोना-चांदी के जेवरातों का व्यवहार अतीतकाल से ही होता आ रहा है। उनलोगों द्वारा इस्तेमाल किये गए जेवरातों में जोन-बिरि, डूग-डूगी, मादलि, बिरि, बेना, पोवालमणि, थुरीया,

केरू, चूड़ी, कनफूल, कोश एवं नगवाली अंगूठी, नाकफूली आदि प्रमुख हैं। अतीतकाल में कछारी समाज में पुरुष भी विभिन्न जेवरात आदि हाथ, कान तथा गले में पहनते थे। आधुनिक सभ्यता के विकास के चलते ठेंगाल लोगों की सामाजिक जीवनशैली में तमाम परिवर्तन देखने को मिल रहा है।

भाषा तथा साहित्य : असम के ऊपरी हिस्से में बसने वाले ठेंगाल कछारियों की भाषा असमिया है। ठेंगाल समुदाय के लोग लोक साहित्य में समृद्ध हैं। उनलोगों के तमाम लोक-विश्वास तथा आख्यान ने भाषा-साहित्य को समृद्ध करके रखा है। तेजीमाला, पानशै, कांचनमती, फूलरा-चतला, लितिकाइ, लखाई तरा आदि समेत कई लोक कहानियां उनलोगों के बीच अभी भी प्रचलित हैं। इसके अलावा लोकोक्ति, प्रचलित मुहावरे, लोक वाक्य, लोक कथा, बिहू गीत, हुंचरी गीत, लोरी, धाइनाम, आइनाम, लखिमी सबाह के गीत, अपेश्वरी सबाह के गीत, पानी भरने जाने के सबाह के गीत, बियानाम, पुष्पिता विवाह के गीत, मेढ़क विवाह के गीत, दैयन देने में गाए जाने वाले गीत, आयुसतोला गीत, गोपिनी सबाह के गीत, धान की खेती की रखवाली के गीत, चोमनि रखने के गीत, ढुलीया ओझा हाथ चलन के गीत आदि इस समाज में अभी भी बहुल रूप से प्रचलित है। ठेंगाल कछारी लोगों के बीच प्रचलित मौखिक या लोक साहित्य ने असमीया साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र को एक अलग मात्रा प्रदान की है।

धर्म-विश्वास तथा पूजा-पर्व : ठेंगाल कछारी लोगों का धर्म मूलत: कैरातज है। इस धर्म के मूल उपास्य देवता शिव हैं। ठेंगाल कछारी समुदाय के लोग वैष्णव धर्म ग्रहण करने वाले वासुदेव गोसाईं के दिन से ही वैष्णव भक्त के रूप में प्राणहरि गोसाईं के आउनीआटी सत्र के शिष्य हैं। वे वैदिक आचार-नीति का पालन करते हैं। इसके अलावा ठेंगाल समुदाय के लोग दुर्गा पूजा, निर्धारित स्थान पर बाथौ पूजा या देओ पूजा, नदी में छुआ बहा देने की पूजा, चर-चापरि में गरखीया भोज तथा नदी किनारे चावल खोवा आदि पूजा-पर्व करते हैं। इसके अलावा घरेलू अपाय-अमंगल आदि दूर करने के लिए बिहू, संक्रांति आदि में मृतक को देने तथा पीर देने की पूजा का आयोजन किया जाता है। शनि, राहु-केतु को चावल खिलाने, गुड़-परमान्न खिलाने, आइ को चावल खिलाने, अपेश्वरी सबाह, गोपिनी सबाह, लखिमी सबाह, हाटुवाली-बाटुवाली सबाह, भंडार में लक्ष्मी प्रवेश करने का सबाह, आयु उठाने का सबाह आदि अनेक पूजा-पर्व, संस्कार-कर्म आदि का भी ठेंगाल कछारी लोग पालन करते हैं। वे देव-देवी, भूत-प्रेत आदि की भी यथा रीति पूजा करते हैं।

विवाह-कर्म : विवाह मानव समाज का एक प्राणमय उत्सव है। ठेंगाल कछारी समाज में खासकर चार प्रकार के विवाह का प्रचलन है। जैसे—

(1) भाग जाने या भगाकर ले जाने वाला विवाह।
(2) आबियै विवाह।
(3) बर विवाह।
(4) पुष्पिता विवाह।

ठेंगाल कछारी समाज में प्रचलित बर विवाह तथा आबियै विवाह की विशेषताएं अलग हैं। ब्राह्म अनुसार वैदिक प्रथा के जरिए होमाग्नि करते हुए कराए गए विवाह को बर विवाह की संज्ञा दी गई है। आमतौर पर लोगों का आशीर्वाद ग्रहण करते हुए धूप-दीप जलाकर आयोजित किए गए विवाह को

आबियै विवाह या जोरोण विवाह कहा जाता है। वर-वधू दोनों पक्षों की शादी का बंदोबस्त करने वाले को 'बाओरा' कहा जाता है। लड़की का हाथ मांगने कन्या पक्ष के घर में पहला तांबूल-पान भेंट करने वाले को 'बाट चंदा भोजा' देना कहा जाता है।

शिल्प-संस्कृति : ठेंगाल कछारी लोग सोना, चांदी, तांबा, लोहा, तीखा आदि के धातु शिल्प के साथ विशेष रूप से जुड़े हुए हैं। चांदी (रूप) संग्रह के लिए इन्हें रूपोवाल कछारी के रूप में जाना जाता है। वे कुटीर शिल्प में अति-निपुण हैं। ठेंगाल कछारी लोग घरेलू जीवन में जरूरत की सभी सामग्री लकड़ी, बांस, 'पाटीदै' आदि से तैयार कर लेते हैं।

हस्तकरघा तथा खेती के औजार : हल, पालो (जुआ), हेंगा, 'शोलमारि', 'डिलामारि', 'ओखोन', 'रइना' आदि तैयार करने में भी ये लोग निपुण हैं। नाहर काठ की ढेंकी, हर्रे (शिलिखा)-गमारी काठ का करछुल (हेता), 'करचलि', 'ठगा', 'सराई', 'आसन', 'पीढ़ाधरा', कुर्सी-मेज, मचिया (ढारि-पाटी), बिहू में व्यवहार किये गये वाद्य यंत्र—पेंपा, गगना, बंशी, 'टका', टोकारी, बीण, 'सुतुलि' आदि भी ठेंगाल कछारी लोग तैयार कर सकते हैं।

कछारियों के पूर्व पुरुष से ही रेशम शिल्प चला आ रहा है। मंगोलीय किरातों ने ही असम में पाट, मूंगा, रेशम शिल्प को जन्म दिया था। कछारी लोगों ने जंगल का मूंगा घर में लाकर पाला था। एड़ी पालन ठेंगाल कछारी लोगों की जातीय परंपरा है। वे एड़ी, मूंगा आदि का पालन कर उससे सूत निकालते हुए विभिन्न प्रकार की पोशाकें तैयार कर लेते हैं।

मृतक का दाह-संस्कार : ठेंगाल कछारी समाज में मृतक व्यक्ति के शव को जलाना या दफनाना दोनों ही प्रथाएं हैं। किसी व्यक्ति की मौत के बाद अनेक नीति-नियमों का पालन किया जाता है। गुरु के पास शरण लेना ठेंगाल कछारी समाज में अनिवार्य है। मृतक का प्रेतकर्म ब्राह्म हिंदू रीति के अनुसार संपन्न किया जाता है।

समापन : ठेंगाल कछारी लोग असम की एक अति प्राचीन स्थानीय (खिलंजिया) जनगोष्ठी है। स्वकीय रीति-नीति, धार्मिक परंपरा, सामाजिक लोकाचार तथा आधुनिक ध्यान-धारणा से एक पृथक जनगोष्ठी होने पर भी ठेंगाल कछारी लोगों की वृहत्तर असमीया जाति गठन प्रक्रिया में अहम भूमिका रही है।

ठेंगाल कछारी समाज के अधिकांश व्यक्तियों ने असमीया जातीय जीवन को विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जातीय जीवन में योगदान देने वाले कुछ व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

लौहपुरुष गिरिधर ठेंगाल

असम के आर्थिक-सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में स्थानीय (खिलंजिया) जनगोष्ठी के जिन व्यक्तियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है, उनमें गिरिधर ठेंगाल अन्यतम हैं।

जोरहाट जिले के तिताबर अनुमंडल के तिताबर राजस्व क्षेत्र के अंतर्गत ठेंगाल मौजा के उलुतली

गांव के एक अति गरीब किसान परिवार में सन् 1921 के 12 जनवरी को गिरिधर ठेंगाल का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम जिलिराम ठेंगाल और माता का नाम था कान्दुरी ठेंगाल। जन्म के कुछ ही दिन बाद उनकी मां का देहांत हो जाने पर उनकी बड़ी मां ने गिरिधर को लालन-पालन कर बड़ा किया। सन् 1929 को गिरिधर को उनके पिता ने बजालबारी प्राथमिक विद्यालय में दाखिला लिया। इसी विद्यालय से उन्होंने सन् 1934 में प्राथमिक छात्रवृत्ति परीक्षा में जोरहाट अनुमंडल के भीतर तीसरा स्थान प्राप्त कर सफलता हासिल की तथा तिताबर मध्य अंग्रेजी विद्यालय में आगे की पढ़ाई के लिए दाखिला लिया। दुर्भाग्य की बात है कि मध्य अंग्रेजी विद्यालय में अध्ययनरत अवस्था में ही सन् 1936 में उनके पिता का भी असामयिक निधन हो गया। मध्य अंग्रेजी विद्यालय से छात्रवृत्ति हासिल कर अंतिम परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सन् 1938 में जोरहाट सरकारी हाईस्कूल में दाखिला लिया। इसी विद्यालय से सन् 1942 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। जोरहाट के जगन्नाथ बरुवा कॉलेज से सन् 1944 में आई.ए. परीक्षा तथा सन् 1946 में बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1952 में गौहाटी विश्वविद्यालय से बी.एल. की डिग्री प्राप्त की।

गिरिधर ठेंगाल ने शिक्षक के रूप में अपना कर्म-जीवन शुरू किया। सन् 1952 से 1953 तक जोरहाट जिले के न-आलि तिताराम बरदलै हाईस्कूल में शिक्षक की नौकरी की। सन् 1953 में शिक्षा जगत से हटकर राजनीतिक दुनिया में प्रवेश किया। उस समय के विभिन्न सामाजिक विकासोन्मुखी काम में जुट गए। उन्होंने जोरहाट कोर्ट में भी अधिवक्ता के रूप में पैरवी की। धीरे-धीरे अधिवक्ता की अपेक्षा राजनीतिक जीवन में उनकी सक्रियता बढ़ने लगी। इसी दौरान वे विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा, सामाजिक उन्नयन, सामाजिक न्याय आदि विषयों में खुद को शामिल करने लगे। जालुकनिबाड़ी हाईस्कूल व तिताबर नन्दनाथ सइकिया कॉलेज की स्थापना में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा।

उनके नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी के आंदोलन के दबाव में श्रमिक-कृषकों के पक्ष में कई कानून लागू करने तथा कुछ भूमिहीन किसानों के बीच जमीन देने की व्यवस्था सरकार ने की थी। सन् 1978 में वे तिताबर विधानसभा क्षेत्र से विधायक चुने गए। जोरहाट से बरहोला तक प्रथम सर्ववृहत लंबे 'न-आलि' को पक्का करने का काम उन्हीं की पहल पर संपन्न हुआ। उन्होंने सन् 1984 में निवर्तमान सोवियत रूस में आयोजित मार्क्सवादी अर्थनीति के तीन महीने वाले सेमिनार में भाग लिया था।

कवि, गीतिकार, भास्कर्य चित्र-शिल्पी कमल कछारी

'इस्ताहार कवि' के नाम से मशहूर कवि-शिल्पी कमल कछारी का जन्म सन् 1939 को जोरहाट जिले के तिताबर अनुमंडल के ठेंगाल मौजा के अंतर्गत मरधलि कछारी गांव के एक किसान परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम उनिराम कछारी तथा मां का नाम था सरू आइती कछारी। आजीविका हेतु वे शिवसागर जिले के नाजिरा स्थित मादुरी में रहकर चिकित्सा क्षेत्र में फार्मेसिस्ट के रूप में स्वास्थ्य सेवा में जुट गए। भास्कर्य शिल्पी, चित्र-शिल्पी, आकाशवाणी गीतिकार कवि कमल कछारी के लेख असम के अगले दर्जे के

अखबार व पत्रिका 'प्रतिध्वनि', 'असम वाणी', 'नीलाचल', 'अग्रदूत', 'सादिन-प्रतिदिन' के अलावा विभिन्न माध्यमों में प्रकाशित हुए। वे शिवसागर जिला साहित्य सभा के भी अध्यक्ष थे।

कमल कछारी गीत, कविता, नाटक आदि लिखने के अलावा बैनर, फेस्टून, किताब-पत्रिका के आवरण पृष्ठ का अंकन तथा स्थापत्य भास्कर्य को अपने हाथों से अंकित करने में भी निपुण थे। कमल कछारी को साहित्य सभा ने 'विष्णु प्रसाद राभा पुरस्कार' प्रदान किया था तथा शिवसागर साहित्य सभा भी कवि कमल कछारी के नाम से 'कवि शिल्पी कमल कछारी साहित्य पुरस्कार' प्रदान करती आ रही है। असम सरकार ने उन्हें साहित्यिक पेंशन भी प्रदान किया है।

दर्दीला कवि कमल कछारी का 75 वर्ष की आयु में सन् 2013 को देहावसान हो गया।

प्रश्नावली :

1. मंगोलीय किरातों की शारीरिक विशेषताएं क्या हैं ?
2. मंगोलीय किरातों को संस्कृत भाषा में क्या कहकर संबोधित किया जाता था ?
3. कछारी नाम की उत्पत्ति कैसे हुई थी ?
4. डॉ. भूवन मोहन दास ने मंगोलीय लोगों को कितने भागों में विभाजित किया है ?
5. ठेंगाल कछारी लोग किस प्राचीन समुदाय से आये हुए थे ?
6. ठेंगाल कछारियों के मौजूदा अवस्थान के बारे में उल्लेख कीजिए।
7. टिप्पणी लिखिए :
   (क) लौहपुरुष गिरिधर ठेंगाल
   (ख) कमल कछारी

• • •

पाटीदै — एक प्रकार का पेड़ (वन) जिससे चटाई बनाई जाती है।
शोलमारि — जुआ के छेद में लगने वाला बांस की छड़।
डिलामारि — हल का एक उपकरण।
ओखोन — खलिहान में पौधों से धान निकालते समय व्यवहृत एक उपकरण।
रइना — खलिहान में बिखरे अनाज को एकत्रित करने की काठ की कुदाली-सा उपकरण।
नाहर — एक वृक्ष।
गमारी — एक वृक्ष।

डिमासा

डिमासा लोग वर्तमान में मूल रूप से डिमा हासाओ जिले के निवासी हैं, लेकिन वे नगांव के होजाई अंचल, कार्बी आंग्लांग के विभिन्न अंचलों के अलावा वर्तमान नागालैंड के डिमापुर अंचल के आदिम निवासी के तौर पर जाने जाते हैं।

डिमासा लोग भी सोनोवाल लोगों की तरह 40 पुरखों के वंशोद्भव के तौर पर 40 वंश या क्लेन में विभाजित हैं। प्रत्येक का गोत्र 'सा' अक्षर के साथ संपन्न होता है। जैसे लांग्थासा, डिफुसा, गारलोसा, होजाईसा, माईबांगसा इत्यादि। डिमासा लोगों की मान्यता है कि डिमासा महिलाएं और युवतियाँ इन 42 मूल के मातृ वंशोद्भव हैं और वे मूल मातृ के वंश या क्लेन के नाम से जानी जाती हैं।

डिमासा लोग पितृ वंश को पितृ वंश और मातृ वंश को मातृ वंश कहकर पुकारते हैं। डिमासा लोगों की भाषा डिमासा है। डिमासा भाषा बोड़ो भाषा से मिलती-जुलती है। डिमासा लोगों में कोई परिवार प्रथा (उप-गोत्र) नहीं है, लेकिन अपने गोत्र के भीतर विवाह वर्जित है। वे लोग मां के वंश यानी मां के परिवार के सदस्यों के साथ विवाह कर सकते हैं, लेकिन वर-कन्या दोनों की मां के वंश (मातृगोत्र) एक हों तो उनका विवाह नहीं हो सकता।

डिमासा लोग ब्राय-सीब्राय और आमांग-गामाडिंग या शिव-पार्वती परंपरा को मानते हैं, लेकिन कट्टर वैष्णव हिंदू होते हैं और बलि प्रथा पर भी विश्वास रखने वाले परंपरावादी होते हैं और अति संरक्षणशील हैं।

इतिहास के अनुसार वर्तमान के समस्त असम, त्रिपुरा और बांग्लादेश के कुछ हिस्सों पर कभी डिमासा लोगों का शासन था। डिमासा लोग जनवरी के अंतिम हिस्से में खेती के अंत में 'बिसु डिमा' नामक एक उत्सव मनाते हैं। 'बिसु डिमा' उत्सव में मुर्गी काटकर पूजा करने के अलावा मदिरा, सूअर आदि के साथ सामूहिक दावत का आयोजन करते हैं। इस उत्सव में स्त्री-पुरुष 4 फीट लंबे एक विशेष प्रकार के हाथ से बजाए जाने वाले ढोल और अत्यंत लंबे एक पेंपा की धुन पर घुम-घुम कर नाचते हैं।

डिमासा महिलाएं कुशल बुनकर होती हैं और उनकी जनजातीय वेषभूषा बहुरंगी होती है। डिमासा लोगों के विवाह में खास औपचारिकता नहीं होती, लेकिन मदिरा और मुर्गी काटकर पूजा करने के साथ सूअर

या भैंस के मांस के साथ दावत देकर विवाह उत्सव का पालन किया जाता है। चिता की अग्नि में मदिरा-सूअर देकर मृतक का श्राद्ध किया जाता है।

प्रश्नावली

1. डिमासा लोग कितने वंशों में विभाजित हैं?
2. डिमासा भाषा असम की किस भाषा से मिलती-जुलती है?
3. खेती के अंत में डिमासा लोग किस उत्सव का आयोजन करते हैं?
4. डिमासा लोगों के गोत्रों के नामों का अंतिम अक्षर आमतौर पर क्या होता है?
5. डिमासा लोगों के कुछ गोत्रों के नाम लिखिए।

●●●

कलिता

कलिता जनसमुदाय ब्रह्मपुत्रघाटी के समतल मैदानी अंचल के सबसे प्राचीन निवासी हैं और वर्तमान असम राज्य की जनसंख्या के हिसाब से भी सबसे बड़ा जनसमुदाय है। पूरब में तिनसुकिया जिले से लेकर पश्चिम में धुबरी जिले तक ब्रह्मपुत्र घाटी के प्रत्येक जिले में कलिता जनसमुदाय के लोग रहते हैं। स्वाधीन भारत की जनगणना में शामिल अनुसूचित जनजाति समूह की जनजातीय आधार पर जनगणना में शामिल होने से छूट जाने के कारण वर्तमान कलिता जनसमुदाय के लोगों की जनसंख्या का शुद्ध आँकड़ा प्राप्त करना संभव नहीं है। 1871-72 ई. में ब्रिटिश भारत में हुई पहली जनगणना के आँकड़ों के अनुसार जनगणना में अलग से दिखाए गए व्यावसायिक समूहों को मिलाकर कलिता की कुल जनसंख्या 3,39,971 थी। उस समय असम की भौगोलिक स्थिति, आबादी, परवर्ती काल में जनसंख्या वृद्धि दर आदि कारकों का विश्लेषण करके वर्तमान असम में कलिता जनसमुदाय के लोगों की कुल संख्या 50,00,000 (पचास लाख) से कम नहीं होनी चाहिए।

असम और उत्तर-पूर्वांचल में किसी भी आदिम मानव का अवशेष प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए नृतात्विक रूप से इस अंचल में इस अंचल के वर्तमान निवासी कही न कहीं से प्रव्रजन करके आए हुए हैं। पश्चिम में हिमालय के तराई वाले समतल मैदानों से होते हुए कलिता समुदाय के पूर्वज अल्पाइन लोग कई कारणों से प्रव्रजन करके ब्रह्मपुत्र घाटी के अंचलों में प्रवेश किए थे। पूरब की ओर वे लोग बढ़ते-बढ़ते पाटकाई पहाड़ तक पहुँच गए, परंतु उसके आगे नहीं जा सके। इसका कारण यह था कि मैदानी जनसमुदाय के रूप में वे लोग दल-बल सहित उनका पाटकाई पर्वत पार करना संभव नहीं था। इसलिए पाटकाई पर्वत के पूर्वी भागों में कलिता अथवा अन्य किसी अल्पाइन मूल के जनसमुदाय की आबादी लगभग शून्य थी। अल्पाइन लोगों का पहला दल जिस समय ब्रह्मपुत्र घाटी अंचलों में प्रवेश किया, उस समय यह अंचल आबादी विहिन था। इसलिए कलिता जनसमुदाय ब्रह्मपुत्र घाटी के समतल मैदानी भाग का पहला निवासी है। अत: कलिता जनसमुदाय ब्रह्मपुत्र घाटी का भूमिपुत्र कहलाता है।

आज से सात हजार वर्ष पहले ईस्वी पूर्व 5000 से लेकर ईस्वी पूर्व 4500 के बीच कलिता समुदाय के पूर्वजों के पहले समूह द्वारा ब्रह्मपुत्र घाटी में कदम रखने के कारण 4000 ई.पू. से लेकर 3500 ई.पू. तक

कलिता जनसमुदाय के लोग बड़ी संख्या में बस गए होंगे, ऐसा अनुमान लगा सकते हैं। पश्चिम दिशा से यह प्रव्रजन चौदहवीं शताब्दी तक हो रहा था। कलिता जनसमुदाय के पूर्वज जिस समय ब्रह्मपुत्र घाटी में कदम रखे थे (लगभग सात हजार से लेकर चार-पाँच हजार वर्ष पहले) उस समय यहाँ के मैदानी भागों के आसपास स्थित पहाड़ों में मंगोलीय मूल के जनसमुदाय रहते थे, परंतु वे लोग समतल मैदानी भागों में रहने के इच्छुक नहीं थे, इसलिए उन अंचलों में कलिता लोगों को बसने में किसी तरह का संघर्ष या प्रतियोगिता का सामना नहीं करना पड़ा और उन लोगों ने ब्रह्मपुत्र घाटी में अपना पहला उपनिवेश स्थापित कर लिया। नदी के किनारे उपजाऊ भूमि में छोटे-छोटे उपनिवेश स्थापित करके वे क्रमशः पूरब की ओर बढ़ते गए और पूर्वी छोर पर स्थित पाटकाई पर्वत को वे लोग पार नहीं कर सके, इसलिए ब्रह्मपुत्र घाटी के पूर्वी अंचलों में उन लोगों ने दूसरा उपनिवेश स्थापित किया। इन दोनों उपनिवेशों के बीच की दूरी लगभग छह सौ किलोमीटर थी।

वर्तमान असम में जनसंख्या के हिसाब से कलिता जनसमुदाय के लगभग बीस भाग या उपभाग हैं। इसकी लघु संख्या यद्यपि भारतीय संविधान के अनुसार साधारण वर्ग में सम्मिलित हैं। जैसे-बरकलिता, सरुकलिता, कायस्थ, हालोई, केउत, साउद, आर्य-वैश्य आदि। कुछ भाग या उपभाग अन्य पिछड़ा वर्ग में शामिल हैं। जैसे-शालोई, हज्जाम, नट, माली, कुमार, कमार, कहार आदि। वर्तमान में अनेक संप्रदायों में बँटा हुआ कलिता जनसमुदाय प्रारंभ में व्यावसायिक समूह में थे। सांवैधानिक तौर पर ज्यादा समय तक बाँट देने के कारण बहुत लोगों ने अपना सामुदायिक परिचय (Ethnic) भूलकर केवल अपने समुदाय का परिचय देते हैं। नाथ-योगी, गणक एवं बहुसंख्यक स्थानीय मुसलमान भी मूल रूप से कलिता जनसमुदाय के लोग हैं। आनुवंशिक विश्लेषण (Genetic Analysis) पद्धति के आधार पर इसकी सभ्यता का पता लगाना संभव है। कलिता जनसमुदाय के लोगों की लगभग 92 उपाधियाँ हैं। उदाहरणस्वरूप - कलिता, बर्मन, बर्मा, काकति, बरुवा, बरा, चौधुरी, चौधारी, तालुकदार, डेका, हालोई, दास, तहबिलदार, खाटनियार, दत्त, सेनापति, पागबंधा, डिहिदार, सरकार, शालोई, हुजुरी, देउरी, उजिर, पालदास, साधनिकार, नेओग, मरल, भराली, मेधी, शइकीया, हजारिका, भुञाँ, हीरा, माली, मालाकार, बेजबरुवा, वैश्य, साउद, बरबरुवा, रायबरुवा, रायचौधुरी, ठाकुरिया, पाटगिरि, पाटोवारी, नायक, सूत्रधार, लहकर, हिलोइदारी, खारघरिया, लेखारु, फुकन, मजुमदार, पाठक, शहरीया, खाउंड, दुवरा इत्यादि। कलिता को छोड़कर अन्य जनसमुदाय भी इनकी अधिकांश उपाधियों का व्यवहार कर रहे हैं।

आजकल की 'असमीया' भाषा के नाम से परिचित भाषा मुख्य रूप से कलिता जनसमुदाय की भाषा है। हालाँकि इसमें काकेशीय और मंगोलीय जनसमुदाय का भी योगदान है तथापि आज यह आधुनिक परिपक्व 'असमीया' का ही रूप है।

कलिता जनसमुदाय के लोग परंपरागत तौर पर कपास, एड़ी कीड़ा, पात कीड़ा एवं मूंगा के कीड़े के रेशे से तैयार धागा से तैयार सूती, एड़ी, पाट और मूंगा (रेशम) के कपड़े का व्यवहार करते हैं। इससे दो प्रकार के कपड़े तैयार होते हैं - प्रतिदिन के व्यवहार में आने वाले पोशाक और उत्सवों या त्योहारों में पहने जाने वाली पोशाक आदि। एड़ी धागा का रंग धूसर होता है और इसी से जाड़े के दिनों में ओढ़नेवाला चादर (अंडी चादर) तैयार होता है। एड़ी धागा का रंग चांदी रंग का होता है और रेशम धागा का रंग सुनहरा होता है। इससे शादी-विवाह या पर्व-त्योहारों में पहनने के लिए चादर, मेखला, धोती आदि बनाया जाता है। कलिता समाज में इस प्रकार की पोशाक को अभिजात (कुलीन) वर्ग का प्रतीक माना जाता है। कलिता जनसमुदाय करघे की सहायता से अपने पहनने योग्य पोशाक स्वयं तैयार कर लेते हैं। कलिता समाज की लड़कियों को हथकरघे पर कपड़ा बुनने का काम जानना अनिवार्य होता है। कुछ वर्ष पहले तक जिन कलिता युवतियों को कपड़ा बुनना नहीं आता था, उसका विवाह नहीं होता था। विवाहित औरतें (विशेषकर बड़ों के सामने) अपने सिर को ढक लेती हैं। कलिता जनसमुदाय की पोशाकों में सफेद और लाल रंगों की प्रधानता होती है। पुराने जाने में समाज में अतिरिक्त रूप से व्यवहार हेतु आवश्यक वस्त्र का निर्माण शालोई (जिसका स्वयं का करघा होता था) और ताँती (कपड़ा बुनने वाला) नामक दो समुदाय के लोग ही करते थे। मेखला-चादर कलिता महिलाओं का जातीय परिधान है। इसके साथ ही आगुरन, टेल्स, रिहा आदि परिधान भी वे धारण करती हैं। कलिता समाज में पुरुष हथकरघे पर बुने गए गमछा, धोती-कमीज आदि पहनते हैं। लाल पार वाला फूलाम गामोछा के द्वारा समाज में बड़ों का सम्मान किया जाता है तथा छोटे को आशीर्वाद या स्नेह स्वरूप प्रदान किया जाता है।

कलिता समाज के लोग (विशेषकर महिलाएँ) सोना, चाँदी और पीतल से निर्मित आभूषणों का व्यवहार करते हैं। महिलाएँ अपने कपाल पर बिंदी लगाती हैं। विवाह के बाद महिलाएँ मांग में सिंदूर भरती हैं। पति के जीवित रहते यदि महिलाएँ सिंदूर नहीं लगाती है तो उसके घर-संसार पर देवताओं की कोपदृष्टि पड़ती है - ऐसा माना जाता है। कानों में आभूषण पहनने के लिए लड़कियों की बाल्यावस्था में ही उसके कानों में छेद करवा दिए जाते हैं। कान छेदने को एक पर्व के रूप में मनाते हैं। यह कर्ण-छेदन पर्व वर्ष के कई पावन अवसरों पर मनाया जाता है। जैसे - कार्तिक महीने की पूर्णिमा (लक्ष्मी पूर्णिमा) के दिन बहाग महीना की पूर्णिमा (बुद्ध पूर्णिमा) अथवा आश्विन महीने की शुक्ल दशमी (विजयादशमी) के दिन आदि।

कलिता लोग मुख्यत: खेतिहर हैं। समय बदलने के साथ-साथ इन लोगों ने यद्यपि विभिन्न पेशा अपना लिया है, तथापि आज भी कलिता जनसमुदाय के लगभग 90 प्रतिशत लोग प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से खेती-बाड़ी या पशुपालन करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। कलिता लोग बैल अथवा भैंसों की मदद से हल चलाकर खेत जोतते हैं। इस प्रकार बैलों से हल चलाने वाले कलिता को 'हालोई' कहा जाता है।

कलिता जनसमुदाय के लोग मुख्यत: सजातीय विवाह (Endogamous) करते हैं तथा ये जनजातीय चरित्र (Tribal Character) का निर्वहन करते हैं। संसार की विभिन्न जनजातियों की तरह कलिता लोग स्वजातीय आनुवंशिक संघ (Gene Pool) की रक्षा हेतु तथा आचार-व्यवहार, संस्कृति एवं परंपरा की रक्षा हेतु शादी-विवाह जैसे कर्म अपने समुदाय के अंतर्गत ही करते हैं। यद्यपि कलिता समाज में सजातीय विवाह होते हैं, परंतु समरक्त (Consamguinous) स्त्री-पुरुष के बीच विवाह बिल्कुल निषिद्ध है। भाई-बहन, मामा-भांजी, चाचा-भतीजी आदि समरक्त के बीच विवाह पर रोक है, लेकिन समरक्तविहीन वैवाहिक संबंधों के बीच विवाह कर्म प्रचलित है। जैसे-देवर के साथ छोटी बहन का विवाह अथवा भाई के साथ साली का विवाह। कलिता समाज कुछ हद तक सुरक्षित समाज होता है। कलिता समाज बगैर विवाह किए स्त्री-पुरुष को एक साथ रहने की अनुमति नहीं देता है और भागकर विवाह करने वालों को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। यदि ऐसी परिस्थिति आती है तो समाज के विशिष्ट या सम्मानीय व्यक्ति इस समस्या पर विचार करते हैं। समाज या पंचायत में जो निर्णय होता है, उसके बाद विवाहित जोड़ा नामघर (मंदिर) में सिर नवाकर समाज की अनुमति लेकर अपना घर-संसार बसाते हैं।

कलिता लोगों का मुख्य भोजन चावल है। चावल के साथ वे लोग तरह-तरह की साग-सब्जियाँ भी खाते हैं। नमक की खोज होने से पहले या नमक के व्यवहार से पहले सब्जियों में डालने के लिए खाड़ का उपयोग किया जाता था और यह खाड़ केले के पेड़ के धड़ को सूखाकर और उसे जलाकर उसकी राख से तैयार किया जाता था। कलिता जनसमुदाय में कुछ हद तक परंपरागत तरीके से विभिन्न प्रकार के व्यंजन तैयार करने का रिवाज है। जैसे आग में आलू पकाकर या उबालकर आलू का चोखा, बैंगन का चोखा कटहल के बीजों को पकाकर तैयार किया गया चोखा या चटनी, मछली को पकाकर और उससे तैयार व्यंजन। इसके अतिरिक्त खटाई डालकर मछली बनाना, कच्चु की सब्जी बनाना, कोहड़ा डालकर हंस का मांस बनाना, पपीता डालकर कबूतर का मांस तैयार करना, तरह-तरह की चटनी जैसे पुदिना की चटनी, दाल की चटनी आदि तैयार करना भी कलिता समाज में खूब प्रचलित है। गन्ना का रस निकालकर उससे गुड़ तैयार किया जाता है। सुबह के जलपान में कलिता लोग कोमल चावल (बोका चावल), चिउरा अथवा चावल का चूर्ण (सान्दह) गुड़ तथा दूध लेते हैं। धान को कूटकर और धूप में सूखाकर एक विशेष तरीके से कोमल (बोका) चावल तैयार किया जाता है। बगैर तेल के चावल को भुनकर उसे ढेंकी में कूटकर उसका चूर्ण (आटा) तैयार करते हैं। भात में पानी डालकर दिनभर अथवा रातभर रखने से पईंता भात (पइता भात) तैयार होता है। खेती के समय दोपहर में खेतों से लौटने के बाद लोग आग में पकाया हुआ आलू-चोखा अथवा आग में पकाई गई मछली के साथ पईंता भात खाते हैं। कलिता लोग अतिथि या मेहमानों का स्वागत तरह-तरह के लड्डू (तिल का लड्डू, नारियल का लड्डू आदि) तथा पिठा (तिल पिठा, चोंगा पिठा, केला

पिठा, चापरी पिठा) आदि से करते हैं। सरसों को पेरकर उससे निकले तेल का व्यवहार सभी तरह के व्यंजन तैयार करने में किया जाता है। दूध और दूध से बने दही कलिता जनजीवन का महत्वपूर्ण आहार है। शराब बनाना अथवा शराब (सुरा) का सेवन करना कलिता समाज में बिल्कुल वर्जित है। भोजन करने के बाद पान-तांबूल खाने का नियम है। इसलिए कलिता समाज में पान-तांबूल का एक विशेष स्थान है।

कलिता लोग कई प्रकार के उत्सव या पर्व मनाते हैं। उसमें गरू बिहू, शाकेति, बाँस पूजा, भथेली, बहाग के सात बिहू, महोहो अथवा मह (मच्छर) खेदा, ढुलीया, भुँई रोवा उत्सव, धान की बाली लाना (लक्ष्मी आदरा) उत्सव, पाचती, काति बिहू अथवा कंगाली बिहू धान-तोला उत्सव, नखोवा भोगाली बिहू, पुत्री के बड़ी होने का उत्सव (पुष्पिता अथवा धुवनी), ओजापाली, नगाड़ा नाम आदि प्रमुख हैं। जिस 'असमीया' सांस्कृतिक धारणा की सृष्टि हुई है, उसका मूल या मेरूदंड कलिता जनसामुदायिक लोक-संस्कृति ही है। यह 'असमीया लोक-संस्कृति' 'कलिता लोक-संस्कृति' के साथ एकाकार हो गई है। इसलिए असम की सभ्यता को कलिता सभ्यता कहा जाता है। (Assam is the Homeland of the Kalitas and its Civilization is Predominantly Kalita Civilization. The other Sub-Castes follow the Kalita Social laws and customs in their entirely - Dr. Kaliram Medhi)। निश्चय ही एक वृहत्तर 'असमीया जाति' की गठन-प्रक्रिया में बहुत समय लगा है और कलिता लोगों ने अपने सामुदायिक लोकाचार और लोक-संस्कृति के समूह को अपने सामुदायिक प्रतीक न देकर उसे सामूहिक परिचय का रूप देते आए हैं।

कलिता लोगों को कृषि एवं नदियों से अधिक लगाव है। इसलिए उनकी लोक-संस्कृति कृषि एवं नदियों के साथ ही जुड़ी हुई है।

कलिता जनसमुदाय के प्रमुख व्यक्ति :

1. कुमार भास्कर वर्मा : कुमार भास्कर वर्मा प्राचीन कामरूप राज्य के श्रेष्ठ राजा थे। राजा सुप्रतिष्ठ वर्मा की मृत्यु के बाद 593 ई. में कुमार भास्कर वर्मा राजा बने। उनके राजा बनने के दिन से असमीया जातीय ईस्वी (भास्कराब्द) की गणना होती है। उत्तर भारत के राजा हर्षवर्धन के साथ उनकी मित्रता थी। भास्कर वर्मा ने हर्षवर्धन के साथ मिलकर राजा शशांक को पराजित किया था तथा गौड़ और कर्णसुवर्ण को कामरूप के अधीन कर लिया था। इससे कामरूप की सीमा पश्चिम में बिहार और दक्षिण में उडीसा तक फैल गई थी। भौगोलिक रूप से कामरूप राज्य एक विशाल राज्य में परिणत हो गया था। चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण के अनुसार कुमार भास्कर वर्मा के शासनकाल में कामरूप राज्य की सीमा 1675 मील और राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर की सीमा 6 मील थी। भास्कर वर्मा की डूबि ताम्रलिपि, निधानपुर ताम्रलिपि, नालंदा की मुहर आदि कलिता जनसमुदाय एवं असम के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक संपदा हैं। एक

अनुमान के अनुसार 650 ई. में कुमार भास्कर वर्मा की मृत्यु हुई थी।

2. आनंदराम बरुवा : आनंदराम बरुवा असम के प्रथम स्नातक और असम से प्रथम असामरिक सेवा अधिकारी (आई.सी.एस.) थे। इनका जन्म 21 मई 1850 ई. को उत्तर गुवाहाटी में हुआ था। पिता का नाम गर्गराम बरुवा और माता का नाम दुर्लभेश्वरी बरुवा था। जिला दंडाधिकारी के पद पर आसीन होनेवाले ये प्रथम असमीया थे तथा दूसरा भारतीय थे। ये संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान थे। 19 जनवरी 1889 को इनकी मृत्यु हुई थी। सन् 2005 से असम सरकार ने उच्च माध्यमिक विद्यालय परीक्षा (H.S.L.C.) में उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियों के लिए 'आनंदराम बरुवा' पुरस्कार की शुरुआत की है।

3. शहीद मणिराम देवान : इनका असली नाम मणिराम दत्तरबरुवा था तथा ये 'कलिता राजा' के नाम से जाने जाते थे। इनका जन्म 17 अप्रैल 1806 को शिवसागर जिले के चारिंग नामक स्थान पर हुआ था। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात तत्कालीन अंग्रेज शासक के करतलिया राजा पुरन्दर सिंह का 'बर भंडार बरुवा' का पद प्राप्त किया। पुरंदर सिंह के करतलिया राजा से पदच्युत होने के बाद 1837-1839 ई. तक अंग्रेजी शासक के अधीन ढेरेकापार, कोंवरपुर और मेटेका मौजा के मौजादार का दायित्व संभाला था। उसके बाद मणिराम ने 1839 ई. में अंग्रेजों द्वारा संचालित 'आसाम टी कंपनी' में दिवान का पद संभाला। मणिराम ने 1845 ई. में चेनीमारा (जोरहाट) और चिंग्लौ (शिवसागर) में दो चाय बागान स्वयं खोले थे। ये दोनों चाय बागान असम के और भारत के प्रथम चाय बागान के रूप में प्रसिद्ध हैं। असम में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता आंदोलन का मार्ग दिखाने वाले मणिराम देवान ही थे। राजनैतिक के साथ-साथ आर्थिक स्वाधीनता लाने के लिए लोहा गलाने का उद्योग, सोना-उद्योग, नमक व्यवसाय, नाव बनाने का उद्योग, ईंट निर्माण आदि की स्थापना और मुद्रा के प्रचलन के द्वारा आधुनिक अर्थव्यवस्था की नींव डाली थी। उत्पादित सामग्रियों को बेचने के लिए ब्रह्मपुत्र घाटी के पाँच स्थानों पर बाजार की स्थापना की थी। वे पाँच बाजार थे - डिब्रुगढ़ जिले में बड़हाट, शिवसागर जिले में नागाहाट, कामरूप जिले में गारोहाट, लखीमपुर जिले में चिचिहाट और दरंग जिले में दरंगिया हाट। मणिराम देवान ने 'बुरंजी विवेक रत्न' नामक पुस्तक की रचना भी की है। असम में 1857 ई. के सिपाही विद्रोह का प्रचार करने के लिए अंग्रेजों ने दोषी करार देते हुए अंग्रेज शासक ने मणिराम देवान को 26 फरवरी 1856 को जोरहाट में सार्वजनिक तौर पर फाँसी दे दिया।

4. डॉ. वाणीकांत काकति : डॉ. वाणीकांत काकति का जन्म आज के बरपेटा जिले के बाटिकुरिहा गाँव में 15 नवंबर 1894 ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम ललित राम काकति और माता का नाम लहोबाला काकति था। इन्होंने 1911 ई. में बरपेटा हाईस्कूल से प्रवेशिका की परीक्षा प्रथम स्थान में और 1913 ई. में कोलकाता विश्वविद्यालय से आई.ए. की परीक्षा प्रथम स्थान में पास की थी। कोलकाता विश्वविद्यालय से बी.ए. और एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर वे 1918 ई. में गुवाहाटी के कॉटन कॉलेज में

प्राध्यापक बने तथा 1947 ई. में अध्यक्ष बने। उसके बाद वे गुवाहाटी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक बने थे। 1916 ई. में इनका विवाह बरपेटा की कनकलता (दास) काकति से हुआ था। उन्होंने 'कलिता जातिर इतिवृत्त' नामक पुस्तक भी लिखी है। डॉ. वाणीकांत काकति ने मूलत: कलिता जनसमुदाय को भाषा के आधार पर अन्य जनसमुदाय के साथ समृद्ध किया तथा असमीया भाषा को एक स्वतंत्र आधुनिक भाषा बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके द्वारा रचित पुस्तक 'Assamese - It's Formation and Developement' पर कोलकाता विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डॉक्टरेट' की उपाधि प्रदान की थी। 15 नवंबर 1952 ई. को इनका निधन हुआ।

प्रश्नावली

1. कलिता जनसमुदाय की खाद्य परंपरा के बारे में संक्षेप में लिखिए।
2. कलिता जनसमुदाय के आभूषण और पोशाक के बारे में संक्षेप में लिखिए।
3. कलिता जनसमुदाय के पर्व-त्योहारों के बारे में लिखिए।
4. संक्षेप नोट लिखिए :
   (क) कुमार भास्कर वर्मा
   (ख) आनंदराम बरुवा
   (ग) डॉ. वाणीकांत काकति

दसवीं कक्षा के लिए

तिवा

तिवा लोग प्राचीन काल से असम में निवास करती आ रही एक नृ-गोष्ठी है। ये लोग इंडो-चीन के अंतर्गत तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार के तहत बृहत बड़ो गुट से संबन्धित हैं। वर्तमान में इस समुदाय के लोग असम के नगांव, मरिगांव, कामरूप, कार्बी आंग्लांग, जोरहाट, धेमाजी, लखीमपुर, सदिया और मेघालय के कुछ इलाकों में बसे हुए हैं। वैसे तो तिवा लोगों का वर्गीकरण 'दांतीअलिया', 'पहाड़िया' और 'थलोवाली' के नाम से किया गया है मगर मौजूदा वक़्त में उनको पहाड़ी और मैदानी श्रेणी में ही विभक्त कर देखा जा सकता है।

इतिहास के पन्नों पर तिवा लोगों का अहम स्थान है। तिवा वीर जोंगाल बलहू को प्राग-ऐतिहासिक युग का महान राजा माना जाता है। मध्य युग में भी कपिली के किनारे तिवा लोगों के नेतृत्व में गोभा, नेली, खला, सहरी आदि छोटे-बड़े राज्यों की स्थापना हुई थी। इसके अलावा आहोम की रहा और जागी चौकी के तहत 'पांच राज्य' और 'सात राज्य' नामक बारह छोटे राज्यों के साथ 'दमाल-दंदुआ' आदि राज्यों की स्थापना हुई थी। सन् 1835 में जब गोभा राजा ने तीन अंग्रेजों को पकड़कर देवी काली के सामने बलि चढ़ा दी तो राजा को अंग्रेजों का कोप भाजन बनकर राज्य गंवाना पड़ा था। भारत की आज़ादी की जंग में तिवा लोगों का अहम योगदान रहा है। असम के पहले कृषक विद्रोह 'फूलगुडी धेवां' का जन्म व नेतृत्व तिवा लोगों ने दिया था। विद्रोह के जुर्म में सोवाबर लालुंग सहित कई लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा था और ग्यारह लोगों को जीवन भर की कैद की सजा काटने के लिए द्वीप में भेज दिया गया था। बयालीस के जन आंदोलन में भी तिवा व्यक्ति हेमराम पातर शहीद हुए थे।

मूलत: मातृसूत्रीय अवस्था से उत्पन्न तिवा समाज की बुनावट परिवार से शुरू होती है। दो से अधिक लोग मिलकर एक 'माहारी', कई 'माहारी' मिलकर एक कुल या 'खूट्या', कई कुल मिलकर एक 'खेल' और कई 'खेल' मिलकर एक गांव बनाता है। 'खेल' के प्रशासनिक और सामाजिक मुखिया को मैदानी इलाके में

'जेला' कहा जाता है और पहाड़ी इलाके में 'लर' कहा जाता है। 'हारी' कुंवरी समाज का एक प्रतिष्ठित और सम्मानजनक पद है। मैदानी इलाके के प्रत्येक कुल के उपासना गृह 'बरघर' या 'न' 'बार' की मौजूदगी ध्यान देने लायक है। पहाड़ी इलाके में परिवार के मुखिया को 'जेला' और आवास को 'न' 'बार' कहा जाता है। परिवार के पूजा-पाठ वहीं सम्पन्न होते हैं। पहाड़ी तिवा का सांस्कृतिक प्राण केंद्र 'सामादि' या 'डेकासांग' है। तिवा लोग मूलत: जड़वादी या जड़ोपासक और पुरखों की उपासना करते हैं। प्रकृति के विभिन्न उपादानों की पूजा करने के साथ ही उत्सव-पर्व में वे लोग पुरखों को देवता मानते हैं। परवर्ती समय में वे लोग हिन्दू धर्म के विभिन्न मतों,जैसे-शाक्तवाद, वैष्णववाद, शैववाद, नववैष्णववाद आदि से भी जुड़ते गए हैं। इसके विपरीत पहाड़ी इलाकों में बीसवीं शताब्दी की शुरुआत से ईसाई धर्म का प्रचलन रहा है।

तिवा लोग सांस्कृतिक रूप से काफी समृद्ध हैं। प्रेम और भाईचारे के प्रतीक के तौर पर वे लोग जिस 'जोनबिल' मेले का आयोजन करते हैं, वह प्राचीन अर्थव्यवस्था का जीवंत उदाहरण है। इसके अलावा पहाड़ी इलाके में जिन उत्सवों का आयोजन किया जाता है उनके नाम हैं-वानसुवा, सग्रा, यांगली, मुईनारी कांठी, लांखान, माई पथाला, माई रावा, खापलांग रावाने पूजा, पानथाइसवा आदि। मैदानी इलाके के उत्सवों के नाम हैं-जोनबिल मेला, बरत, गोसाईं उलिओवा मेला, बोहाग बिहू, माघ बिहू और काति बिहू आदि। उनके कर्मों और उत्सवों के साथ गीत-संगीत, नृत्य और वाद्य यंत्र जुड़े हुए हैं। उनके वाद्यों के नाम हैं-ख्राम (ढ़ोल) बार, ख्राम खुजूरा, ख्राम पानथाई, दुमडिंग, दगर, पाती ढोल आदि चमड़े के वाद्य, वाफ़ांग ख्राम, थकथररक, पांसी (वंशी), थोरांग, भैंस के सींग के पेंपा, मुहूरी और खायांग (ताल) आदि।

तिवा लोग बहुरंगी वस्त्र धारण करते हैं। पुरुष थाना, ताग्ला, ठेनास्, फालि, फागा आदि पहनते हैं और महिलाएं कासांग, फासकाई, नारा आदि पहनती हैं। वे सापल, सिंगली ल, कल् पान्था आदि रत्न धारण करती हैं। खाईदंग, सनाने खाईदंग और रूफाने खाईदंग आदि जेवर वे कान में पहनती हैं।

मांसाहारी तिवा लोगों का टू मेसाम् (मुर्गी का मांस) तथा वा मेसाम् (सुअर का मांस) प्रिय खाद्य है। पारंपरिक पद्धति से विशेष रूप से तैयार मदिरा को वे 'ज्यू' कहते हैं।

तिवा जनगोष्ठी के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है।

इंद्रसिंग देउरी

उन्होंने तिवा जनजाति के बीच जातीय चेतना जाग्रत करने के लिए जीवन भर प्रयत्न किया। उनका जन्म सन् 1932 में पश्चिम कार्बी आंग्लांग जिले के रंगखैपार गांव में हुआ था। पिता का नाम मालसिंग पोमा और माता का नाम मामा आम्सी था। सन् 1939 में उन्होंने कार्बी आंग्लांग जिले के बाउलागोग प्राथमिक विद्यालय से पढ़ाई शुरू की और नगांव जिले के डिमौ हाईस्कूल में आठवीं तक पढ़कर आर्थिक अभाव के चलते शिक्षा जीवन का समापन किया। सन् 1949 में वे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गए। पार्टी में रहते हुए उन्होंने महसूस किया कि तिवा लोग सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से किस कदर पिछड़े हुए थे। परिवार की आर्थिक जरूरतों की पूर्ति करने के लिए सन् 1951 में उन्होंने पशुपालन विभाग की नौकरी शुरू की, लेकिन सन् 1953 में गारो पहाड़ जिले के तुरा में रहते समय नौकरी छोड़कर वे फिर तिवा समाज को जाग्रत करने में जुट गए।

उन्होंने सन् 1960 में बिन् मासलाई, रबटसिंग आम्सी और पद्मकांत काकोती की मदद से थाराखुंजी गांव में 'तिवासा मिशन' नामक एक सामाजिक संगठन की स्थापना की, जिसका मकसद था कार्बी आंग्लांग जिले के तिवा लोगों के बीच प्रचलित अंधविश्वासों को मिटाकर शिक्षा का प्रचार व तिवा समाज को आधुनिक समाज के साथ परिचय कराना। इस संगठन ने तिवा गांवों में प्राथमिक स्कूलों के साथ ही वयस्कों के लिए भी विद्यालयों की स्थापना कर शिक्षादान की व्यवस्था की थी। तिवा समाज के कुटीर उद्योग को बढ़ावा देने के लिए भी मिशन ने कदम उठाया था। इंद्रसिंग देउरी ने उसी समय 'अ' तिवा, अ' तिवा सोराण सावा' नाम से एक लोकप्रिय गीत की रचना की थी।

'तिवासा मिशन' का काम जारी रहते समय जब 'ऑल पार्टी हिल्स लीडर कांफ्रेंस' ने तिवा इलाकों को लेकर मेघालय राज्य बनाने की मांग की तो इन्द्रसिंग देउरी ने इस मांग का विरोध किया। चूंकि इससे पहले संयुक्त मीकिर पहाड़ और उत्तर कछार पहाड़ जिलों के गठन के दौरान तिवा बहुल इलाकों का विभाजन हो चुका था। तिवा जाति के उन्नयन के लिए काम करने वाला एक अन्यतम संगठन 'लालुंग दरबार' का जन्म सन् 1967 में इंद्रसिंह देउरी के नेतृत्व में हुआ था।

उनको सन् 1976 में पहली बार कार्बी आंग्लांग स्वशासी परिषद का आम सदस्य मनोनीत किया गया और बाद में उनको परिषद का उपाध्यक्ष बनाया गया। सन् 1981 में हुए परिषद के आम चुनाव में आमरी सीट से लालुंग दरबार के निर्दलीय प्रार्थी के रूप में वे विजयी हुए और परवर्ती समय में परिषद के अध्यक्ष भी बने।

उन्होंने तिवा साहित्य-संस्कृति को भी समृद्ध बनाया। उनकी कई तिवा कविताएं, गीत आदि रचनाएं पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। उनके लिखे गीत 'तिवा तसिमा' को तिवा जातीय संगीत का दर्जा मिला है। इस जातीय सगीत की धुन उन्होंने खुद ही तैयार की थी।

वे तिवा जातीय जीवन के अग्रदूत थे। वे लगातार संगठक, समाज सुधारक, लेखक, गीतकार, संगीतकार और कुशल राजनेता थे। इसीलिए पहाड़ के तिवा लोग उनको 'फा परई' (जाति के पिता) कहकर संबोधित करते थे। उनका देहांत 20 अगस्त, 1994 को हो गया।

बलाईराम सेनापति

बलाईराम सेनापति असम के साहित्य-संस्कृति जगत के प्रतिष्ठित लेखक एवं संस्कृति के साधक थे। उनका जन्म 3 मार्च, 1931 को नगांव जिले के ऐतिहासिक बारपूजीया गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम बगाराम सेनापति और माता का नाम पद्मेश्वरी बरदलै था। बारपूजीया एल पी और एम वी स्कूल से आरंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने नगांव सरकारी हाईस्कूल से माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की। परिवार की आर्थिक जरूरतों की पूर्ति करने के लिए पढ़ाई बीच में छोड़कर सन् 1953 से 1963 तक संयुक्त उत्तर कछार एवं मीकिर पहाड़ जिले के बरथल मध्य अंग्रेज़ी विद्यालय में उन्होंने अध्यापन किया था। रामधेनु पत्रिका में उनका लेख 'मिकिर पाहारत कि घटिसे' (मीकिर पहाड़ में क्या हो रहा है) प्रकाशित होने पर शिक्षा अधिकारी नाराज हो गया और उनको दस साल तक नौकरी करने के बाद बरथल एम ई स्कूल के प्रधानाध्यापक की नौकरी छोड़कर खेतीबारी शुरू करनी पड़ी। बचपन से ही वे साहित्य-संस्कृति के प्रति लगाव रखते थे। वे तिवा लोगों के गीत, संगीत, नृत्य और वाद्य के संरक्षण की जरूरत महसूस करते थे और इसे आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक कदम भी उठाए थे। उन्होंने तिवा लोकगीत की स्वरलिपि तैयार की थी। तिवा जनगोष्ठी की स्वकीय संस्कृति की धरोहर को बचाने के लिए उन्होंने 'तिवा कृष्टि संस्था' की स्थापना में अहम भूमिका निभाई थी। तिवा भाषा की प्रतिष्ठा के लिए भी उन्होंने विशेष पहल की थी। उन्होंने अधिकतर रचनाएं असमिया भाषा में लिखी। तिवा साहित्य की सेवा करने के साथ ही उन्होंने असमिया साहित्य की भी सेवा की। रामधेनु पत्रिका में उनकी रचनाएं नियमित रूप से प्रकाशित होती रही थी। सन् 1954 में 'मुकुल' नामक उनका गीतों का संकलन प्रकाशित हुआ। तिवा लोगों की 'रातिसेवा' (रात्रिसेवा) विषयक रामधेनु में लिखित उनके लेख की सराहना विद्वानों ने की थी।

वे काफी दिनों तक असम साहित्य सभा के कार्यकारी सदस्य थे। बारपूजीया में आयोजित नगांव जिला साहित्य सभा की उन्होंने अध्यक्षता की थी। वर्ष 2000 में उनको 'तिवा माथनलाई तख्रा' यानी तिवा साहित्य सभा का अध्यक्ष चुना गया था। उनकी कृतियों के नाम हैं-'अतीतर संधानत' (1997), 'पांचोरजिया अंचलर लालुंगर लोकगीतर उपरत सामान्य आलोकपात' (1997) और 'तिवा जनगोष्ठीय संस्कृतित आलोकपात, तिवा समाज आरू संस्कृति' (2010)। अनंतदेव स्मारक व्याख्यान के तहत दिया गया, उनका भाषण 'तिवा जनजाति आरु वैष्णव समाज' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। उनकी मृत्यु के बाद उनकी समस्त रचनावली सन् 2017 में 'बलाईराम सेनापतिर रचनासमग्र' नाम से प्रकाशित हुई।

साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए उनको 1991 में असम सरकार की तरफ से साहित्यिक पेंशन दी गई। आकाशवाणी के जरिए प्रचारित बलाईराम सेनापति के गीति-आलेखों में 'नगार नरोत्तम गोसाईं श्री राम', 'फुलगुड़िर धेंवा', 'तिवा समाज संस्कृति', 'हेरुवा दिनर सुर' तथा 'स्वाधीनता संग्रामर बिप्लवी गीत' शामिल हैं। सन् 2011 में नगांव जिला साहित्य सभा ने 'डॉ. सूर्य कुमार भुइयां पुरस्कार' और 2011 में ही असम के लोक संस्कृति के साधक के रूप में बकुल वन न्यास ने 'बकुल वन पुरस्कार' प्रदान किया।

उनके लिखे गीतों का प्रसारण आकाशवाणी गुवाहाटी एवं नगांव केन्द्रों से हुआ। इसके अलावा तिवा समाज-संस्कृति के एकांत साधक व गवेषक पंडित के रूप में विशाल व्यक्तित्व के धनी व मृदुभाषी इस महान व्यक्तित्व का देहांत 11 मई, 2014 को हो गया।

प्रश्नावली

1. भाषाई तौर पर तिवा लोग किस समुदाय से संबन्धित हैं?
2. तिवा लोगों के उत्सव-पर्व में इस्तेमाल किए गए विभिन्न वाद्य-यंत्र क्या-क्या है?
3. तिवा समाज में 'जेला' किसे कहते हैं?
4. तिवा लोगों के कुछ उत्सवों के नाम लिखिए।
5. फूलगुड़ी का धेंवा क्या है?
6. संक्षेप में लिखिए-

   (क) इंद्रसिंग देउरी (ख) बलाईराम सेनापति

● ● ●

देउरी

असम तथा पूर्वांचल की मंगोलीय प्रजाति के लोगों में देउरी एक प्रमुख जनगोष्ठी है। मंगोलयड नृ-गोष्ठी के अंतर्गत देउरी लोगों का उत्तर-पूर्व दिशा से असम में प्रव्रजन हुआ और ब्रह्मपुत्र के ऊपरी हिस्से में वर्तमान के अरुणाचल प्रदेश के लोहित जिले के अंतर्गत जैदाम पहाड़ के आस-पास वे बसने लगे।

देउरी लोग सामाजिक रूप से चार वर्गों में विभक्त हैं-डिबङीया, टेंगापनीया, बरगञाँ और पाटरगञाँ। डिबांग नदी के किनारे निवास करने वालों को डिबंगीया, टेंगापानी नदी के किनारे निवास करने वालों को टेंगापनीया, बरनदी के किनारे निवास करने वालों को बरगञाँ तथा पात-सदिया में रहने वालों को पातरगञाँ के रूप में जाना जाता है।

सदिया अंचल में ही देउरी लोग वर्षों से निवास करते आ रहे थे। कालांतर में संभवत: प्राकृतिक आपदा, अत: सामुदायिक युद्ध-संघर्ष अथवा उर्वर कृषि भूमि की खोज में इस स्थान को छोड़कर लुईत को पारकर उस समय के अविभक्त शिवसागर जिले के माजुली और लखीमपुर जिले के डिक्रांग नदी के किनारे सर्वप्रथम आ बसे और वहीं से बाद में विभिन्न स्थानों में फैलते गए। देउरी लोग वर्तमान में ऊपरी असम के आठ जिलों-तिनसुकिया, डिब्रूगढ़, शिवसागर, जोरहाट, माजुली, धेमाजी, लखीमपुर और विश्वनाथ में बसे हुए हैं। देउरी लोग स्वयं का परिचय 'जिमोचँणाया' के रूप में देते हैं। देउरी एक विशिष्टताओं से परिपूर्ण स्वदेशीय जनगोष्ठी है। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया है।

भाषा : देउरी भाषा मूलत: चीनी-तिब्बती भाषागोष्ठी के तिब्बत वर्मी भाषा परिवार की बोड़ो शाखा के अंतर्गत आती है। इस भाषा की अपनी कुछ विशेषताएं हैं। 28 जनवरी, 2005 को असम सरकार ने देउरी भाषा को सरकारी भाषा के रूप में मान्यता दी और प्राथमिक स्तर पर एक भाषा विषय के रूप में लागू करने का निर्णय किया।

धर्म : देउरी अति धर्म विश्वासी लोग हैं। वे लोग 'कुन्दि' धर्म में आस्था रखते हैं। 'कुन्दिमामा' उनके उपास्य देवता हैं। 'कुन्दि' का अर्थ परम पुरुष परमेश्वर और 'मामा' का अर्थ प्रकृति से है। उनका विश्वास है कि यही कुन्दिमामा विश्व ब्रह्मांड के सृष्टिकर्ता और पालनहार हैं।

देउरी साधारणत: कृषिजीवी लोग हैं। उनका जीवन और जीविका अधिकतर खेती पर ही निर्भर है। धान, दलहन, सरसों, पटसन और विभिन्न साग-सब्जी उनकी प्रमुख खेती है। वे साधारणत: नदी-तटीय अंचल के स्थानों पर रहना पसंद करते हैं। देउरी लोग लकड़ी, बांस, बेंत और खेर से चांगघर बनाकर रहते हैं।

उत्सव : असम के तीन प्रधान जातीय उत्सव रंगाली बिहू, माघ बिहू और काति बिहू का पालन देउरी लोग भी करते हैं। इसके अतिरिक्त उनके अपने विशिष्ट उत्सव भी हैं, जैसे-कृषि आधारित उत्सव बिबा बचु गिबा मेच्चु (बसंत स्वागत का उत्सव), बिहू उत्सव-चिगादागारेबा बिचु, 'बिचु दाबेबा मेच्चु', 'मिदि देरुबा मेच्चु' (राज केबांग) धर्म से संबंधित तथा सावन पूजा इत्यादि।

देउरी समाज के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है-

जननेता भीमबर देउरी

वृहत्तर असम के लघु परिसर में लगातार प्रयास करते हुए असम के वृहत्तर हित के लिए लड़ते हुए जीवन समर्पित करने वाले व्यक्तित्व के प्रतीक हैं जननेता भीमबर देउरी। ऊपरी असम के एक कोने में जन्मे भीमबर देउरी अविभाजित असम के इस छोर से उस छोर तक सभी जनजातियों के बीच स्वयं को विलीन कर असम की जातीय सत्ता को प्रतिष्ठित करने में लगे रहे। जनजातियों में से एक बनकर सभी जनजातियों की राजनैतिक और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए कार्य करते-करते भीमबर देउरी एक जननेता बन गए। भीमबर देउरी के वृहत्तर असम के हित में कार्य को देखते हुए असम के प्रथम प्रधानमंत्री लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै ने उन्हें 'जननेता' की संज्ञा से विभूषित किया।

16 मई, 1903 और असमिया के ज्येष्ठ महीने की 3 तारीख को भीमबर देउरी का जन्म हुआ था। पिता का नाम गदराम (गदरा) देउरी तथा माता का नाम बाजती (बाजंग) देउरी था।

शिवसागर जिले के पानिदिहिंग अंचल के बरगजाँ देउरी गांव में उनका जन्म हुआ। (वर्तमान में उक्त गांव ब्रह्मपुत्र में समा चुका है) इसके पश्चात बाम रजाबारी गांव में स्थायी रूप से बसे। कहा जाता है कि पिता के पूर्व का निवास स्थान सदिया में था।

सन् 1908 में 57 नंबर बरगांव प्राथमिक विद्यालय से शैक्षणिक जीवन का आरंभ हुआ। सन् 1913 में प्राथमिक विद्यालय की अंतिम परीक्षा पूरे शिवसागर महकमा में प्रथम स्थान से उत्तीर्ण की। सन् 1918 में शिवसागर सरकारी एम.वी. स्कूल से एम.वी. उत्तीर्ण कर चार रुपए मासिक छात्रवृत्ति अर्जित की। सन् 1925 में शिवसागर सरकारी हाईस्कूल से एंट्रेंस परीक्षा पांच विषयों में लेटर अंक के साथ उत्तीर्ण की। 14 जुलाई, 1925 को कॉटन कॉलेज में दाखिला लिया। कॉटन कॉलेज से सन् 1927 में प्रथम श्रेणी में आई.ए. परीक्षा

उत्तीर्ण की और अर्थशास्त्र में ऑनर्स लेकर बी.ए. की पढ़ाई की। सन् 1929 में द्वितीय श्रेणी में बी.ए. उत्तीर्ण की। सन् 1931 में कोलकाता से कानून की परीक्षा उत्तीर्ण कर बी.एल. की डिग्री ली। साथ ही साथ प्रेसिडेंसी कॉलेज में स्नातकोत्तर की पढ़ाई भी करते रहे। अर्थाभाव के कारण परीक्षा नहीं दे पाए और नौकरी की खोज में असम लौट आए।

सन् 1932 में असम सिविल सर्विस परीक्षा उत्तीर्ण की, किंतु उन्होंने स्वतंत्र रूप से वकालत करने का निर्णय किया। वकालत ने भीमबर देउरी के सार्वजनिक जीवन को उन्मुक्त कर दिया।

सन् 1932 में डिब्रूगढ़ की अदालत में वकालत आरंभ की। सन् 1933 में भीमबर देउरी ने देउरी, सोनोवाल कछारी, मटक, मिसिंग, बोड़ो, तिवा, राभा आदि पिछड़े जन समुदायों को एकजुट करने के उद्देश्य से 17/04/1933 को नगांव के रोहा में असम के मैदानी पिछड़े जन समुदायों का प्रथम अधिवेशन आयोजित कर Assam Backward Plains Tribal League संक्षेप में ट्राइबल लीग का गठन किया। इस अधिवेशन में भीमबर देउरी ने एक ओजस्वी भाषण दिया। भीमबर देउरी के तर्कसंगत भाषण का मर्म समझकर इसी सभा में सर्वसम्मति से भीमबर देउरी महासचिव निर्वाचित हुए। सन् 1935 में भीमबर देउरी के नेतृत्व में ट्राइबल लीग की मांग के आधार पर असम विधानसभा की कुल 108 सीटों में से 4 सीटें पिछड़े मैदानी जनजाति समुदाय के लिए आरक्षित की गईं। सन् 1938 में राज्यपाल ने भीमबर देउरी को डिब्रूगढ़ के स्थानीय मंडल का एक मनोनीत सदस्य नियुक्त किया। सन् 1939 में असम के राज्यपाल ने भीमबर देउरी को उच्च परिषद अर्थात असम विधान परिषद का सदस्य मनोनीत किया।

भीमबर देउरी का विवाह : 18 फरवरी, 1940 को मंत्री रूपनाथ ब्रह्म की पुत्री कमलावती ब्रह्म के साथ भीमबर देउरी का ब्रह्मधर्म के अनुसार कोकराझाड़ के बांशबारी गांव में विवाह संपन्न हुआ। सन 1945 के नवंबर महीने में शिलोंग में इन समुदायों के प्रतिनिधियों के अधिवेशन में 'आसाम ट्राइब्स एंड रेसेस फेडरेशन' का जन्म हुआ। इसके मुख्य कर्ताधर्ता भीमबर देउरी थे। सन् 1946 में उच्च परिषद सदस्य का कार्यकाल खत्म होने पर राज्यपाल ने उन्हें दोबारा सदस्य (M.L.C.) मनोनीत किया। सन् 1946 में सरदार वल्लभ भाई पटेल के परामर्श पर भीमबर देउरी को वन एवं श्रम विभाग के मंत्री के रूप में गोपीनाथ बरदलै के कांग्रेस मंत्रिमंडल में शामिल किया गया। सन् 1947 में भीमबर देउरी ने वायसराय लॉर्ड ओवाडेल से भेंट कर विधानसभा क्षेत्र निर्धारण, पाकिस्तान में असम को शामिल करने तथा पृथक संयुक्त निर्वाचन आदि विषयों पर ट्राइबल लीग के विचारों से अवगत कराया और स्पष्ट कर दिया कि असम को किसी भी कारण से पाकिस्तान में शामिल नहीं होने दिया जाएगा।

सन् 1933 से सन् 1946 तक भीमबर देउरी केवल जनजातीय समुदाय ही नहीं, बल्कि असम और असम की जनता के विकास के लिए कार्य करते रहे।

देश में विदेशी घुसपैठ को रोकने, प्राकृतिक संपदाओं की रक्षा, पिछड़ी जाति-जनसमुदायों के लिए आरक्षण की व्यवस्था, केंद्र से राज्यों को अधिक अधिकारों का विकेंद्रीकरण, स्वायत्त शासन, विधान परिषद का गठन, सभी जनजातियों में आर्थिक समानता आदि नीतियों के विलक्षण प्रदर्शन के माध्यम से राजनैतिक-सामाजिक जीवन में सक्रिय रहे।

44 वर्ष की उम्र में 30 नवंबर, 1947 को उन्होंने अंतिम सांस ली। मृत्यु के समय वे अपने पीछे पत्नी कमलावती देउरी, पुत्र क्रमशः पीताम्बर देउरी, पृथ्वीवर देउरी, इंदिवर देउरी और पुत्री भारती देउरी को छोड़ गए।

राधाकांत देउरी

राधाकांत देउरी का जन्म 1 जून, 1931 को लखीमपुर जिले के बाँहगड़ा देउरी गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम आदिचन देउरी और माता का ताइबा देउरी था। माता-पिता के इकलौते पुत्र राधाकांत देउरी की तीन बहनें थीं। ग्रामीण परिवेश पले-बढ़े राधाकांत देउरी के घर की अवस्था उतनी अच्छी नहीं थी, बावजूद पढ़ाई-लिखाई में उनकी विशेष रुचि थी। पिता की अवस्था देखते हुए विद्यालय में दाखिला लिए बिना ही लोगों से किताब, स्लेट जुटाकर गांव के 11 नंबर मरनै प्राथमिक विद्यालय से सन् 1942 में शिक्षा जीवन का आरंभ किया। इसी तरह कष्ट करते हुए अच्छे अंकों से मैट्रिक उत्तीर्ण कर ली। जोरहाट के जे.बी. कॉलेज में दाखिला लेकर कॉलेजी जीवन आरंभ किया और अच्छे अंकों से सन् 1958 में बी.ए. की डिग्री ली। सन् 1959 में शिवसागर सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में सहायक शिक्षक नियुक्त हुए। जोरहाट आकर बी.टी. उत्तीर्ण की। सन् 1985 में उन्होंने सदिया के चपाखोवा सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में सहायक शिक्षक के रूप में अध्यापन शुरू किया। वहां अधिक दिनों तक अध्यापन नहीं कर सन् 1986 में इसी पद पर लखीमपुर सरकारी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में बदली करवा ली और वहीं पर वे स्थिर रूप से अध्यापन करने लगे।

राधाकांत देउरी का देउरी समुदाय और असमीया भाषा-साहित्य में अपरिसीम योगदान है। वे एक अल्पभाषी तथा देउरी भाषा-संस्कृति के शोधकर्ता विद्वान थे। विभिन्न कागज-पत्रों, पत्रिका में उनके लेख भरे पड़े हैं। देउरी भाषा के जरिए ही असमिया भाषा साहित्य को अनेक अवदान दे गए राधाकांत देउरी के अनमोल ग्रंथ हैं-'देउरी च्चुबिँब' (देउरी शब्दकोश), 'च्चिबाँ जिमचाँया च्चुबिँब' (दो आधुनिक देउरी शब्दकोश), इसमें से दूसरा त्रि-भाषिक (देउरी, असमिया, अंग्रेजी) है। देउरी भाषा का यह पूर्ण शब्दकोश है। 'देउरी शब्द सम्भार' उनकी एक प्रमुख संकलित पुस्तक है।

समाजसेवक और राजनीतिज्ञ बर्गराम देउरी

लखीमपुर जिले के बिहपुरीया मौजा के बाँहगड़ा देउरी गांव निवासी बर्गराम देउरी का जन्म 1 अगस्त, 1938 को हुआ था। सन् 1944 में बाँहगड़ा देउरी एल.पी. स्कूल में दाखिला लिया। सन् 1949 में खोरा एम.ई. स्कूल में अध्ययन करते हुए सन् 1959 में लखीमपुर उच्च माध्यमकि विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। मैट्रिक के बाद बर्गराम देउरी ने जोरहाट के जे.बी. कॉलेज से बीएस.सी. की डिग्री ली और गौहाटी विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान की पढ़ाई के साथ-साथ गौहाटी विश्वविद्यालय के कानून महाविद्यालय में भी अध्ययन किया। एक साथ एमएस.सी. और एल.एल.बी. की डिग्री लेने के पश्चात वे पंजाब विश्वविद्यालय में होमियोपैथी की पढ़ाई करने गए। वहां भी उन्होंने स्वर्ण पदक के साथ होमियोपैथी की डिग्री ली।

बर्गराम देउरी गौहाटी विश्वविद्यालय में पढ़ते समय कामरूप अकादमी विद्यालय में अध्यापन भी करते रहे। सन् 1971 में लखीमपुर बार में पंजीकरण कराकर वकालती जीवन आरंभ किया। इस अवधि में मणिपुर कॉलेज से व्याख्याता के रूप में भी जुड़े, किंतु मन नहीं लगने पर लौटकर पुन: लखीमपुर में वकालत शुरू कर दी। अविभाजित लखीमपुर जिले के धेमाजी सिरिपानी देउरी गांव में सन् 1971 में आयोजित देउरी सम्मेलन की सभा में उन्हें अगला अध्यक्ष चुना गया।

सन् 1978 में बंगालमरा गांव पंचायत से काउंसिलर चुने गए। सन् 1983 में वे बिहपुरिया विधानसभा क्षेत्र से असम विधानसभा में विधायक चुने गए और असम सरकार के मैदानी जनजाति व अन्य पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग के साथ ही रेशम एवं हस्तकरघा व बुनाई विभाग के कैबिनेट मंत्री के रूप में कार्य निर्वाह किया।

मंत्री रहते बर्गराम देउरी ने असम के जनजातियों की जनजाति विश्राम छावनी और आकाशी होस्टल आदि का निर्माण करवाया। उनके मंत्रित्व काल में बाँहगड़ा देउरी गांव में मिनी अस्तपाल और वेटेनरी अस्पताल का निर्माण हुआ। देउरी भाषा को एक भाषा के रूप में मान्यता देने और देउरी जन समुदायों के राजनैतिक तथा आर्थिक-सामाजिक विकास के लिए देउरी स्वायत्त शासित परिषद बनाने में बर्गराम देउरी का उल्लेखनीय योगदान था। सन् 2004 में हृदय रोग से ग्रस्त बर्गराम देउरी की गुवाहाटी में मृत्यु हो गई। भीमवर देउरी के बाद वर्गराम देउरी इस जन समुदाय के दूसरे राजनीतिक नेता तथा असम सरकार के मंत्री रहें।

समाजसेवी श्रीचन्द्र सिंह देउरी

समाजसेवी श्रीचन्द्र सिंह देउरी, देउरी समुदाय में एक जाना-पहचाना नाम है। खेल-कूद, लोक शिल्पी और देउरी लेखक के रूप में देउरी समाज में उनकी एक विशिष्ट पहचान है। गोपाल देउरी और आतबा देउरी के पुत्र श्रीचन्द्र सिंह देउरी का जन्म 28 अप्रैल, 1927 को ऊपर देउरी गांव, जोरहाट में हुआ था। देउरी एल.पी.

स्कूल से प्राथमिक शिक्षा पूरी कर जोरहाट सरकारी हाईस्कूल में अध्ययन किया, किंतु उन्होंने जोरहाट पॉलिटेक्निक हाईस्कूल से सन् 1949 में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद सन् 1962 में कला संकाय में शिलांग कॉलेज में दाखिला लिया और कर्मजीवन के बीच आई.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् 1955 के एक अक्टूबर को भारत सरकार के अधीन अनुसूचित जाति एवं जनजाति विभाग में तृतीय वर्ग के कर्मचारी नियुक्त हुए और 31 मार्च, सन् 1988 में अधीक्षक के रूप में नौकरी से अवकाश ग्रहण किया।

सन् 1959 को दिल्ली में गणतंत्र दिवस पर उनके नेतृत्व में देउरी लोक-गीत और लोक-नृत्य प्रस्तुत किया गया तथा उन्होंने सन् 1959 से सन् 1975 तक आकाशवाणी केंद्र, गुवाहाटी से देउरी लोक-गीत का प्रसारण किया।

लेखक के रूप में स्वयं के प्रयास से सन् 1903 से लगातार उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। ये हैं- क) 'आराओ'-सन् 1903, ख) 'आर्चिय इबाँ'-सन् 2014, ग) 'आमिरिया इबाँ'- सन् 2013, घ) 'बिचु'- सन् 2015, ङ) 'हिचरि'-सन् 2016, च) 'देउरी जनजीवन'-सन् 2016।

प्रश्नावली :

1. देउरी लोगों का आदिम निवास स्थान कहां था?
2. सामाजिक दृष्टि से देउरी लोग कितनी और किन-किन शाखाओं में विभक्त हैं? उल्लेख कीजिए।
3. सदिया से प्रव्रजन कर देउरी लोग सर्वप्रथम असम के किन जिलों में आकर बसे? वर्तमान में वे असम के कितनों जिलों में बसे हुए हैं?
4. देउरी स्वयं का किस रूप में परिचय देते हैं?
5. देउरी भाषा तिब्बत-बर्मी भाषागोष्ठी के किस भाषा परिवार के अंतर्गत है? किस वर्ष में देउरी भाषा को असम सरकार ने सरकारी मान्यता प्रदान की?
6. देउरी लोगों के चार जातीय उत्सवों के नामों का उल्लेख कीजिए।
7. देउरी किस धर्म में आस्था रखते हैं?
8. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (क) भीमबर देउरी (ख) राधाकांत देउरी
   (ग) बर्गराम देउरी (घ) श्रीचन्द्र सिंह देउरी

● ● ●

नेपालीभाषी गोर्खा

शुरुआत

नेपालीभाषी जनसमुदाय आर्य-मंगोल-किरात का मिश्रित जनसमुदाय है। मौजूदा समय में भारत के 'नेपालीभाषी' लोगों को 'गोर्खा' के नाम से भी जाना जाता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि 'खस' जाति से अधिकांश नेपालियों की उत्पति हुई है। 'खस' जाति के बारे में पंडित कलहन की राजतरंगिणी और जयचंद्र विद्यालंकार को ग्रंथ 'भारतीय इतिहास की मीमांसा' में काफी तथ्य मिलते हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार असम में नेपालीभाषी लोगों की तादाद 5,96,210 हैं। इसके अलावा तामांग लोगों की तादाद 2063, लिंबू लोगों की तादाद 780 और राई लोगों की तादाद 1110 है। इस तरह इस समुदाय की कुल आबादी 6,00,163 हैं। गौरतलब है कि जनगणना के समय इस समुदाय के काफी लोगों ने मातृभाषा के तौर पर असमीया को दर्ज करवाया।

असम में निवास का इतिहास :

प्राचीन ग्रंथों, इतिहास और इस समुदाय के त्योहारों तथा सांस्कृतिक कर्मकांडों से प्रमाण मिलता है कि गोर्खा लोग असम के प्राचीन निवासी हैं।

लगभग पांच हजार साल पहले से ही (ई.पू.3139) अर्थात महाभारत के समय से ही नेपाल और असम के बीच पारस्परिक संबंध और प्रवजन था। तब यह समस्त अंचल 'जंबूद्वीप' या 'आर्यावर्त' के नाम से जाना जाता था। असम के नेपालीभाषी लोग सालाना पितृश्राद्ध में पिंड दान करते वक़्त मंत्र के साथ अपने पते का उल्लेख कर 'जंबूद्वीपे, आर्यावर्ते, भारतवर्षे, असम प्रांते' कहते हैं।

प्राचीन धर्मग्रंथों के अनुसार कामाख्या मंदिर के निर्माता और प्रागज्योतिषपुर के राजा नरक का जन्म वर्तमान नेपाल के सुनसरी जिले के वराह क्षेत्र में हुआ था और उन्होंने कामाख्या मंदिर में पूजा कराने के लिए नेपाल से पुजारी को बुलाया था। बाद में वे पुजारी कामाख्या मंदिर में 'लालमोहरीया पंडा' के नाम से मशहूर हुए थे।

असम साहित्य सभा के पूर्व अध्यक्ष तीर्थनाथ शर्मा के अनुसार पंद्रहवीं शताब्दी में श्रीमंत शंकरदेव के शिष्य नेपाली ब्राह्मण रतिकांत उपाध्याय ने वर्तमान टियोक और नगांव में 'नेपाली सत्र' की स्थापना के थी। समय के प्रवाह में उपाध्याय के वंशज असमीया समाज के साथ इस कदर घुल-मिल गए कि मानवशास्त्रियों को आज उनकी कोई जानकारी नहीं मिलती।

तत्कालीन ब्रिटिश और नेपाल के बीच सन् 1815-16 में हुई सुगौली संधि के तहत नेपाल के नागरिकों के साथ भारत के उत्तर नेपाल का काफी हिस्सा भारत में शामिल कर लिया गया। सुगौली संधि के बाद ब्रिटिश ने गोर्खा रेजीमेंट (तत्कालीन गोर्खा राइफल्स) का गठन किया था और कुछ सैनिकों को असम में मान सेना को खदेड़ने के लिए तैनात किया था। असम से मान सेना को खदेड़ने के बाद सन् 1826 में यांडाबू संधि हुई।

असम के समाज जीवन में गोर्खा लोगों का योगदान :

गोर्खा सैनिक सेवानिवृत्ति के बाद असम में बसते गए। जंगल-पहाड़ से भरपूर असम में उन्नीसवीं शताब्दी में तेल उद्योग, कोयला उद्योग, रेल पटरियों आदि में काम करवाने के लिए उत्तर भारत और नेपाल से अनुबंध के जरिये ब्रिटिश काफी 'गिरमिटे' नेपाली लोगों को लेकर आए थे, जो लोग वापस नहीं लौटे और बाद में आजादी की जंग में भागीदार बने। छविलाल उपाध्याय, दलबीर सिंह लोहार, विष्णुलाल उपाध्याय, भक्त बहादुर प्रधान, प्रसाद सिंह सुब्बा आदि के नेतृत्व में नेपालीभाषी लोग आजादी की जंग में शामिल हुए थे और जेल भी गए थे। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक तक असम के नेपालीभाषियों ने अपना कोई जातीय संगठन नहीं बनाया था, बल्कि वे स्थानीय सामाजिक तथा राजनीतिक संगठनों के साथ जुड़े हुए थे। अंबिकागिरी रायचौधरी के आह्वान पर आज़ादी के बाद हुई जनगणना में अधिकतर नेपालीभाषियों ने मातृभाषा के तौर पर असमीया को दर्ज करवाया था।

जब सन् 1947 में मुख्यमंत्री गोपीनाथ बरदलै के शासनकाल में 'ट्राइबल बेल्ट और ब्लॉक' का गठन किया गया, तब दूसरी जातियों की तरह नेपालीभाषियों को भी 'संरक्षित' श्रेणी का दर्जा मिला।

असमीया भाषा आंदोलन, माध्यम आंदोलन और असम आंदोलन में नेपालीभाषियों ने सक्रिय भागीदारी निभाई। असम आंदोलन में इस जन समुदाय के छह व्यक्ति शहीद हुए।

असम की भाषा शिक्षा के क्षेत्र में भी गोर्खा जन समुदाय के लोगों ने अहम योगदान किया है। वर्तमान में इस समुदाय के लोगों ने अपनी मातृभाषा की जगह असमीया भाषा को अपना लिया है और अपनी भाषा को एक विषय के तौर पर पढ़ने का फैसला किया है।

असम के साहित्य, संस्कृति और क्रीड़ा के क्षेत्र में भी इस समुदाय ने काफी योगदान किया है।

राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में भी गोर्खा लोग पीछे नहीं हैं। असम से कई गोर्खा नेता सांसद बने हैं, असम के कई मंत्रिमंडलों में नेपालीभाषी जनप्रतिनिधियों को जगह मिली है तथा असम विधानसभा के अध्यक्ष व कैबिनेट मंत्री तक बने हैं। प्रशासनिक स्तर पर भी विभिन्न पदों पर इस समुदाय के लोग काम कर रहे हैं।

उत्सव-पर्व :

साल भर गोर्खा जन समुदाय के लोग विभिन्न उत्सव-पर्व का पालन करते हैं। उनमें महिलाओं का 'तीज', पारिवारिक संबंध मजबूत बनाने वाला उत्सव 'बड़ा दशै' और बहन-भाई के प्रेम का उत्सव 'तिहार' प्रमुख है। ये लोग जो 'सेलूरोटी' और 'पक्कू' वाला मांस बनाते हैं, वह लाजवाब होता है।

असम के गोर्खा जन समुदाय के कुछ उल्लेखनीय व्यक्तियों के परिचय :

छविलाल उपाध्याय

छविलाल उपाध्याय का जन्म 12 मई, 1882 को वर्तमान विश्वनाथ जिले के बूढ़ीगांग में हुआ था। उनके पिता का नाम काशीनाथ उपाध्याय था। उन्होंने औपाारिक रूप से माध्यमिक शिक्षा हासिल की थी, लेकिन अनौपचारिक शिक्षा के बल पर और चंद्रनाथ शर्मा, घनश्याम बरुवा, लोकनायक अमियकुमार दास आदि के सान्निध्य में वे आजादी की जंग में शामिल हुए थे। काजीरंगा के आसपास तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने गोर्खा और मिसिंग लोगों के मवेशीघरों को उजाड़ने की तैयारी की थी। सन् 1919 में तेजपुर में आयोजित 'असम एसोशियन' की बैठक में उपाध्याय ने इसके खिलाफ प्रस्ताव पेश किया, जिसे स्वीकार किया गया। 18 अप्रैल, 1921 को जोरहाट में उपाध्याय की अध्यक्षता में 'असम एसोशियन' की सभा आयोजित हुई और 'असम एसोशियन' का विलय कांग्रेस में किया गया। उनको असम प्रदेश कांग्रेस कमेटी का प्रथम अध्यक्ष चुना गया। कांग्रेस में शामिल होने की वजह से अंग्रेजों ने उनको गिरफ्तार कर लिया। इसीलिए वे सन् 1921 में बॉम्बे (वर्तमान मुंबई) में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन में भाग नहीं ले पाये। सन् 1921 में महात्मा गांधी असम आए थे। गांधी के असम आगमन से पहले अंग्रेजों ने राज्य के कांग्रेसी नेताओं को आजादी की जंग से पीछे हटने के लिए काफी प्रलोभन दिया था। उपाध्याय को भी मौजादार, काउंसिलर, बरलाट आदि बनाने का लालच दिया था। उन्होंने इन प्रलोभनों को ठुकरा दिया और गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे असहयोग आंदोलन में शामिल होकर छह महीने तक जेल की सजा भुगती। जेल से लौटकर उन्होंने विदेशी कपड़ों की होली जलाने के अभियान में भाग लेते हुए सबसे पहले अपने घर में मौजूद विदेशी कपड़ों को जला दिया। स्थानीय विद्यालय की स्थापना करने में उन्होंने अहम भूमिका निभाई। सन् 1942 में भी अंग्रेजों ने उनको भारत छोड़ो आंदोलन से दूर रखने के लिए प्रलोभन दिया, लेकिन उन्होंने ऐसे प्रलोभनों को ठुकरा दिया और असम को ग्रुप 'सी' में शामिल करने की साजिश का कड़ा विरोध

किया और उनके नेतृत्व में 'अखिल भारतीय गोर्खा' लीग के आह्वान पर 30 हजार नेपालीभाषी लोगों ने जिन्ना के इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए प्रदर्शन किया।

दलबीर सिंह लोहार

26 जनवरी, 1915 को दलबीर सिंह लोहार का जन्म डिब्रुगढ़ जिले के खलिहामारी में हुआ। उनके पिता का नाम अनंतराम लोहार था। 15 साल की उम्र में ही वह आज़ादी की जंग में स्वयंसेवक वाहिनी में शामिल हुए और सन् 1930 में कराची में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभा में असम का प्रतिनिधित्व किया। सन् 1930 में कुख्यात कनिंघम सर्कुलर का विरोध करते हुए उन्हें तीन महीने तक जेल में रहना पड़ा। अंग्रेजों की जनविरोधी नीतियों का विरोध करते हुए निर्भीक व स्वाधीनता प्रिय लोहार को फिर सन् 1931–32 में छह महीने जेल में गुजारने पड़े। छूआछूत निवारण में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई थी और सेवा दल की स्थापना में विशेष रूप से भाग लिया था। वे मजदूर आंदोलन के नेता थे और ट्रेड यूनियन बनाने पर खास ध्यान दिया था। दूसरे विश्वयुद्ध के साथ भारत को जोड़ने का विरोध करने की वजह से उनको घर से निकाल दिया गया था और सिर्फ ग्वालपाड़ा जिले में ही रहने की उनको इजाजत दी गई थी। वे केले के पेड़ की नाव पर सवार होकर ब्रह्मपुत्र के रास्ते चुपके से घर लौट आए थे। मजदूरों और पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर उनको सन् 1946 में तिनसुकिया से विधानसभा के लिए चुना गया। वे असम के नेपाली समुदाय के प्रथम विधायक थे। उनका देहांत 29 जुलाई, 1969 को हो गया।

हरिप्रसाद गोर्खा राई

नगालैंड की राजधानी कोहिमा में धनराज राई और यशोदा राई की संतान के रूप में हरिप्रसाद राई का जन्म 15 मार्च 1915 को हुआ। बाद में उन्होंने अपने नाम के साथ गोर्खा शब्द भी जोड़ कर खुद का परिचय हरिप्रसाद गोर्खा राई के रूप में दिया। आवाहन युग के विशिष्ट लेखक के तौर पर गोर्खा राई धनबहादुर सोनार और गोबिंद चंद्र पैरा के साथ मिलकर साहित्य सृजन करने लगे। इन त्रिमूर्तियों ने असमीया माध्यम से पढ़ाई की थी और असमीया भाषा–साहित्य की सेवा की तरफ ध्यान दिया था। असम साहित्य सभा के प्रथम अध्यक्ष पद्मनाथ गोहाईं बरुवा के सान्निध्य में साहित्य जगत में कदम रखनेवाले 'गोर्खा' राई ने धनबहादुर सोनार और गोविंद चंद्र पैरा के सहयोग से असम साहित्य सभा की कोहिमा शाखा का गठन किया था। पराधीन भारत में जातीय चेतना और जागरण के लिए जिन लेखकों ने कलम का इस्तेमाल किया उनमे गोर्खा राई प्रमुख थे। समालोचक गोबिन्द प्रसाद अधिकारी के अनुसार गोर्खा राई ने सन् 1935 में असमीया भाषा में राजनीतिक निबंध लिखना शुरू किया था। असमीया और नेपाली दोनों भाषाओं में साहित्य रचने वाले गोर्खा राई सही अर्थों में समन्वय के प्रतीक थे। उनकी कहानियों में जनजातीय और गैर–जनजातीय जनजीवन के

सौहार्द का चित्र नजर आता है। उनके नाम के साथ गोर्खा जोड़ने का सुझाव प्रख्यात साहित्यकार मित्रदेव महंत ने दिया था। शिक्षक के तौर पर जीविका शुरू करने वाले गोर्खा राई बाद में आकाशवाणी में सेवा प्रदान करते हुए नेपाली व असमीया भाषा की सेवा में जुट गए।

राई ने कई शब्दकोश बनाए थे –

(क) मिकिर शब्दकोश (1974–76)
(ख) पुमेइटांगखुल शब्दकोश (1974–76)
(ग) माराम शब्दकोश (1974–76)
(घ) मेइरिंग शब्दकोश 1974–76)
(ङ) असमीया शब्दकोश (1974–76)
(च) नेपाली शब्दकोश (1974–76)

इसके अलावा नेपाली भाषा की उनकी कृतियां हैं–

1) बाबरी (कविता संकलन, 1974)
2) मनसरिको बोली (कविता संकलन, 1977)
3) यहा बदनाम हुंछ (कहानी संकलन, 1974) आदि

प्रश्नावली

1. नेपाली या गोर्खा लोग किन नृ–गोष्ठियों के सम्मिश्रण हैं?
2. 'लाल मोहरिया पंडा' का तात्पर्य क्या है?
3. असम प्रदेश कांग्रेस कमेटी के प्रथम अध्यक्ष का नाम लिखिए।
4. 'ट्राइबल बेल्ट एंड ब्लॉक' में नेपाली भाषी लोगों को संरक्षित वर्ग का दर्जा कब मिला?
5. रतिकांत उपाध्याय कौन थे और उन्होंने कहां–कहां सत्रों की स्थापना की थी?
6. गोर्खा समुदाय के लोगों के प्रमुख उत्सव क्या–क्या हैं?
7. 'जंबूद्वीपे, आर्यावर्ते, भारतवर्षे, असम प्रांते' का अर्थ क्या है?
8. सुगौली संधि कब हुई और इसके तहत किस देश के भू–भाग और नागरिक भारत में शामिल हुए?
9. **संक्षेप में लिखिए :**
   (क) छविलाल उपाध्याय (ख) हरिप्रसाद गोर्खा राई
   (ग) दलवीर सिंह लोहार

●●●

बोड़ो

अपनी मजबूत समाज व्यवस्था, भाषा-साहित्य, धर्म और समृद्ध संस्कृति के साथ बोड़ो एक विशिष्ट जनजाति है। बोड़ो लोगों को पूर्वोत्तर भारत की आदिम जनजाति के तौर पर जाना जाता है। सर एडवर्ड गेट के अनुसार असम और उत्तर पश्चिम बंगाल में बोड़ो लोगों का विशाल राज्य था।

कहा जाए तो बड़ो (बोड़ो) शब्द का विस्तृत अर्थ है समगोष्ठीय विभिन्न लोगों का समूह। उन लोगों को उत्तर-पूर्व बंगाल, ग्वालपाड़ा जिले में मेस और नेपाल में मेसे के नाम से जाना जाता है। बोड़ो लोगों को असम के विभिन्न स्थानों पर फैले हुए देखा जा सकता है। इसी तरह बोड़ो मूल के सोनोवाल कछारी,ठेंगाल कछारी, सुतिया, देवरी,लालुंग,राभा,गारो, हाजंग और त्रिपुरी लोग लखीमपुर, तिनसुकिया, डिब्रूगढ़, शिवसागर आदि विभिन्न स्थानों पर निवास करते हैं। कार्बी आंग्लांग और डीमा हसाओ जिले में रहने वाले डिमासा-कछारी लोग भी बृहत बड़ो समुदाय की एक शाखा है।

बोड़ो लोगों की भाषा और साहित्य

बोड़ो लोगों की अपनी समृद्धिशाली भाषा है। यह बोड़ो लोगों की मातृभाषा है। बोड़ो लोगों के पास उच्च मानदंड का विज्ञान सम्मत शब्द भंडार है। बोड़ो भाषा सदिया से लेकर पूर्वी बंगाल तक और उत्तर में नेपाल से बांग्लादेश तक प्रचारित व प्रसारित एक समृद्ध भाषा है। भाषाविद् डॉ. प्रमोद चंद्र भट्टाचार्य के अनुसार किरात राज्य शासन के समय बोड़ो भाषा का प्रयोग सरकारी और अदालती भाषा के तौर पर होता था।

बोड़ो भाषा चीन के तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषा है। विद्वानों के अनुसार तिब्बती भाषा की दो प्रधान शाखाएं हैं- 1. तिब्बत-बर्मी और 2. ताई-चीन भाषा। तिब्बत-बर्मी भाषा का अंग है बोड़ो-नागा भाषा। शुरू की स्थिति में बोड़ो-नागा एक ही परिवार के अंतर्गत थे। बाद में नागा लोग अलग हो गए। बोड़ो मूल से पैदा होने वाली भाषाएं हैं-डिमासा, गारो,राभा, सुतिया,लालुंग,हाजंग और तिवा।

सन् 1963 में बोड़ो भाषा को प्राथमिक स्तर पर माध्यम के तौर पर स्वीकृति मिली और 1968 में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में इसका प्रचलन शुरू हुआ। इसके अलावा सन् 1977 में गौहाटी विश्वविद्यालय

में इसे आधुनिक भारतीय भाषा के तौर पर स्वीकृति मिली। सन् 1984 से बोड़ो भाषा को असम की राजभाषा के तौर पर राज पत्र के जरिए स्वीकृति मिली। 17 अक्टूबर, 2005 को बोड़ो भाषा को भारत के उच्चतम स्वतंत्र साहित्यिक संस्थान साहित्य अकादमी से स्वीकृति मिली और 3 दिसंबर, 2005 को केंद्रीय लोकसेवा आयोग ने बोड़ो भाषा को एक विषय भाषा के तौर पर मंजूरी दी। सन् 2003 में भारत सरकार, असम सरकार और बोड़ो लिबरेशन टाइगर के साथ हुई बीटीसी (बोड़ोलैंड टेरिटोरियल काउंसिल)संधि के अनुसार बोड़ो भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया। संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होने के बाद बोड़ो भाषा को विकसित होने का अवसर मिला।

वर्तमान समय में बोड़ो भाषा को गौहाटी, बोड़ोलैंड, डिब्रूगढ़ और कॉटन विश्वविद्यालय में पूर्ण विभाग के तौर पर स्थान मिला है। बोड़ो साहित्य सभा ने 16 नवंबर, 1952 को अपनी स्थापना के दिन से ही बोड़ो भाषा साहित्य और सांस्कृतिक पहलुओं के प्रचार-प्रसार के लिए विशेष भूमिका निभाई है। बोड़ो भाषा की पहली पुस्तक गंगाचरण कछारी की 'बड़ो फिसा ओ आइन' (1915) है। चितरंजन मोसाहारी देव रचित 'फैमाल मिजिंक' (1970) बोड़ो साहित्य का प्रथम कहानी संकलन है और 'जुजाइनि' (1972) प्रथम उपन्यास है। बोड़ो भाषा में 'बडोसा', 'बोड़ोलैंड इंगखंग', 'बोड़ोलैंड सांसरी' और 'हाइनि रादाब आदि विभिन्न समाचार पत्र प्रकाशित होते रहे हैं।

बोड़ो लोगों का धर्म

बोड़ो लोगों का अत्यंत प्राचीन धर्म 'बाथौ' धर्म है। 'बाथौ बौराई' बोड़ो लोगों के श्रेष्ठ देवता हैं। बोड़ो लोग मिट्टी (हा), हवा (बार),पानी (दै), आकाश (अख्रांग) और सूर्य (सान) इन पंचतत्वों के सर्जक को ईश्वर के तौर पर मानते हैं। इसे ही 'बाथौ' कहा जाता है। 'खेराई' बोड़ो लोगों का धार्मिक उत्सव है। समाज में सबके मंगल के लिए 'दौदिनी' और 'दौरि' के सहयोग से इस उत्सव का पालन किया जाता है। बोड़ो लोग 'बाथौ' धर्म के अलावा ईसाई धर्म, अनुकूल धर्म, वैष्णव धर्म भी अपनाते रहे हैं। इसके अलावा ब्रह्म धर्म को भी कुछ लोगों ने अपने धर्म के तौर पर अपनाया है।

बोड़ो लोगों की संस्कृति

बोड़ो महिलाएँ अथवा युवतियाँ कपड़ों की बुनाई में पारंगत होती हैं। उन लोगों के समाज में हथकरघा देखा जाता है। बोड़ो महिलाएँ 'दखना', 'आइनाई', फालि, 'चाद्रि' इत्यादि बुनती है। कपड़े पर बोड़ो महिलाएँ जो फूल बनाती हैं, उनके नाम हैं-'दाउथु आगान', 'फारेउ मेगन', 'मुफुर आफा', 'दाउराई मौखरेब',

'थाईगीर बिबार', 'हाजौ आगर' इत्यादि। आरनाई का श्रद्धा और सम्मान के प्रतीक के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है।

गीत-संगीत और वाद्य यंत्र

बोड़ो लोगों के अपने नृत्य, गीत-संगीत और वाद्य यंत्र हैं। बोड़ो लोगों के गीतों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-1. प्रार्थना गीत (आराज मेथाम), 2. लोकगीत (खुगा मेथाम), 3. आधुनिक गीत (गोदान मेथाम)। प्रार्थना गीतों में-खेराई प्रार्थना, मंत्र गीत, सेरजा गीत और दहार गीत। लोक गीत हैं- बैशागु गीत, विवाह गीत, खेला गीत, बच्चों के खेलने का गीत, प्रेम का गीत इत्यादि। आधुनिक काल के गीत वर्तमान के गीत हैं।

बोड़ो नृत्य दो प्रकार के हैं-1. प्राचीन बोड़ो नृत्य और 2. आधुनिक बोड़ो नृत्य। बागुरंबा और बारदैसिख्ला नृत्य केवल भारत ही नहीं समूचे एशिया में प्रसिद्ध है। बोड़ो लोगों के प्रमुख वाद्य यंत्र हैं- खाम (मादल), सिफ़ुंग (बांसुरी), जथा (ताल), सेरजा और गंगना।

बोड़ो समझौता

प्रधानमंत्री पीवी नरसिंह राव के नेतृत्व में भारत सरकार, केंद्रीय रक्षामंत्री शरद पवार के सहयोग से कई बार वार्ता होने के बाद अखिल बोड़ो छात्र संघ (अब्सू), बोड़ो गण संग्राम समिति (बी.पी.ए.सी.) और असम के मुख्यमंत्री हितेश्वर शइकिया के बीच वार्ता के बाद 20 फरवरी, 1993 को बोड़ोलैंड स्वायत्तशासी परिषद् का गठन किया गया।

इसके बाद बोड़ो लोगों की संस्कृति, भाषा, शिक्षा और आर्थिक विकास के लिए भारत सरकार,असम सरकार और बोड़ो लिबरेशन टाइगर के बीच 10 फरवरी, 2003 को बोड़ोलैंड टेरीटोरियल एरिया डिस्ट्रिक्ट नाम से एक नई संधि की गई। इस समझौते के तहत बी.टी.सी. (बोड़ोलैंड) इलाकों में कुल 3079 गांवों को शामिल कर कोकराझाड़, चिरांग,बाक्सा और उदालगुड़ी जिले की स्थापना की गई।

बोड़ो समाज के कई व्यक्ति असमीया जातीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान देते हुए आज भी स्मरणीय हैं।उनमें से कुछ व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है-

राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित कामिनी कुमारी नर्जरी

नृत्य शिल्पी उस्ताद कामिनी कुमार नर्जरी के निस्वार्थ और अथक प्रयास से बोड़ो नृत्य को प्रादेशिक

स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक पहचान मिली। उनका जन्म सन् 1926 में वर्तमान गोसाईंगांव महकमा के अंतर्गत बिन्याखाता अंचल के बामुनकूरा गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम बजाराम नर्जरी और मां का नाम थांगाली नर्जरी था।

सन् 1955 में दिल्ली में आयोजित ऑल इंडिया रेडियो की खुली प्रदर्शनी में भाग लेकर उन्होंने विवाह गीत प्रस्तुत किया था। इस कार्यक्रम से लौटकर उन्होंने बोड़ो संस्कृति के विकास के लिए विभिन्न कदम उठाए।

26 जनवरी, 1957 को दिल्ली में आयोजित गणतंत्र दिवस समारोह में उस्ताद कामिनी कुमार नर्जरी एक 'सांस्कृतिक दल' के साथ शामिल हुए। 27 जनवरी को आयोजित कार्यक्रम में बोड़ो सांस्कृतिक दल ने 'बागरूमबा' नृत्य पेश कर भारत में प्रथम स्थान हासिल किया।

सन् 1992 में एशिया मेला 13 में भाग लेकर बोड़ो नासीना नृत्य पेश कर दर्शकों की भूरि-भूरि प्रशंसा हासिल की। सन् 1976 में गुवाहाटी में आयोजित भारत-सोवियत मैत्री सम्मेलन में उन्होंने बोड़ो कृष्टि-संस्कृति का प्रदर्शन किया। इसके अलावा नर्जरी के दल ने 29 जुलाई, 1982 को गुवाहाटी के रवींद्र भवन में आयोजित 'जनजाति लोक-नृत्य प्रदर्शनी' कार्यक्रम में भाग लिया।

उस्ताद कामिनी कुमार नर्जरी को सन् 1982 में 'संगीत नाटक अकादमी' पुरस्कार मिला था।

उनकी कोशिश से ही बोड़ो संस्कृति को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली। इस महान शिल्पी का देहांत 16 मई, 1998 को हुआ।

कला जगत के प्रख्यात कलाकार शोभा ब्रह्म

डॉ. शोभा ब्रह्म भारत के एक प्रख्यात मूर्तिकार और असम के कला जगत के पथ प्रदर्शक थे। उनकी कलाकृतियां बोड़ो और असमीया समाज के सही चित्र को प्रतिबिंबित करती हैं। इस महान कलाकार का जन्म 18 अक्टूबर, 1929 को कोकराझाड़ जिले के गोसाईगांव के भूमका नामक एक पिछड़े गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम हरिचरण ब्रह्म और माता का नाम देवश्री ब्रह्म था।

उन्होंने अपने गांव के प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। इसके बाद धुबड़ी के सापटग्राम हाईस्कूल से सन् 1950 में इतिहास विषय में लेटर सहित प्रथम श्रेणी में उतीर्ण होकर गुवाहाटी कॉलेज में दाखिला लिया। ब्रह्म बचपन से ही एक कलाकार और भास्कर्य शिल्पी बनने का सपना देखते थे। ललित कलारत्न डॉ. शोभा, कविगुरु ब्रह्म रबींद्रनाथ ठाकुर द्वारा कोलकाता में स्थापित शांतिनिकेतन में 1950 में पढ़ने गए और सन् 1957 में कला विषय में स्नातक डिग्री लेकर असम आए।

तारिणी चरण हाईस्कूल में उन्होंने अध्यापन शुरू किया। उनके सृजनशील जीवन के दो लक्ष्य थे। पहला असम में चित्रकला महाविद्यालय की स्थापना करना, दूसरा पूर्वोत्तर की विभिन्न जातियों की कला-संस्कृति, जनजीवन का अध्ययन कर एक विशिष्ट शिल्प धारा का निर्माण करना। हाईस्कूल में अध्यापन करते हुए शिल्प कला को नए रूप में सज्जित करने के लिए उन्होंने संकल्प लिया था। गरीबी और अभाव के बावजूद शिल्प-धारा और सृजन-कर्म का काम लगातार करते रहे थे। 31 जनवरी, 1964 को उन्हें वर्तमान सरकारी चारूकला महाविद्यालय का प्राचार्य बनाया गया। इस महाविद्यालय का सरकारीकरण करने तथा इसे कॉलेज स्तर तक ले जाने के लिए उन्होंने निरंतर प्रयास किया था। इसके लिए उन्हें काफी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा था। बीच बीच में कई मंत्रियों, विधायकों और अधिकारियों के पास जाकर उन्हें कटु अनुभवों का भी सामना करना पड़ा था। इसके बावजूद वे विचलित नहीं हुए थे। उनके मन में कोई शिकायत नहीं थी। डॉक्टर शोभा ब्रह्म हमेशा कोई न कोई काम करते रहना पसंद करते थे। अपने जीवन की खुशियों को छोड़कर नई पीढ़ी को उत्साहित करने के लिए काम करते रहे थे। कलाकृतियों के जरिए जाति-भाषा-वर्ण से परे सबको लेकर देश और मातृभूमि का उद्धार करना उनका उद्देश्य था। उनका प्रत्येक चित्र एक किताब की तरह था। सन् 1965 में उनके चित्र-भास्कर्यों और कलाकृतियों की पहली प्रदर्शनी गुवाहाटी जिला पुस्तकालय में लगी थी। उसके बाद उनकी कलाकृतियां शिलांग, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई से लेकर बुल्गारिया, चेकोस्लाविया आदि देश-विदेश के विभिन्न स्थानों पर प्रदर्शित हुई थी। उन्होंने देश-विदेश के कला प्रेमियों का दिल जीता था। देश के विभिन्न संग्रहालयों में उनके चित्रों को स्थान दिया गया है।

चित्र-भास्कर्य के अलावा उन्होंने साहित्य का भी सृजन किया था। सन् 1989 में चारूकला एवं कला महाविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने साहित्य साधना की तरफ ध्यान दिया था। उनकी प्रकाशित कृतियों के नाम हैं-'शिल्प कलार नवप्रजन्म', 'भारतीय चित्रकला' (अनुवाद), 'गौदान उजि' (बोड़ो), 'लियो-नारदो-दी-विंची', 'रोजेज़ रेज़ एंड गोल्ड' (अंग्रेजी) और खंथाअंजली (बोड़ो भाषा में अनुदित)।

डॉ. ब्रह्म को उनकी उपलब्धियों के लिए राज्य स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक कई पुरस्कार मिले थे। उनको जो पुरस्कार मिले उनमें प्रमुख हैं-असम शिल्पी पेंशन पुरस्कार (1977), असम सरकार का सांस्कृतिक पेंशन पुरस्कार (1996), कमल कुमारी बरुवा फ़ाउंडेशन पुरस्कार (1991), असम राज्यिक विष्णु राभा पुरस्कार (1996), प्रणब बरुवा शिल्पी पुरस्कार (1996), सद्भावना पुरस्कार (2002), इंगखांग ट्रस्ट कमेटी पुरस्कार (2006), बोड़ोलैंड टेरीटोरियल काउंसिल एवार्ड फॉर आर्ट एंड कल्चर पुरस्कार (2006), ललित कला रत्न पुरस्कार (2007)। इसके अलावा उनको डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय और कोलकाता के रबींद्र

भारतीय विश्वविद्यालय से डी लीट की उपाधि प्रदान की गई।

डॉ. ब्रह्म नारी के ऊपर हो रहे अत्याचार और प्रकृति की तबाही से काफी विचलित होते थे। मातृ जाति की वेदना को चित्रों के जरिए मोचन करने की कोशिश करते थे। भूमका में नारी के ऊपर हुए पाशविक अत्याचार को उन्होंने चित्र के जरिए उजागर किया था। असम की प्रकृति के सौंदर्य, नद-नदी, पहाड़ और हरियाली के मनोरम दृश्यों को उन्होंने चित्रों के जरिए प्रस्तुत किया था।

चित्र शिल्प और भास्कर्य कला के साथ साहित्य चर्चा करते हुए इस महान शिल्पी का देहांत 5 मार्च, 2012 को हो गया।

शहीद बिनेश्वर ब्रह्म

शहीद बिनेश्वर ब्रह्म का जन्म 28 फरवरी, 1949 को वर्तमान कोकराझाड़ जिले के भातरमारी गांव में हुआ। उनके पिता का नाम तारामणि ब्रह्म और मां का नाम सोनती ब्रह्म था।

उन्होंने अपने गांव के 365 नंबर प्राथमिक विद्यालय से सन् 1954 में प्राथमिक शिक्षा शुरू की। प्राथमिक शिक्षा संपन्न करने के बाद सन् 1960 में कोकराझाड़ उच्चतर माध्यमिक बहुमुखी विद्यालय में उन्होंने दाखिला लिया। इस विद्यालय से एमई खंड की छात्रवृत्ति हासिल करने के साथ ही सन् 1967 में वे पीयूएससी परीक्षा में लेटर सहित प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। उसी साल उन्होंने जोरहाट के असम कृषि महाविद्यालय में स्नातक श्रेणी में दाखिला लिया और 1972 में कृषि महाविद्यालय से कृषि की स्नातक डिग्री हासिल की।

सन् 1973 के फरवरी में पहली बार 'उन्होंने हिंदुस्तान खाद निगम के खाद विस्तार' एवं 'कृषि शोध विभाग' में नौकरी शुरू की। इसी विभाग में कई पदों पर रहते हुए वे धुबड़ी, कोकराझाड़ और मंगलदै आदि स्थानों पर कर्म जीवन व्यतीत किए। सन् 1980 के अगस्त तक इस विभाग में रहने के बाद उन्होंने खाद्य निगम विभाग में क्वालिटी कंट्रोल और डिप्टी मैनेजर के पद पर गुवाहाटी में काम किया। सन् 1981 से सन् 1983 तक बिहार की राजधानी पटना में भी उन्होंने काम किया। फिर सन् 1983 में रीजनल ऑफिसर के रूप में पदोन्नति लेकर गुवाहाटी लौट आए। सन् 1998 में उसी विभाग के जोनल ऑफिस में मैनेजर मूवमेंट के तौर पर उनकी पदोन्नति हुई।

ब्रह्म एक बुद्धिमान, चिंतक, विचारक, समाज सेवक, साहित्यकार और अच्छे संगठन कर्ता थे। वे एक साथ 8 भाषाओं पर अधिकार रखते थे-जैसे बोड़ो,अंग्रेजी, असमीया, बंगला, हिंदी, नेपाली, भोजपुरी और राजवंशी।

बिनेश्वर ब्रह्म को सन् 1990 से सन् 1993 तक बोड़ो साहित्य सभा के महासचिव के पद पर नियुक्त किया गया। उन्होंने दो कार्यकालों के लिए बोड़ो साहित्य सभा के अध्यक्ष के पद पर भी काम किया। 19 अगस्त, 2000 को गुवाहाटी के भेटापाड़ा स्थित निवास स्थान पर अनजान हमलावर के हाथों गोली लगने से उनकी अकाल मृत्यु हो गई।

उनकी प्रकाशित पुस्तकों के नाम हैं–'आई नि मादई' (कविता संकलन 1985),बरदैसिखला (कविता संकलन 1997) और आंगनि गामि भातारमारि (निबंध संकलन)

इसके अलावा बोड़ो लोगों के विशिष्ट व्यक्तियों में से गुरुदेव कालिचरण ब्रह्म और बडोफा उपेंद्रनाथ ब्रह्म के नाम उल्लेखनीय हैं। कालिचरण ब्रह्म ने बोड़ो लोगों के बीच ब्रह्मधर्म प्रचार किया था और साथ ही वे बोड़ो लोगों के समाज सुधार के भी मार्गदर्शक थे। बोडोफा उपेंद्र नाथ ब्रह्म ने बोड़ो लोगों के शैक्षिक, सामाजिक तथा राजनीति के क्षेत्र में अहम योगदान किया था।

प्रश्नावली

1. बोड़ो भाषा किस भाषा समुदाय के अंतर्गत है?
2. बोड़ो भाषा को कब प्राथमिक शिक्षा के माध्यम के रूप में मान्यता मिली थी?
3. बोड़ो लोगों के बारे में लिखी गई दो पुस्तकों के नाम लिखिए।
4. बोड़ो भाषा की पहली पुस्तक क्या थी?
5. बोड़ो लोगों के पारंपरिक वेश–भूषा में इस्तेमाल किए गए कुछ फूलों के नामों का उल्लेख कीजिए।
6. संक्षेप में टिप्पणी लिखिए–
   (क) उस्ताद कामिनी कुमार नर्जरी
   (ख) शोभा ब्रह्म (ग) विनेश्वर ब्रह्म

*** ** ***

मटक

परिचय :

मटक असम की एक प्राचीन ताई मंगोलीय जन समुदाय है। 'मटक' ताई भाषा का शब्द है। ताई भाषा में 'म' का अर्थ शक्तिशाली, बुद्धिमान या ज्ञानी और 'टक' का अर्थ उपयुक्त, तौलना, तराजू, परीक्षित है। अर्थात उपयुक्त, ज्ञानी, शक्तिशाली, विद्वान लोग है। 1228 ईस्वी सदी में चुकाफा के असम नामक इस भूखंड पर पहाड़ों के रास्ते आते समय प्राचीन असम के सौमारपीठ में मटक लोग छोटे-छोटे राज्य गठित कर एक-एक मुखिया के अधीन निवास कर रहे थे। कृषि-कार्य उनकी मूल जीविका थी। चाउलुंग चुकाफा सुनहरे फसलों के देश असम में प्रवेश कर टिपाम पहाड़ से सटे अंचल में सर्वप्रथम मटक लोगों से मिले। टिपाम में मिले मटक मुखिया की सहायता से चुकाफा ने नागाओं को परास्त किया। यही मटक मुखिया राजा को स्व-उत्पादित प्रचुर बैंगन की आपूर्ति किया करते थे। बैंगन आपूर्ति के कारण ही स्वर्गदेव के साथ आए कांगन (Kang-Gang) बरगोहाईं ने मटक मुखिया को 'लानमाखु' नाम दिया था। लानमाखु ताई भाषा का शब्द है। 'लान' का अर्थ नाति और 'माखु' का अर्थ बैंगन है। अर्थात् मटक मुखिया को 'बैंगन का नाति' की आख्या दी गई।

मटक की उत्पत्ति का इतिहास :

मटक शब्द की उत्पत्ति का इतिहास जानने के लिए 'फुखाओ' (PhuKhao) शब्द का इतिहास देखना होगा। 'फुखाओ' ताई की एक प्रमुख शाखा है। यह शाखा ताई मंगोलीय 'फुथाई' गुट के अंतर्गत आती है। 'फु' का अर्थ ताई भाषा में 'मालिक' या सम्मानीय व्यक्ति और 'खाओ' का अर्थ है 'सफेद'। फुथाई ताई का एक बड़ा वर्ग है। फुथाई लोगों के चीन के लाओ राज्य में रहने की वजह से उन्हें लाओ भी कहा जाता है। फुथाई लोगों को तीन भागों में विभक्त किया गया है। ये हैं-(क) फुखाओ (सफेद पहनी टाई), (ख) फुडाम या टाई डाम (काला पहनी टाई), (ग) टाई डेंग (लाल पहनी टाई)। दक्षिण चीन, थाईलैंड, वियतनाम से असम तक लाओ लोग फैले हुए हैं। आहोम इतिहास के अनुसार फुखाओ की उत्पत्ति बीज सींचने या

फसल सींचने के मूल से हुई है। फसल सींचने वाले मूल के फुखाओ से मटक की उत्पत्ति हुई है। एक विश्वसनीय तथ्य से जाना जाता है कि स्वर्ग के राजा इंद्र के खुनलुंग खुनलाइ को राज्य स्थापित करने के लिए भेजते समय कृषि पितृ च्याओफुरा आलंग का आविर्भाव हुआ था। च्याओफुरा आलंग का पूर्व का नाम था खेनखाम लांकुरि और कृषि पितृ के रूप में केखाओ-चाओथाओलुंग नाम पड़ा है। इस खेनखाम के वंश का आरंभ अति प्राचीन यूनान और हुनान सभ्यता से हुआ। यह सभ्यता ईसा पूर्व चार हजार से लेकर तीन हजार वर्ष पुरानी है। कृषि पितृ-पुरुष च्याओफुरा आलंग के सातवें वंश में मटकों की उत्पत्ति हुई। ताई मंगोलीय मूल के मटक लोग आदिकाल में चीन के म्यूंगफी वर्तमान में संभवत: यूनान प्रदेश में निवास करते थे। समय बीतने के साथ-साथ मटक लोगों ने कालक्रम में जनसंख्या वृद्धि हो या अन्य कोई कारण से कृषि भूमि की खोज कर असम की ओर यात्रा की। उन्होंने चीन के यूनान प्रदेश से थाईलैंड, म्यांमार होते हुए प्राचीन असम में प्रवेश किया और वे तिमाम पहाड़ से सटे अंचल में प्राचीन पारंपरिक आदि धर्म का पालन करते हुए ग्रामीण कृषि आधारित एक समाज गठित कर तेरहवीं शताब्दी तक रहे। इन्हीं मटकों से चुकाफा तिपाम में मिले थे और 'फुखाओ' परिवार के रूप में पहचान पाए थे।

मटक लोगों का परंपरागत धर्म :

ताई मंगोलीय जनगोष्ठी के रूप में 'ताओ' मटक लोगों का परंपरागत धर्म है। वे प्रकृति जगत के 'गाँठियाल' देवता की पूजा करते हैं। जीव-जंतुओं के स्वामी विभिन्न देवता, पूर्वज-मितुक देवता, जगत मातृ मां, लक्ष्मी मां आदि विभिन्न देवी-देवताओं में आस्था रखते हैं। कालांतर में सत्रहवीं शताब्दी में मटकों ने काल संहिता के प्रवर्तक गोपालदेव के शिष्य अनिरुद्धदेव के प्रचारित 'मायामरा' वैष्णव धर्म ग्रहण किया। 'मायामरा' धर्म ग्रहण करने के बावजूद उन्होंने मिश्रित रूप में अपनी परंपरागत धार्मिक आस्था को जीवित रखा है।

मटकों के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन-दर्शन के बारे में नीचे उल्लेख किया गया है-

मटक राजा सर्वानंद सिंह :

सर्वानंद सिंह के पिता का नाम मरुत्नंदन और माता का पातय था। माता-पिता की एकमात्र संतान सर्वानंद के सिर से बाल्यकाल में ही माता का साया उठ गया। अति साधारण कमाने खाने वाले मरुत्नंदन मटक के बुरुक सुतिया शाखा से थे। पिता ने सर्वानंद को 'मेजेरा' नाम दिया था। मातृहीन मेजेरा को हर समय मरुत्नंदन को साथ लेकर घूमना पड़ता था और बड़े यतन से पाल-पोसकर बड़ा किया। मरुत्नंदन को एक बार मेजेरा को पीठ से बांधे तालाब खोदते देख राजा ने उन्हें काम से हटा दिया था। पिता के लालन-पालन में मेजेरा धीरे-धीरे युवा हो गया।

मेजेरा बहुत ही धर्मपरायण व्यक्ति था। उन्होंने मायामरा धर्मगुरु अष्टभुज गोसाईं की शरण ली थी। शरण लेते समय गोसाईं द्वारा शरणार्थी को एक-एक नाम देने की मायामरा वैष्णव धर्म की परंपरा थी। इसी परंपरा के तहत अष्टभुज गोसाईं ने मेजेरा को सर्वानंद नाम दिया। मोवामरीया विद्रोह के प्रमुख मटक नेताओं पर राजपरिवार का अत्याचार होता था। विद्रोही नेता नहीं मिलने पर आम जनता को बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया था। इस समय सर्वानंद ने मोवामरीया विद्रोह का नेतृत्व किया। सर्वानंद में प्रचुर सांगठनिक दक्षता थी। कारागार के अंदर-बाहर सभी मटक लोगों का सर्वानंद ने मनोबल बढ़ाया। सर्वानंद ने बेंमरा में राज्य की स्थापना कर स्वयं को उसका राजा घोषित किया। सर्वानंद सिंह ने राजा बनते ही सर्वप्रथम तिनसुकिया से लगभग दस किलोमीटर उत्तर की ओर रंगागढ़ में ईस्वी सदी 1788 में राजधानी बनाई और ईस्वी सदी 1791 में बेंमरा अर्थात मौजूदा तिनसुकिया में राजधानी स्थानांतरित की। राजा बनकर सर्वानंद ने ताई परंपरा के अनुसार स्वर्गदेव की उपाधि ग्रहण की। अपने नाम पर सोने और चांदी के मुद्रा गढ़वाए। इन मुद्राओं में एक रुपया, आधा रुपया और आधा महीना अर्थात एक रुपया का आठवां भाग शामिल हैं।

मटक राज्य की उन्नति के लिए सर्वानंद सिंह ने विभिन्न जन कल्याणकारी काम-काज आरंभ किए। गली-सड़क निर्माम कर यातायात-व्यवस्था विकसित की। रंगागढ़ा आलि, गोधा आलि, राजगढ़ आलि, हातीआलि आदि मोड़ बनवाए। प्रजा की सुविधा के लिए राजधानी के बाहर-अंदर कुल चौबीस पोखर खुदवाए। इनमें बेंमरा पोखरी, तिनिकोनिया पोखरी, देवी पोखरी, शेलुकीया पोखरी, बर पोखरी, चाउलधोवा पोखरी, गोधा पोखरी आदि मुख्य हैं। सर्वानंद की खुदवाई तिनिकोनिया पोखरी के नाम के अनुसार परवर्ती समय में बेंमरा नगर का तिनसुकिया पड़ा।

सर्वानंद सिंह के शासन काल में प्रजा शांति से रहती थी। राज्य खाद्य-फसलों से भरपूर था। प्रयोजनीय अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण राज्य में ही होता था। सर्वानंद सिंह बड़े दूरदर्शी और प्रखर बुद्धि वाले राजा थे। सर्वानंद सिंह प्रजा में बहुत लोकप्रिय थे। प्रजा हितैषी यह राजा बीमार होकर कुछ वर्षों तक बिस्तर पर पड़े रहने के बाद सन् 1805 में इनकी मृत्यु हो गई। सर्वानंद की मृत्यु के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र मातिबर बर सेनापति मटक राज्य के राजा बने।

शिक्षाविद पवन नेओग

18 अक्टूबर, 1933 को बरगुरि, तिनसुकिया में पवन नेओग का जन्म हुआ। पिता का नाम आसाम्बर नेओग और माता का गोलापी नेओग था। माता की मृत्यु के पश्चात मौसी मुहीला नेओग ने पांच वर्षों तक लालन-पालन किया। पांच वर्ष के होते ही पवन नेओग की शिक्षा तिनसुकिया आदर्श विद्यालय से आरंभ हुई। यहाँ तक की शिक्षा पूरी कर सेनाईराम उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में नामांकन कराया। इस विद्यालय से सन् 1953 में इन्होंने प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की।

खेल-कूद में रुचि रखने वाले पवन नेओग ने विशेषकर फुटबॉल और वालीबॉल खिलाड़ी के रूप में विद्यालय में अच्छी ख्याति अर्जित की थी। संगीत उन्हें प्रिय था और इसका अभ्यास भी करते थे। अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण पवन नेओग विद्यालय में शिक्षक-शिक्षिकाओं के प्रिय छात्र बन गए थे।

प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने जोरहाट के जेबी कॉलेज में कला संकाय में नामांकन कराया। पढ़ाई-लिखाई के साथ शरीर सौष्ठव प्रतियोगिता में भी नाम कमाया। Muscle Control विभाग में उनके प्रदर्शन को देखते हुए सन् 1955 में उन्हें Mr. J.B. की उपाधि से सम्मानित किया गया। N.C.C. में भर्ती होकर उन्होंने एक अच्छे नेता होने का भी परिचय दिया। सन् 1956 में उन्होंने द्वितीय श्रेणी में आई.ए. उत्तीर्ण की।

स्नातक की पढ़ाई उन्होंने गुवाहाटी के कॉटन कॉलेज में आरंभ की। कॉलेज में रहते अंतर्महाविद्यालय प्रतियोगिता में शरीर सौष्ठव प्रतिस्पर्द्धा का उन्हें Physique चुना गया और Mr. Cottonian की उपाधि प्रदान की गई। उसी वर्ष अर्थात सन् 1957 में Gymnasian प्रतियोगिता में उन्हें Mr. Guwahati University उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1958 में पिता के अस्वस्थ होने के कारण वे स्नातक की पढ़ाई पूरी नहीं कर पाए। सन् 1959 में सेनाईराम उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अस्थायी शिक्षक की नौकरी की। सन् 1960 में उन्होंने पुनः स्नातक की परीक्षा दी और डिग्री ली। अर्थ उपार्जन के उद्देश्य से सन् 1962 में डीएसपी बने, बावजूद वे अध्यापन के पेशे को नहीं छोड़ सके।

वे असीम मनोबल और साहस के अधिकारी थे। बच्चों से वे बड़ा स्नेह करते थे। सही परामर्श देकर वे अंचल के संकटापन्न लोगों की सहायता करते।

30 सितंबर, 1992 में वे नौकरी से सेवानिवृत्त हुए। तब तक उनका शरीर कुछ दुर्बल हो चुका था, इसलिए पूर्व की तुलना में आंशिक रूप से कार्य करते रहे। सन् 2001 में बरगुरि में आर्ट स्कूल की स्थापना में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने इस अंचल में एक Montessory नमूने के स्कूल खोलने का भी सपना देखा था। इसके लिए उन्होंने शिक्षाविदों के साथ विचार-विमर्श भी किया था, किंतु उनका यह सपना अधूरा ही रह गया। 11 अगस्त, 2002 को उन्होंने अंतिम सांस ली।

राजकुमार लंकेश्वर गोहाईं

राजकुमार लंकेश्वर गोहाईं तत्कालीन बेंमरा राज्य (1788) के संस्थापक राजा स्वर्गदेव सर्वानंद सिंह के सुयोग्य प्रपौत्र थे। राजा सर्वानंद सिंह के तीन पुत्र थे। माटिबर, कलिबर और कमलेश्वर। माटिबर के भोगबर, भगीरथ, दुखीरथ, सुक आदि दस पुत्र हुए। भगीरथ के तृतीय पुत्र बिशबर के कनिष्ठ तथा छठे पुत्र थे राजकुमार लंकेश्वर गोहाईं। लंकेश्वर गोहाईं के 01-05-1954 को तत्कालीन लखीमपुर जिला उपायुक्त को ऐतिहासिक बेंमरा राज्य के उद्धार के लिए दी गई याचिका के शपथनामा में तिनसुकिया

में सन् 1887 में जन्म होने का उल्लेख है। स्वर्गदेव सर्वानंद सिंह की मृत्यु के पश्चात राजपरिवार के साथ बेंमरा राज्य के अन्य पदाधिकारी राज्य के विभिन्न स्थानों में जा बसे। राजकुमार लंकेश्वर गोहाईं ने दस-बारह वर्ष की उम्र में परिवार के साथ चाबुआ चले आए। राजपरिवार के बसने के कारण परवर्ती समय में इस अंचल का नाम रजाबारी पड़ा। उस समय चूंकि जीवन खेती-बाड़ी पर निर्भर था, इसलिए राजकुमार के परिवार के कई सदस्य कृषि भूमि की खोज में वर्तमान के तिनसुकिया जिले के डिराक जा पहुंचे। यह परिवार सरु डिराक में स्थायी रूप से बस गया।

राजकुमार लंकेश्वर गोहाईं की औपचारिक शिक्षा नहीं हुई थी, बावजूद वे साहसी, उच्चाकांक्षी और चिंतनशील स्वभाव के धनी थे। उनमें समाज का नेतृत्व करने का गुण था। राजा के उपयुक्त प्रतिनिधि के रूप में देश स्वाधीन होने के पूर्व से ही बेंमरा राज्य के पुनरुद्धार और अलग राज्य की मान्यता बहाल रखने के लिए वे सरकार के समक्ष जोरदार मांग उठाते रहे। उन्होंने स्थानीय जाति-जनगोष्ठी के भूमि अधिकार, संपत्ति अधिकार, राजनैतिक अधिकार सुरक्षित रखने के लिए बेंमरा राज्य को अलग राज्य की मान्यता देने की मांग उठाई थी। वर्तमान के अरुणाचल प्रदेश के महादेवपुर में लकड़ी की एक मिल लगाकर वे लकड़ी की आपूर्ति करते थे। लकड़ी के साथ ही सोना और हाथी के व्यवसाय में भी ख्याति अर्जित की। राजवंश के प्रतिनिधि के रूप में अंग्रेज अधिकारियों के साथ अच्छे संबंध थे। हाथी पकड़ने और प्रशिक्षण देने में वे निपुण थे। उन्होंने ब्रह्मदेश के राजा के साथ दोस्ती कर हाथी पकड़ा था। मणिपुर के राजा को मित्रता की निशानी स्वरूप दो हाथी उपहार में दिए थे। उनका सिक्किम से भी अच्छा संबंध था। राजकुमार को बर्मीज, मणिपुरी, सिंग्फौ, खामती, मिसिंग, देउरी, नक्टे समेत कई भाषाओं का ज्ञान था। व्यवसाय के सिलसिले में वे अनेक स्थानों का भ्रमण करते थे, किंतु अपने मूल्य लक्ष्य से कभी भटके नहीं। उन्होंने इस वृहत अंचल की विभिन्न जाति, जनगोष्ठी की जनता और मुखिया तथा राजाओं के साथ अति मधुर संबंध बनाए रखा था। इसलिए उन्होंने राजकुमार के संग्राम में सहयोग किया। इनमें वर्तमान अरुणाचल प्रदेश के टंकेश्वर देउरी, खामती राजकुमार चौखामुन गोहाईं, बिसा राज्य के सिंग्फौ राजकुमार जखंग और गांव प्रधान पिन लंगलंगदेव उनके संग्रामी कार्यक्रमों में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहते और आर्थिक सहायता भी करते थे। उन्होंने स्वयं को अपने राज्य के साथ ही अरुणाचल, मणिपुर, सिक्किम, नागालैंड, मेघालय आदि अंचलों के समाजसेवियों के साथ जन कल्याणकारी तथा विकास के कार्यों में लगाए रखा।

जीवन के अंतिम दिनों में रोगग्रस्त होकर राजकुमार लंकेश्वर गोहाईं ने बिस्तर पकड़ लिया और 7 मार्च, 1973 को सरु डिराक के अपने आवास पर अंतिम सांस ली। उस दिन जिला प्रशासन ने स्थानीय अवकाश की घोषणा की थी।

प्रश्नावली :

1. मटक शब्द का अर्थ लिखिए।
2. मटक शब्द की उत्पत्ति के बारे में लिलिए।
3. मटक साधारणत: किस धर्म के लोग हैं?
4. मटक लोगों का मोवामरीया विद्रोह के साथ संबंध के बारे में लिखिए।
5. मटक राज्य की उन्नति के लिए सर्वानंद सिंह के किए जनकल्याणमूलक कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (क) शिक्षाविद पवन नेओग
   (ख) राजकुमार लंकेश्वर गोहाईं
   (ग) सर्वानंद सिंह

● ● ●

मोरान

मोरान असम की एक अति प्राचीन किरात मंगोलीय मूल की जाति है। ये लोग असम तथा उत्तर पूर्वांचल के आदिम अधिवासी हैं। विशाल हिमालय पर्वतमाला के दक्षिण पाददेश के असम तथा उत्तर-पूर्वांचल की इस उर्बर रम्यभूमि में मोरान लोग प्राचीन काल से ही रहते आए हैं। अज्ञात काल से ही इस भू-प्राकृतिक अंचल में निवास करते आ रहे मोरान लोगों को इस भू-खंड की प्राक-ऐतिहासिक मानव प्रजाति के एक निर्दिष्ट समूह के रूप में चिह्नित किया गया है। असम के सर्वकालिक श्रेष्ठ मानव विष्णु राभादेव ने अपनी 'असमीया कृष्टि' नामक पुस्तक में इस तरह उल्लेख किया है-''इनके दिनों में ही असम में तेजगति से ताम्र युग, ब्रांज युग और लौह युग का आरंभ हुआ था।'' डॉ. स्वर्णलता बरुवा के अनुसार ''ईसा के जन्म से कई सदी पूर्व से ही मोरान लोग ब्रह्मपुत्र उपत्यका में रहते आ रहे हैं।'' विद्वान इस बात पर एकमत हैं कि मोरान असम के आदिम अधिवासी हैं। एक समय मोरान लोग ब्रह्मपुत्र उपत्यका के साथ ही हिमालय के निकटतम निचले अंचलों में फैले हुए थे, इस बारे में कई ऐतिहासिक तथ्य मिलते हैं। युग परिवर्तन की प्रवाहमय धारा में अन्य आदिम समुदायों की तरह ही मोरान लोग भी कुछ परिवर्तित अवस्था में वर्तमान में संख्याधिक रूप से तिनसुकिया जिला, डिब्रूगढ़ जिला और अरुणाचल के नामसाई और चांग्लांग जिले में बस्ती बनाकर रहने के साथ ही शिवसागर, चराईदेव, जोरहाट, धेमाजी आदि जिलों में भी इनकी बड़ी आबादी हैं। इसके अलावा गोलाघाट, नगांव, शोणितपुर, लखीमपुर आदि जिलों में भी मोरान की कम आबादी दिखाई देती है। मोरान के अधिकतर लोग संरक्षित वनांचल के आस-पास के दुर्गम अंचलों में गांव बनाकर रहते हैं। अति कम संख्यक लोग ही क्षुद्र क्षुद्र विकासशील केंद्र स्थलों के उपकुल में निवास करते हैं।

मोरानों का नृ-गोष्ठीगत परिचय

मोरान वृहत किरात मंगोलीय परिवार की एक मुख्य जनजाति समूह है। सूर्य कुमार भूयांदेव ने अपने 'कछारी बुरंजी' (कछारी इतिहास) में बारह घर कछारियों का उल्लेख किया है। सोनोवाल कछारियों के

एक लेखक रजनीकांत हाजरिका ने 'मंगोल कछारीर तप्त इतिहास' नामक पुस्तक में भी बारह घर कछारियों का उल्लेख किया है। इसके अलावा ऊपरी के कछारियों की लोकोक्ति के अनुसार भी कछारियों के बारह वंश थे। ये वंश हैं-दमसय (डिमासा), इनटुहजय (होजाई), बिहदय (बोड़ो), जुहल-लुइवा (लालुंग या वर्तमान में तिवा), बादु सोनलय (सोनोवाल), इनटु मिनखँय (मोरान), दिउनय (देउरी), इनटु-मेचय (मेच), कुचुबयँ (कोच), इनटु-गारोय (गारो), राभा किराटय (राभा), बादु हजय (हाजोंग)। ध्यान देने वाली बात है कि परवर्ती एक काल से ये किराट कछारी सामूहिक रूप से वृहत बडो या बोड़ो जाति के नाम से भी जाने गए और इसलिए आजकल मोरान के साथ ही दूसरों को भी एक साथ बोड़ोमूल का माना जाता है। हालांकि बोड़ोमूल के कई और धड़े हैं, जैसे-त्रिपुरा, नेपाल के मेचे इत्यादि।

अतीत में मोरानों में 'बड़ोरुची' नामक एक बोड़ोमूल की भाषा प्रचलित थी। एडवार्ड गेइट साहब ने उल्लेख किया है कि यह भाषा अठाहरवीं शताब्दी के अंतिम भाग तक चलती रही। अतीत के मोरान भाषा के कई शब्द हैं दि (पानी), सिम (नमक), माइ (धान), माइरुम (चावल), मियाम (भात), महन (मांस), चान (सूर्य), दान (चंद्र), हाटाराइ (तारा), मकुहांग (वर्षा), चेनफंग (पेड़), हिंका (कपड़ा), खेरो (सिर), हान (चाय), हाटाइ (दाँत), हापातोला (पैर), हिवा (पुरुष), हिसि (महिला), मादाइ (सम्मानीय व्यक्ति), तादाइ (युवा लड़का), चेखला (लड़की)। अतीत की मोरान भाषा लगभग विलुप्त है, बावजूद उल्लेखित शब्दों के साथ और कई उक्त भाषा के शब्द मोरान के ग्रामीण समाज में आज भी प्रचलन में हैं। शब्दों का बोड़ो, डिमासा, देउरी आदि भाषाओं से मेल है।

चाउलुंग चुकाफा के आने के समय मोरानों का एक स्वाधीन राज्य था। राज्य की सीमा उत्तर में बुढ़ीदिहिंग, दक्षिण में दिसांग, पूर्व में सफ्राई और पश्चिम में ब्रह्मपुत्र तक फैली थी। उस समय मोरानों के राजा का नाम था बडोसा या बदौसा। बदौसा शब्द का अर्थ है बोड़ो की संतान। यही बदौसा मोरानों के ऐतिहासिक युग के अंतिम राजा थे। बदौसा से पूर्व आठ राजाओं के विभिन्न समय में भिन्न-भिन्न अंचलों में शासन करने के संकेत मिलते हैं।

सांस्कृतिक रूप से मोरान लोग अति समृद्ध हैं। बिहू मोरानों का प्रधान उत्सव है। अतीत से ही मोरान लोग सदिया के केंसाइखाती मठ के साथ ही तिनसुकिया जिले के माकुम के यज्ञोखोवा, देओशाल, चराईदेव आदि में देव-देवी की पूजा करते थे। बोहाग के प्रथम मंगलवार को देव-देवी की पूजा-अर्चना से बिहू का आह्वान कर मंगलवार को 'उरुका', बुधवार को 'गरु बिहू' और बृहस्पतिवार को 'मानुह बिहू' के रूप में सात दिन, सात रात बिहू मनाते थे और इसी तरह अन्य असमिया लोगों से भिन्न दिन-बार में आज भी ये लोग बिहू का पालन करते हैं। वर्तमान में देउरी लोगों के बिहू की तरह मोरान लोगों के बिहू को 'मोरान बिहू'

के नाम से जाना जाता है। पेड़ के नीचे बिहू, रात का बिहू, धर्म हुँसरी, बरमगा आदि ने मोरान बिहू को समृद्ध किया है। दूसरी ओर मोरान लोगों के ढोल की आकृति, वादन का लय-ताल, बिहू नृत्य की भंगिमा, गीत के ताल-लय आदि की अपनी विशिष्टता विद्यमान है। मोरान लोगों की अन्य सांस्कृतिक विरासतों में कुलाबुढ़ी नृत्य, जँजा नृत्य, रणुवा नृत्य-गीत, ध्रुतंग, गरखीया गीत, झूम तली का गीत, हाती शिकोवा गीत, विभिन्न खेरी इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

मोरानों में कई खेल-वंश हैं। ये खेल-वंश वृत्तिसूचक, स्थानवाचक, गुणवाचक, जातिवाचक हैं, जैसे- तेल पेरने वाला तेली, नाव निर्माण करने वाले नाओशलीया, चिकरि, गनता, काँड़ी गञा, दहोटीया, डिमौगुरीया, दाउचलीया, पेटुधुवा, हातीमूरीया, रंगयोगनीया, रुपाई गनता, माजुली गञा, हालधिबरीया, सौकाधरा, खाटोवाल इत्यादि इत्यादि।

मोरानों की समाज संरचना या समाज प्रबंधन

मोरानों के प्रत्येक गांव में जनता द्वारा निर्वाचित एक गांवबुढ़ा होता है साथ ही जरूरत के अनुसार दो या उससे अधिक बरबुढ़ा रहते हैं। इनके अधीन ही धार्मिक, सामाजिक काम-काज, न्याय की प्रक्रिया संचालित होते हैं। उसी तरह युवाओं के बीच एक दलपति और एक उप-दलपति होता है। ये समाज प्रबंधन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं।

मोरानों की जातीय खेती में सुमथिरा या संतरा प्रमुख हैं। ठीक उसी तरह जातीय पशु हाथी और जातीय पेड़ होलुंग है।

मोरानों के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षिप्त में जिक्र किया गया है-

समन्वय के जनक किरात शौर्य बदौसा

असम के प्रमुख आदिम अधिवासी किरात मंगोलीय परिवार के अंतर्गत मोरानों के ऐतिहासिक युग के अंतिम राजा बदौसा थे। 1228 ईस्वी सदी में चाउलुंग चुकाफा के असम में आगमन के समय बदौसा के अधीन उत्तर में बुढ़ीदिहिंग, दक्षिण में दिसांग, पूर्व में सफ्राई और पश्चिम में ब्रह्मपुत्र महानद के बीच का भूखंड एक समृद्ध मोरान राज्य था। वर्तमान काल के शिवसागर और डिब्रूगढ़ जिलों के कुछ हिस्से मोरान राज्य में थे। मोरान राज्य के पास ही बराही राज्य था और अन्य अंचलों में सुतिया, कछारी, भूयां राज्यों के अलावा पहाड़-मैदान के सभी आदिम समुदायों का अपना-अपना भूखंड था। उन प्राचीन राज्यों के बीच, जाति-जनसमुदायों के बीच किसी प्रकार के द्वेष-विद्वेष, द्वंद्व-संघर्ष, युद्ध-विग्रह आदि के तथ्य इतिहास में नहीं मिलते हैं। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि समग्र भू-भाग में शांति-प्रेम और समन्वय विराजमान था।

कलागुरु विष्णुप्रसाद राभा ने अपनी 'असमीया कृष्टि' शीर्षक पुस्तक में उस काल के मोरान लोगों को प्रबल प्रतापी कहा है। इस वरेण्य शोधकर्ता ने बदौसा के शक्तिशाली प्रभाव की बात भी कही है। उस समय के सुदूर और दुर्गम पहाड़-पर्वतों तक मोरानों के आधिपत्य होने का संकेत व विशाल विस्तृत अंचल में शांति-संप्रीति बनाए रखने में बदौसा की शक्तिशाली भूमिका को ही दर्शाता है।

इसलिए चाउलुंग चुकाफा राज्य स्थापित करने की अपनी परिकल्पना को साकार रूप देने की मंशा से सर्वप्रथम मोरान लोगों के पास ही गए। अतिथि परायण महानुभव बदौसा ने चुकाफा सहित उनके साथ आए ताई लोगों का स्वागत किया। राजा बदौसा की अनुमति और आतिथ्य में चुकाफा और उनके अनुगामी यहां के स्थानीय मोरान, बराही, सुतिया, कछारी समाज के साथ मेल-मिलाप से रहने लगे और सभी को अपनाते हुए स्थानीय समाज के अभिन्न अंग हो गए। अपने साथ औरत लेकर नहीं आने वाले ताई लोग यहां के स्थानीय युवतियों से विवाह कर समाज में पूरी तरह रच-बस गए।

पुत्रहीन बदौसा सुलक्षणयुक्त, सुदर्शन युवक चुकाफा से अपनी पुत्री का विवाह कर ससुर-दामाद के संबंध में भी बंध गए थे। इसलिए बदौसा ने अपनी वृद्धावस्था में दामाद चुकाफा के हाथों में मोरान राज्य का शासन भार सौंप दिया और एक समझौते के अनुसार बराही राज्य भी शामिल हो गया। बदौसा और बराही राजा थाकुमथार के परामर्श से चुकाफा ने मोरान-बराही के पवित्र पूजा स्थल चराईदेव में राजधानी स्थापित कर मोरान राज्य का आहोम नामकरण करते हुए एक सम्मिलित राज्य की नींव रखी। इस तरह चुकाफा ने बड़ा असम और वृहत्तर असमिया जाति सत्ता का बीज बोया। किंतु चुकाफा के ऐसे महान कार्य के पीछे बदौसा के विराट अवदान की किसी काल में स्वीकृति नहीं मिली। अतः चाउलुंग चुकाफा को असमिया जाति के पिता की आख्या देने के समान ही बदौसा को असमिया जाति के 'पितामह' की आख्या दे पाएं तो उनके द्वारा प्रतिष्ठित कालजयी आदर्श की प्रासंगिकता से असम तथा उत्तर-पूर्वांचल के स्वदेशीय एकता को युगों तक कायम रखने का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

वीरांगना राधा-रुकुणी

विश्व इतिहास के जनविद्रोहों में मध्य युग के असम में हुआ 'मोवामरीया' जनविद्रोह भी प्रमुख है। यह जनविद्रोह नारी शक्ति के योगदान के एक आश्चर्यजनक अध्याय के रूप में चिह्नित है।

छह सौ वर्षों के आहोम राज के अंतिम भाग में तानाशाही हो चुके राजतंत्र के घोर अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध सभी जाति-उपजाति के साधारण किसान प्रजा के सर्वात्मक विद्रोह का नेतृत्व मोरान लोगों ने किया। वीर राघव मोरान और नाहरखोवा मोरान (सइकिया) की अग्रणी भूमिका के समान ही साधारण प्रजा को संगठित करने में नाहर की दो पत्नियों भातुकी, भाबुली उर्फ राधा-रुकुणी ने महत्वपूर्ण भागीदारी की।

मोवामरीया विद्रोह का सूत्रपात इन दोनों के रहते हुआ। राजा लक्षीसिंह ने 'बरधाक' बनाने हेतु पेड़ काटने के लिए जंगल में आदमी भेजे। राधा-रुकुणी ने गांव के लोगों को इकट्ठा किया और राजा के आदमियों को यह कहकर लौटा दिया कि ''प्राचीनकाल से यह स्थानीय लोगों का जंगल है, युगों की प्राकृतिक संपदा है, इस पर राजा का अधिकार नहीं है।''

ध्यान देने योग्य है कि इन दो वीरांगनाओं ने उस काल में एक शक्तिशाली नारी योद्धा वाहिनी का गठन किया था, जो पृथ्वी पर कहीं उत्पन्न ही नहीं हुआ था। पहली बार जब विद्रोही वाहिनी और राजा के सैनिकों के बीच आमने-सामने की लड़ाई हुई थी, तब राधा और रुकुणी के प्रबल पराक्रम के आगे राजकीय सेना टिक नहीं पाई और पराजित हो गई। राधा-रुकुणी की वीरता के संदर्भ में पद्मनाथ गोहाईंबरुवा ने अपने 'असम बुरंजी' (असम इतिहास) में इस तरह उल्लेख किया है-''उस रण में राधा और रुकुणी पुरुष वेशभूषा में धनुष-तीर लेकर लड़ी थी। ये दोनों महिलाएं बड़ी चतुर थीं और गुप्त रण कौशल की ज्ञाता होने की वजह से उनके शरीर को तीर या पत्थर की गोलियां छू भी नहीं पाई थीं।'' इन दो वीरांगनाओं की असीम वीरता की ऐसी सत्य गाथा इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं। उल्लेखनीय है कि गोहाईंबरुवादेव के कहे अनुसार यह बात राधा-रुकुणी की अविस्मरणीय समर दक्षता को प्रतिबिंबित करती है। विद्रोही वाहिनी के रंगपुर पर कब्जा कर रमाकांत को राजा बनाते समय इन दोनों ने परामर्शदात्री की भूमिका का निर्वाह किया।

परवर्ती समय में राजतंत्र के षड्यंत्र की बलि चढ़ इन दोनों की मृत्यु हो गई, बावजूद पक्षपातपूर्ण राजशाही इतिहास की कृपणता भी उनकी अजेय कीर्ति को ढंककर नहीं रख सकी। इस तरह पीड़ित जनता की मुक्ति की प्रयासी ये दोनों महान नारियां इतिहास परिक्रमा में युगों-युग तक अमर रहेंगी और आज के विशाल नारी समाज के साहस और प्रेरणा की स्रोत बनकर रहेंगी।

झपरा जगधा

झ परा जगधा दसवीं शताब्दी की मोरान जनजाति के एक वीर पुरुष थे। उनके पिता का नाम दारबि था। हालांकि तेरहवीं शताब्दी में असम आकर चाउलुंग चुकाफा ने मोरान, बराही, कछारी आदि जाति को मिलाकर वृहत्तर आहोम राज्य की नींव रख दी थी, बावजूद पंद्रहवीं शताब्दी के बाद भी मोरान की तरह कई जनजातियां घने जंगलों में वनवासी के रूप में जीवन निर्वाह कर रही थीं। वे लोग दलपति या मुखिया द्वारा संचालित समाज का गठन कर निवास करते थे। वैसे एक दलपति थे खाओखाइ। प्राचीन सौमारखंड के एक विस्तृत अंचल ने उनके नेतृत्व में एक उल्लेखनीय भूमिका ली थी। इसलिए उन्हें आहोम राज्य प्रशासन को कर-चुंगी नहीं देना पड़ता था। खाओखाइ और दारबि के छह पुत्र थे-खादुन, किसिम, फेफेला, हुइलाओ,

जगधा और सिकसौ। जगधा पांचवां पुत्र थे। वे सबसे अधिक सुडौल, बलशाली और साहसी थे। वे बचपन में ही डिब्रू नदी पार कर जंगल से हाथी पकड़ लाते थे। अन्य लड़कों की अपेक्षा जगधा साहस, बल-पराक्रम और सोच में अधिक आगे थे। साथियों के साथ खेल-कूद, चिड़िया का शिकार, शिकार भोज आदि में जगधा अपने भाइयों से एक कदम आगे रहते, इसलिए उन्हें सभी मुख्य स्थान देते थे। युवा होने पर वे बिहू मंडली, युवा-युवतियों के दलपति बन गए। उस समय वे सदिया के केंसाइखाती से बुधवार को गरु बिहु आयोजित कर बिहू आह्वान कर लाते थे।

उस समय अन्य जनजातियों के साथ अक्सर लड़ाई-संघर्ष होता रहता था। खाओखाइ के पुत्र जगधा के नेतृत्व में एक विशाल योद्धा सैनिक दल का गठन किया गया था। जगधा के शरीर का गठन दूसरों की अपेक्षा सुडौल था। वे एक ही वार में पेड़ को काटकर गिरा सकते थे। सभी ने जगधा को ही सेनापति का दायित्व सौंपा। अनुभवी लोगों से रण-कौशल सीखकर जगधा ने सैनिकों को प्रशिक्षित कर युद्ध में निपुण कर दिया था। विभिन्न अवसरों पर उनकी सैन्य वाहिनी ने विभिन्न जाति-उपजातियों को महापराक्रम से बीसियों बार परास्त किया। दूसरे मोरान प्रधान अंचल में उपद्रव करने वाले पहाड़ी जाति-जनजाति को खदेड़ने के लिए जगधा के सैन्य दल का आह्वान किया जाता। जगधा के बहुत बड़े सिर तथा घुंघराले केश की वजह से उन्हें लोग झपरा भी कहते। बाद में सभी उन्हें झपरा जगधा बुलाने लगे।

एक बार खामति लोगों ने मोरान गांव पर एक ओर से आक्रमण कर दिया। सेनापति झपरा जगधा ने शत्रु को रोकने के लिए देवचांग में सात दिनों तक केंसाइखाती की पूजा-अर्चना की। वे तलवार (मोरान भाषा में हानसाइ) हाथ में लिए नाचते हुए युद्ध में गए। उस युद्ध में सेनापित झपरा जगधा ने शत्रु को ध्वस्त करते हुए पहाड़ तक खदेड़ दिया था।

इसी तरह अनेक युद्धों में झपरा जगधा अपनी जाति की रक्षा कर जातीय वीर के रूप में प्रतिष्ठित हुए। आज भी मोरान समाज में उनका नाम प्रचलित है।

मोहन शइकीया

मोरान लोगों के आधुनिक काल के पुरोधा व्यक्तियों में स्वर्गीय मोहन सइकिया प्रमुख हैं। अतीत में असम की एक शक्तिशाली जनजाति, जो विभिन्न ऐतिहासिक विडंबनाओं के गाल में समाकर वर्तमान काल में अति जर्जरित और हर दिशा में पिछड़े मोरान समाज के मुट्ठीभर शिक्षित लोगों में से एक मोहन सइकिया हैं।

तिनसुकिया जिले के तालाप के एक अति अंदरूनी अंचल के 22 नंबर तामूलि गांव में 22 नवंबर, 1930 को मोहन सइकिया का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम ज्ञानेंद्र सइकिया और माता का शुकानि

सइकिया था। प्राथमिक शिक्षा गांव में ही पूरी कर सन् 1950 में डाङरी उच्च माध्यमिक विद्यालय से प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण कर सन् 1955 में डिब्रूगढ़ के कनोई वाणिज्य महाविद्यालय से बी.कॉम की डिग्री ली और सर्वप्रथम डिब्रूगढ़ जिले के राजस्व चक्र अधिकारी कार्यालय में किरानी के पद पर नियुक्त हुए। उनकी मेधा और दक्षता का प्रचार पूरे ऊपरी असम में होता देख महाकाली चाय बागान प्रबंधन ने उन्हें मैनेजर पद का प्रस्ताव दिया। उन्हें ओएनजीसी की आकर्षक नौकरी भी मिली थी, किंतु सारा मोह त्यागकर वे पिछड़े अंचल के समाज में शिक्षा का अलख जगाने की मंशा से काकोपथार उच्च अंग्रेजी विद्यालय में शिक्षक बने और उसके पश्चात उन्होंने टंगना उच्च अंग्रेजी विद्यालय के प्रधान शिक्षक का दायित्व ग्रहण किया।

सामाजिक जीवन में उन्होंने मोरान जनजाति समाज को अनेक अवदान दिए। कुछ शिक्षित लोगों को साथ लेकर उन्होंने सर्वप्रथम सन् 1965 में 'असम मोरान सभा' का गठन किया। मोरान सभा के माध्यम से ही उन्होंने मोरान समाज को खोखला कर चुके अफीम से मुक्ति दिलाने का अभियान आरंभ कर गांव-गली-गली में जागरूकता सभा-समिति आयोजित कर इस विषाक्त मादक द्रव्य को निर्मूल करने की ईमानदार प्रचेष्टा चलाई। इस महान कार्य में उन्हें अपराधियों के विरोध, आलोचना और अज्ञानी समाज के कई लोगों की समालोचनाओं का सामना करना पड़ा। उनके दिनों में ही मोरानों का अनुसूचीकरण, मोरानों को बिना प्रीमियम जमीन का पट्टा देने, मोरान बेल्ट एंड ब्लॉक का गठन आदि समेत कई मांगों से संबंधित ज्ञापन सरकार को सौंपा गया था। असम मोरान सभा के संस्थापक सचिव के रूप में उन्होंने कई कार्यकालों का निर्वाह किया। उनके द्वारा तैयार सरकार को सौंपी गई 'Moran Develepment Plan' नामक योजना मोरान के अग्रणी समाज में आज भी चर्चित विषय है। वे जातीय इतिहास, संस्कृति पर कई उच्च स्तरीय निबंध लिख गए हैं और उनकी प्रचेष्टा से ही डिगबोई के समीप बाढ़ प्रभावित लोगों के लिए तामूलि वनगांव बना।

अनूठी विशिष्टतापूर्ण 'मोरान बिहू' को एक दकियानूस समाज से बाहर निकाल कर विस्तृत समाज से परिचय उन्होंने ही कराया। उन्होंने ही सर्वप्रथम सन् 1951 में काकोपथार से बिहू मंडली लेकर असम के विभिन्न मंचों पर मोरान बिहू को प्रस्तुत कर सम्मान दिलाया। इसके लिए उन्हें कइयों की आलोचना भी झेलनी पड़ी। उनके रचे मोरान बिहू गीत का कैसेट 'होतौ-पातौ' मोरान संस्कृति की एक अनुपम पहचान है।

असम के विदेशी भगाओ आंदोलन में भी उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई और कई यातनाएं भी झेलीं। परवर्ती समय में वे असम गण परिषद के एक उल्लेखनीय नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। बिना समझौता किए अपने संग्रामी जीवन में अनेक त्याग कर इन्होंने साधारण जीवन यापन किया। यह महान व्यक्ति मोरान समाज

में चिरकाल तक स्मरणीय रहेंगे।

राघव मोरान

असम में हुए मोवामरीया विद्रोह के प्रधान नेता का नाम था वीर राघव मोरान।

छह सौ वर्षों के आहोम राज के अंतिम भाग में तानाशाही हो चुके राजतंत्र के घोर अन्याय, अत्याचार शोषण के चंगुल से राज्य की सभी जाति-उपजातियों के कमाने-खाने वाली साधारण प्रजा को मुक्त कराने के लिए इस वीर के नेतृत्व में ही विश्व के सर्वप्रथण इस सर्वात्मक विद्रोह का सूत्रपात हुआ था।

राजशाही इतिहास के पन्ने-पन्ने में इस विद्रोह को मोरानों को पाशविक, राघव मोरान को निष्ठुर, अत्याचारी, नारी अपहर्ता बताने के विपरीत आधुनिक काल के प्रगतिवादी विद्वान पंडित अमलेंदु गुह, डा. हीरेन गोहाईं, डा. स्वर्णलता बरुवा, डा. ध्रुवज्योति बोरा, डा. देवब्रत शर्मा सहित और कई मनीषियों ने राघव के मुंह से प्रस्फुटित 'प्रजा ही राजा' महामंत्र से शुरू इस विद्रोह को शोषक और शोषित के बीच हुए गृहयुद्ध की आख्या दी है। उल्लेखनीय है कि इतिहास प्रसिद्ध फ्रांसीसी क्रांति के बीस वर्ष पूर्व यह विद्रोह हुआ था।

यह तथ्य भी आज स्पष्ट है कि साधारण कृषक संतान राघव मोरान के युद्ध कला में अप्रशिक्षित साधारण प्रजा, बांस की लाठी, धनुष-तीर आदि सामान्य अस्त्रों से विशाल राजकीय वाहिनी को परास्त कर राजतंत्र को उखाड़ फेंकने जैसा उदाहरण और विस्यमकारी घटना विश्व इतिहास में बिरल है।

विद्रोह के सारे परिप्रेक्ष्य के अध्ययन-विश्लेषण से राघव मोरान का महान चरित्र सामने उभरकर आता है।

राघव के आह्वान पर जाति-जनजाति निर्विशेष हर प्रजा के जागृत होकर दल-बल के साथ निकल आने की घटना उनके जननेता होने का संकेत है। राज्य के चारों ओर राजतंत्र का घेराव कर विद्रोही वाहिनी को टुकड़े-टुकड़े में तैयार कर, युद्ध में गुरिल्ला कौशल का प्रयोग कर राघव मोरान ने प्रचुर सांगठनिक दक्षता और युद्ध कुशलता दिखाई। साथ ही राजा लक्षी सिंह को बंदी बनाकर उन्हें राजकीय सम्मान देना, असली जन शत्रुओं को मृत्युदंड देना, छोटे अपराध के दोषियों को सामान्य दंड देकर मुक्त करना, समर्पण कर चुके राजकीय सैनिकों को छोड़ देना, खुली जगह पर जनता के सामने अपराधियों का विचार, जनता के परामर्श पर निर्णय लेने आदि तथ्य इस महान पुरुष के मानवीय मूल्य, उदार नैतिक गणतांत्रिक चरित्र को दर्शाता है। अत: एक भेदभावरहित समाज गढ़ने के पथ-प्रदर्शक के रूप में यह महामानव युगों तक प्रासंगिक बना रहेगा। साथ ही असम के समाज जीवन की गतिशील धारा को मसृण रूप देने के लिए ऐक्यबद्ध, शक्तिशाली समाज कायम रखने में राघव मोरान असमिया समाज के लिए आदर्श बने रहेंगे।

प्रश्नावली :

1. तीन वाक्यों में मोरानों के नृ-गोष्ठीगत परिचय लिखिए।
2. असम और अरुणाचल के कौन-कौन से जिले में मोरानों की आबादी अधिक है?
3. इतिहास में उल्लेखित बारह घर कछारियों के नाम लिखिए।
4. मोरान भाषा के 10 शब्द लिखिए।
5. मोरानों के ऐतिहासिक युग के राज्य की चारों सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
6. मोरानों के ऐतिहासिक युग के अंतिम राजा का नाम क्या था?
7. मोरान लोग बोहाग बिहू कब और कैसे मनाते हैं?
8. मोरानों के दो पेशागत, दो गुणवाचक और दो स्थानवाचक खेलों के नाम लिखिए।
9. मोरानों की जातीय खेती क्या है?
10. मोरानों के युवाओं के दलपति का दायित्व कैसा होता है?
11. कहां-कहां मोरानों के देव-देवियों के पूजा स्थल थे?
12. टिप्पणी लिखिए।
    (क) समन्वय के जनक किरात शौर्य बदौसा
    (ख) वीरांगना राधा-रुकुणी
    (ग) झपरा जगधा
    (घ) मोहन सइकिया
    (ङ) राघव मोरान

● ● ●

मिसिंग

मिसिंग असम की दूसरी सबसे बड़ी जनजाति है। मिसिंग लोगों को 'मिरि' नाम से भी जाना जाता है। भारतीय संविधान में मिसिंग को 'मिरि' नाम से असम की मैदानी जनजाति का दर्जा दिया गया है। मिसिंग लोग 'मिरि' शब्द का प्रयोग स्वयं नहीं करते हैं। 'मिरि' शब्द का प्रयोग मिसिंग समाज के एक वर्ग विशेष मिबू या पुरोहित के लिए किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि पंद्रहवीं शताब्दी में नव-वैष्णव धर्म के प्रवर्तक श्रीमंत शंकरदेव ने 'मिरि' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया था, जबकि इतिहास की मानें तो 'मिरि' शब्द का प्रयोग शंकरदेव से पूर्व भी होता था। परवर्ती काल में अंग्रेजों ने भी इसी शब्द को लिखने में प्रयुक्त किया। विस्तृत अर्थ में वे 'तानि' के रूप में अपना परिचय देते हैं। 'तानि' शब्द का अर्थ है-आदमी या मानव।

असम के उत्तर के पहाड़ी क्षेत्र को मिसिंग लोगों का पूर्व निवास स्थान माना जाता है। तब के ऊंचे अरुणाचल के 'आबर पहाड़' से जीविका की तलाश में मिसिंग लोग धीरे-धीरे असम के समतल में उतर आए। मिसिंग लोगों के आगमन के इस समय को लेकर विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं। किसी-किसी इतिहासकार के अनुसार आहोम राजवंश की स्थापना अर्थात 12वीं शताब्दी के पूर्व से ही मिसिंग लोग सभ्यता के संस्पर्श में आकर असम के समतल अंचलों में निवास कर रहे थे।

मिसिंग समाज में विवाह के कई विधि-विधान प्रचलित हैं। वर पक्ष से वंश या गोत्र की गणना की जाती है। युवक-युवतियों को मनपसंद जीवन साथी खोजने की स्वतंत्रता है। दोनों पक्षों की सहमति के पश्चात ही विवाह की सारी बातें तय होती हैं। किंतु एक ही कुल में विवाह नहीं होता है। कुल खोजने में ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं किया जाता है। सिर्फ कुटुंब का संबंध ही रहता है।

मिसिंग लोग कृषि प्रधान समाज के प्रतिनिधि हैं। कृषि ही उनके जीवन का आधार है। वर्ष में मुख्यत: धान की दो किस्मों आहु और शाली की खेती की जाती है। धान के अलावा मिसिंग लोग अन्य फसल जैसे- दलहन, सरसों, विविध प्रकार के आलू, कच्चू, अदरक, मिर्च आदि की खेती भी करते हैं।

मिसिंग गांवों में शांति-भाईचारा बनाए रखने के लिए गांव-गांव में एक गांवबुढ़ा (मुखिया) रहता है। किसी व्यक्ति के अपराध करने पर 'कौबांग' या जनता दरबार लगाकर गांवबुढ़ा की उपस्थिति में उसके अपराध की सुनवाई की जाती है। क्षमा के अयोग्य दोषी को बहिष्कृत करने या समाज से निकालने का विधान प्रचलित है। ऐसे कौबांग या सुनवाई का आयोजन मुरंगघर अथवा गांवबुढ़ा के आंगन में होता है।

मिसिंग लोगों का सांस्कृतिक परिचय उनके परिधान-पहनावे से मिलता है। पुरुष परंपरागत मिबु गालुग,

गनर, उगन टंगाली, दुमौ आदि पहनते हैं। उसी तरह महिलाएं भी परंपरागत रिहा-मेखेला, रिबि-गासेंग परिधानों के साथ कई परंपरागत आभूषण पहनती हैं। मिसिंग समाज में यह धारणा प्रचलित है कि मिसिंग महिलाएं हथकरघे में सपनों का स्वर्ग रच सकती हैं। वन के पक्षी, हिरण, मछली आदि की रंग-बिरंगी छवि मिसिंग महिला बुनकरों के निपुण हाथों में बंदी हो जाती है। हथकरघे से बुने कपड़ों के अलावा विख्यात 'गादु' या 'मिरिजिम' मिसिंग लोगों का जातीय संबल है।

मिसिंग लोग महापुरुषीया, शैव, शाक्त, तांत्रिक और विशेषकर केवलीया या रात्रि सेवा धर्म पंथ को मानते हैं, बावजूद स्वधर्म के रूप में 'दर्इं पलो' उनका मूल धर्म है। लोक-विश्वास में इनकी बड़ी आस्था है। ये मुर्गे को संकट का रक्षा कवच मानते हैं। धार्मिक उत्सव में 'दबुर' की पूजा का बड़ा महत्व है। विभिन्न देवताओं को संतुष्ट करने के लिए 'दबुर' पूजा की जाती है। लोक विश्वास है कि घर के शुभ-अशुभ और उन्नति में देवताओं की कोप दृष्टि रहती है। मिसिंग लोगों का विश्वास है कि 'दर्इं पलो' अथार्त सूर्य-चंद्र जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन का संचालन करते हैं।

मिसिंग लोग अत्यंत उत्सव-प्रेमी होते हैं। ये जातीय उत्सव आलि-आये-लृगांग के अलावा माघ बिहू, बोहाग बिहू और काति बिहू मनाते हैं। मिसिंग लोग अतीत से ही आलि-आये-लृगांग उत्सव मनाते आ रहे हैं। जातीय उत्सव आलि-आये-लृगांग तीन पदों से मिलकर बना है। कृषि आधारित इस उत्सव का तानि बंगह के चलुंग, मपिन उत्सव से समानता है। आलि, आ:ये और लृगांग। आलि का अर्थ है, जमीन के नीचे होने वाला बीज, आ:ये का अर्थ है, पेड़-पौधों पर होने वाला फल या बीज और लृगांग का अर्थ है-रोपण कार्य का शुभारंभ। अर्थात बीज रोपने के कार्य का शुभारंभ। इसलिए फाल्गुन महीने के प्रथम बुधवार को इस उत्सव का आरंभ होता आया है। इस दिन का हिसाब लगाकर बीज रोपने का शुभारंभ होता है। पुरांग आपिन या टोपोला भात के साथ दिनसान अर्थात सूखी मछली, मांस और आपोंग इस उत्सव का मुख्य भोजन है। आपोंग मिसिंग लोगों का चिर-परिचित पेय है। आलि-आये-लृगांग के दिन गृहस्थ आपोंग और लृगांग सर्वप्रथम देवता और बड़े-बुजुर्गों को अर्पित करता है। गुम्राग् के नृत्य और गीत मिसिंग लोगों के गौरव और शांतिप्रियता का परिचय देते हैं। मिसिंग लोग माघ बिहू, बोहाग बिहू और काति बिहू का परंपरागत रूप से पालन करते हैं।

लौकिक साहित्य की दृष्टि से मिसिंग भाषा अत्यंत समृद्ध है। वर्षों से अलिखित रूप में चले आ रहे गीत-बोलों को वर्तमान में लिखित रूप देने की चेष्टा की जा रही है। मिसिंग भाषा चीनी-तिब्बती भाषा परिवार के तिब्बत-बर्मी शाखा के अंतर्गत आती है। अध्यापक नाहेंद्र पादुन ने मिसिंग भाषा के विकास स्तर को खासकर तीन भागों में विभाजित कर दर्शाया है। ये हैं-आदि स्तर, मध्य स्तर और आधुनिक स्तर। आदि स्तर में मिरि या आ:बांग के स्तुति गीत-बोल और लोक कथाएं आते हैं। ये आदिम स्तर से वर्ष 1886 तक आते हैं। इनका लिखित रूप नहीं था। पुरोहित या मिबुओं के श्रीमुख से इस श्रेणी के गीत-बोल काल-दर-काल प्रस्फुटित होते आ रहे थे। परवर्ती काल में आ:बांग और पौराणिक गीतों को लिपिबद्ध करने का एक उल्लेखनीय प्रयास

सन् 1964 में प्रकाशित सुरेन दलै के 'लेके नि:तम्' को माना जाता है। मध्य स्तर को सन् 1886 से 1986 तक की अवधि में समेटा जा सकता है। मध्य स्तर को दो भागों में बांट सकते हैं। इसके प्रथम भाग को मिशनरी स्तर और दूसरे भाग को मिसिंग भाषा का पुनरीक्षा स्तर या युग भी कह सकते हैं। वर्तमान में मिसिंग भाषा में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, व्याकरण, शब्दकोश आदि की रचना कर कवि, कहानीकार, नाट्यकार और उपन्यासकार मिसिंग भाषा-साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

मिसिंग समाज एक सु-व्यवस्थित समाज है। इसका प्रमुख कारण है वर्ग भेदभाव नहीं होना। पुरुषों की तरह मिसिंग महिलाएं भी कृषि-कार्य, गृह-कार्य आदि में समान रूप से हिस्सा लेती हैं। कई सामूहिक काम-काज में भी मिसिंग महिलाएं हिस्सा लेती हैं।

मिसिंग समाज के अधिसंख्यक व्यक्ति असमीया जातीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान देकर अब भी स्मरणीय बने हुए हैं। नीचे उनमें से कुछेक व्यक्तियों के बारे में संक्षेप रूप से उल्लेख किया गया है-

साहित्यकार भृगुमुनि काग्युंग

भृगुमुनि काग्युंग के पूर्वज का नाम था कार्तंग। कार्तंग के तीन पुत्र थे-क्रमश: तामन, खहुवा और कुशराम। सन् 1932 के अक्टूबर महीने के किसी एक शुभ मुहूर्त में आलिमूर गांव में भृगुमुनि का जन्म खहुवा की पत्नी याबरी के गर्भ से हुआ। भृगुमुनि काग्युंग ने अपना शैशव काल आलिमूर गांव में ही व्यतीत किया।

भृगुमुनि काग्युंग ने गांव के ही 58 नंबर आलिमूर प्राथमिक विद्यालय से प्राथमिक शिक्षा ग्रहण की। जोरहाट सरकारी बहुमुखी बालक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से उन्होंने सन् 1958 में प्राइवेट छात्र के रूप में प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। भृगुमुनि काग्युंग बचपन से ही आत्मनिर्भर थे। पिता की मृत्यु के पश्चात पढ़ाई का खर्च वे स्वयं जुटाते थे। इसलिए वे दिन में अर्थ-उपार्जन के उद्देश्य से विभिन्न प्रतिष्ठानों में काम करते और रात के समय कॉलेज में पढ़ाई करते। इसी तरह पढ़ाई करते हुए उन्होंने जोरहाट के जेबी कॉलेज से आई.ए. और बी. बरुवा कॉलेज, गुवाहाटी से सन 1987 में स्नातक की डिग्री हासिल की। इसके अलावा भृगुमुनि काग्युंग ने सन् 1992 में महीशूर के Institute of Indian Language से मिसिंग वयस्क पाठ्यपुस्तक तैयार करने का प्रशिक्षण लिया। इस संस्थान से उन्होंने भाषा संबंधी प्रशिक्षण भी लिया।

हाईस्कूल में पढ़ते समय काग्युंग ने असम के प्रथम शहीद पत्रकार कमला सइकिया के साथ मिलकर सन् 1952 में दिखौमुख में एम.ई. स्कूल की स्थापना की। इसी विद्यालय में उन्होंने बिना किसी वेतन के शिक्षक के रूप में अपनी सेवाएं दीं।

इसके पश्चात सन् 1958 में जोरहाट वोकेशनल कॉलेजियट हाई स्कूल (Vocational Collegiate High School, Jorhat) से शिक्षक के रूप में जुड़े। इसी अवधि में उन्होंने Jorhat Industrial Institute में Instructor के पद पर भी कुछ दिन नौकरी की। भृगुमुनि काग्युंग जोरहाट सरकारी बहुमुखी बालक उच्चतर

माध्यमिक विद्यालय में सन् 1964 से सन् 1966 तक तीन वर्षों तक शिक्षक की नौकरी की। भृगुमुनि काग्युंग ने ससम्मान सन् 1990 में अवकाश ग्रहण किया।

भृगुमुनि काग्युंग का असमिया काव्य साहित्य में अपरिसीम अवदान है। उनके रचित असमिया काव्य ग्रंथ हैं- 'कविता कलि', 'आनाहुत', 'मन बननिर जुइ' और 'कविता कुसुम'। 'कविता कलि' नामक ग्रंथ की रचना उन्होंने सातवीं कक्षा में पढ़ते समय ही की थी। भृगुमुनि काग्युंग द्वारा रचित सबसे लोकप्रिय काव्य ग्रंथ 'अनाहुत' है। 'अनाहुत' काव्य ग्रंथ के लिए सन् 1971 में भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें पुरस्कृत किया था। 'मन बननिर जुइ' काव्य ग्रंथ के लिए भी भृगुमुनि काग्युंग को सन् 1994 में राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भृगुमुनि काग्युंग मिसिंग जनजाति के प्रथम राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त साहित्यकार हैं।

भृगुमुनि काग्युंग की कविताएं रमणीयता और आधुनिकता का मिश्रण हैं। एक ओर रूमानी भाव-विह्वलता व कल्पनाप्रियता तथा दूसरी ओर आधुनिक वास्तवता व वस्तुनिष्ठता के दर्शन उनकी कविता के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। देशप्रेम, रोमांटिकता, इतिहास चेतना, मानवताबोध और समाज के प्रति जवाबदेही भृगुमुनि काग्युंग की कविताओं की मुख्य विशेषताएं हैं। गौरव चेतना और मानवताबोध उनकी कविताओं के जीवंत तत्व हैं।

भृगुमुनि काग्युंग ने असमीया के साथ ही मिसिंग भाषा में भी कविताएं रचीं। मिसिंग भाषा में रचित उनकी कविताओं का संग्रह है 'क:कांग मौतम् द:ञिंग'।

उनके रचित और संपादिक ग्रंथों की कुल संख्या 27 हैं। उनके रचित निबंधों में 'आवेगिक ऐक्य साधनत श्रीमंत शंकरदेव', 'आंचलिक भाषा बनाम त्रिभाषा', 'मिसिंग कृष्टिर समु आभास', 'भाषा आरु शिक्षार भूमिका', 'मिसिंग शब्दकोश', 'मिसिंग लोजन' और 'भृगुमुनि काग्युंगर मिसिंग जन-जीवन : चिन्ता-विचित्रा' इत्यादि हैं।

भृगुमुनि काग्युंग एक मेधावी निबंध लेखक और प्रसिद्ध लोक-संस्कृति के शोधकर्ता हैं। असमिया और मिसिंग भाषा-साहित्य-संस्कृति का गहन अध्ययन व परिचर्चा उनके जीवन का व्रत था। इसके अलावा लगभग पांच सौ से अधिक शोधपत्र और मननशील निबंध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं।

27 मार्च, 2011 को मनीषी, साहित्यकार, प्रसिद्ध कवि भृगुमुनि काग्युंग का निधन हो गया।

शहीद कमला मिरि

अपनी मातृभूमि को पराधीनता के चंगुल से मुक्त कराने के लिए जो लोग अपने जीवन को तुच्छ समझ न्योछावर कर गए, उन स्तुत्य व्यक्तियों की समाज में देवता के आसन पर बिठाकर पूजा की जाती है। मातृभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ मानने वाले उन महान शहीदों का मौन अवदान भावी पीढ़ियों के लिए स्वच्छंद प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। स्वर्णिम त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करने वाले ऐसे व्यक्तियों में एक प्रमुख थे कमल चंद्र लइंग, जो कमल मिरि के नाम से जाने जाते हैं।

सन् 1894 में शिवसागर जिले (वर्तमान में गोलाघाट जिला) के रंगामाटी मौजा के अंतर्गत ऊपर टेमेरा गांव में कमला मिरि का जन्म हुआ था। ऊपर टेमेरा गांव कालक्रम में कई गांवों में विभक्त हो गया और कमला मिरि के जन्म का गांव अब गुलुंग टेमेरा नाम से जाना जाता है। कमला मिरि के पिता का नाम सिकौ लइंग और माता का नाम मंगली लइंग था। उस समय ऊपर टेमेरा गांव में कोई शिक्षण संस्थान नहीं होने के कारण कमला मिरि को औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए भोलागुरी जाना पड़ा और तभी से महान स्वाधीनता सेनानी आपिराम गोगोई के साथ उनकी मित्रता हो गई। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि सोनाराम मित्र नामक एक बांग्ला भाषा जानने वाले व्यक्ति से कमला लइंग ने शिक्षा प्राप्त की थी।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में चले स्वाधीनता आंदोलन ने भारतवर्ष के कोने-कोने में देशप्रेम का ज्वार फैला दिया था। समग्र भारतवर्ष के साथ ही असम तथा गोलाघाट जिला (तत्कालीन शिवसागर जिला) के कमला मिरि और उनके सहयोगी मिसिंग युवाओं में भी देशप्रेम की अमर वाणी ने जोश भर दिया था। उस अमर वाणी से प्रेरित होकर एक-दो करके सैकड़ों मिसिंग युवा आगे बढ़े।

कमला मिरि के नेतृत्व में महुरा मौजा के बंकुवाल अंचल से बिकाराम मिरि, बेजिया लइंग, भूटाई लइंग, धातुराम पेगु, बोंदा लइंग, शंभुराम मिरि आदि स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े।

रेल-मोटरगाड़ी की छोड़िए, उस समय सड़क यातायात भी सुगम नहीं था। ऊपर टेमेरा से गोलाघाट पहुंचने तक बीस मील से अधिक सड़क पैदल नापना पड़ता था। उस समय इतनी कठिन सड़क यात्रा कर केंद्रीय कमिटी के साथ संपर्क बनाना अति दु:साहस का काम था। किंतु, शरीर के रोम-रोम में, खून की बूंद-बूंद में प्रवाहित देशप्रेम के आगे ऐसे कष्ट का कोई विशेष महत्व नहीं था।

उस समय ऊपर टेमेरा से लेकर गेलाबिल के उत्तरी हिस्से के गांव अफीम, भांग आदि मादक द्रव्यों से भरे पड़े थे। बड़े-बुजुर्ग आज भी स्वीकार करते हैं कि अफीम से भरे ऊपर टेमेरा गांव का अफीम से मुक्त होना कमला मिरि और उनके सहयोगियों की देन है।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में 8 अगस्त, 1942 को मुंबई में आयोजित 'ऑल इंडिया कांग्रेस कमिटी' की बैठक में अंग्रेजों के विरुद्ध भारत छोड़ो आंदोलन की घोषणा की गई और 9 अगस्त को महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू आदि अनेक नेताओं को ब्रिटिश सरकार ने बंदी बनाकर जेल भेज दिया। तब कमला मिरि की अध्यक्षता में 18/08/1942 को रंगामाटी मौजा के ऊपर टेमेरा गांव में शांति सेना दल का गठन कर अठारह सदस्यीय दल को गोलाघाट में धरना देने के लिए चुना गया। सभा में लिए गए निर्णय के अनुसार कमला मिरि के नेतृत्व में सोनधन पेगु, मालिधर पेगु, बलोराम लइंग (सेक्रेटरी), बेपुंग पाटरी (नायक), जरमन मरांग, कर्द्दिक मरांग, बोम्बा बरि, फेदला लइंग, ठगि बगि, बेलेम लइंग, मेकना लइंग, बुबा बरि, दसया बरि, कोमल लइंग, एलोक पाठरी, नंदीराम लइंग, मेतुंग बरि आदि ने शांति सेना के कार्य करने का संकल्प लिया।

सन् 1942 के सितंबर महीने के आखिरी सप्ताह में गोलाघाट कांग्रेस कार्यालय में आंदोलन का समाचार

लेने जाते समय कमला मिरि और उनके सहयोगियों को ब्रिटिश सिपाहियों ने बंदी बना लिया। उसी वर्ष 8 अक्टूबर को गोलाघाट के तत्कालीन दंडाधीश आशु दत्त ने बंदियों की सुनवाई करते हुए उन्हें आठ-आठ महीने की सजा सुनाई और जोरहाट केंद्रीय कारागार में भेज दिया। कारागार में उनकी गोपीनाथ बरदलै, फकरुद्दीन अली अहमद, मोहम्मद तैयबुल्ला, अमिय कुमार दास, हेम बरुवा आदि नेताओं से भेंट हुई। कारागार में कमला मिरि ने गोपीनाथ बरदलै से हिंदी भाषा सीखी और वे चरखे पर सूत काटते थे। कारागार में बंदी जीवन बिताते समय कमला मिरि का स्वास्थ्य बिगड़ने पर उन्हें कारागार के अस्पताल में भर्ती कराया गया। इस महान देशप्रेमी ने सन् 1943 के 22 अप्रैल की मध्य रात्रि साढ़े बारह बजे सभी को रुलाकर मृत्यु वरण कर लिया।

मिसिंग संस्कृति के पितामह ऐराम बरि

मिसिंग संस्कृति के पितामह ऐराम बरि का जन्म ब्रिटिश प्रशासन के अधीन 'नेफा' (NEFA) के अंतर्गत अयान गांव में सन् 1877 को हुआ था। ऐराम बरि की माता का नाम मंङली बरि तथा पिता का ताकिर बरि था।

उस समय गांव के आस-पास कोई विद्यालय नहीं था। उन्होंने अपने गांव से तीस-पैंतीस किलोमीटर निचले के पुराने मुर्कंगसेलेक के अंतर्गत मेसाकी प्राथमिक विद्यालय में चौथी कक्षा तक अध्ययन किया।

इतिहास के पन्नों में विलुप्त होती जा रही मिसिंग कला-संस्कृति के संरक्षण का कार्य ऐराम बरिदेव ने सन् 1950 के बहुत पहले ही आरंभ कर दिया था। सन् 1952 से कलाप्रेमी कुछ युवक-युवतियों को साथ लेकर मिसिंग के मूल्यवान ऐ नि:तम, चौल्झया, लौरौलि, ल:ले, काबान, तौब: तौकांग, बृनि, मिबू आ:बांग इत्यादि की पद्धतिबद्ध चर्चा, संरक्षण और संवर्द्धन के कार्य में हाथों-हाथ लग गए। उनका सहयोग करने वाला पंद्रह युवक-युवतियों से भी अधिक का एक दल था। बरिदेव की इस सांस्कृतिक मंडली ने जोनाई, पासीघाट से आरंभ कर गुवाहाटी, जोरहाट, डिब्रूगढ़, माजुली तक लोककला का प्रदर्शन कर अनूठी मिसिंग शैली से युक्त भव्य कला-संस्कृति का प्रसार किया। स्मरणीय है कि मिसिंग संस्कृति के साधक बरिदेव ने पांच युवतियों के सहयोग से पद्धतिबद्ध रूप से लृगांग-ल:ले, गुमराग नृत्य का प्रदर्शन कर मिसिंग कला को नया रूप दिया।

इसके अलावा ऐराम बरिदेव ने तत्कालीन मुर्कंगसेलेक अंचल के पिछड़े गांवों में घूम-घूमकर पढ़ाई-लिखाई, साफ-सफाई, ग्रामीण समाज में आपसी सहयोग से कार्य करना, प्रचलित सामाजिक कुरीतियों को दूर करने इत्यादि के साथ ही ऊंच-नीच का भेदभाव किए बिना ग्रामीण समाज को स्वस्थ-सबल रूप में जीवित रखने के लिए कार्य योजनाओं का नेतृत्व किया। वे 'अयान अंचल सुधार और उन्नति सभा' से आरंभ कर 'भारत के स्वतंत्रता संग्राम' तक कई अनमोल कार्य कर गए।

तत्कालीन 'नेफा' प्रशासन के अधिकारी ऑर्नल्ड साहब और माथुर साहब की परिकल्पना तथा ऐराम बरि के नेतृत्व में अयान चारिआली से सियांग-ब्रह्मपुत्र तक स्थानीय जनता ने एक सड़क का निर्माण किया।

सन् 1958 में 'नेफा' प्रशासन ने उस सड़क के अंतिम छोर से मिलने वाले सियांग-ब्रह्मपुत्र घाट का नामकरण 'ऐराम घाट' नाम से किया। वर्तमान में भी अयान चारिआली से दक्षिण-पूर्व जाने पर बरिदेव के कर्म-संस्कृति के चिह्न को 'ऐराम घाट' नाम ने जीवंत रूप में उज्ज्वलित कर रखा है।

पद्मश्री यादव पायेंग

वृक्ष रहने पर ही मनुष्य रहेंगे। अर्थात् वृक्ष तथा मनुष्य के बीच अटूट संबंध है। इस महाजगत के प्राकृतिक वातावरण को बनाए रखने के लिए मनुष्य का दायित्व अपार है। इसके लिए सदिच्छा तथा पर्यावरण को बनाए रखने के लिए उनमें प्रबल इच्छाशक्ति की जरूरत है। इस महान दायित्व का निर्वाहण करते हुए समग्र पृथ्वी के मानव समाज को प्रकृति की सुरक्षा के लिए वाणी प्रदान करने हेतु जोरहाट के ककिलामुख के एक नंबर गाँव निवासी सिर्फ दसवीं कक्षा तक पढ़ाई करने वाले यादव मोलाइ पायेंग आगे आए। सन् 1979 को वृक्ष के पौधे लगाने का काम शुरू करने वाले यादव पायेंग ने पिछले लगभग चालीस वर्षों से पौधे ही लगाए हैं तथा उन सबों का लालन-पालन करते आ रहे हैं। इसके साथ-साथ 'मोलाइ काठनि' में रहने वाले तथा घुमने आए जीव-जंतुओं व पक्षियों का भी वे लालन-पालन करते आ रहे हैं। प्रकृति प्रेमी तथा पर्यावरण कर्मी, भारत के 'अरण्य मानव' यादव पायेंग का जन्म असम के तत्कालीन शिवसागर तथा मौजूदा जोरहाट जिले के ककिलामुख के बरघोप गाँव में 30 अक्टूबर, सन् 1959 में हुआ था। ब्रह्मपुत्र की गोद में समा जाने के कारण वे अपने निवास स्थान को बदलकर मौजूदा ककिलामुख के ही एक नंबर मिरि गाँव के स्थायी निवासी बन गए। उनके पिता का नाम लक्षीराम पायेंग तथा माता का नाम आफूली पायेंग था। पिता-माता की ग्यारह संतानों में यादव पायेंग तृतीय संतान थे। दिसै के पास स्थित ब्राह्मण गाँव के यदुनाथ बेजबरुवा के तत्वावधान में यादव पायेंग ने 90 नंबर बालिगाँव प्राथमिक विद्यालय में अपने शिक्षा जीवन की शुरुआत की। पायेंग ने उन्हीं से पर्यावरण संरक्षण तथा जीव-जंतुओं के प्रति प्यार के मनोभाव का आदिपाठ ग्रहण किया था। दसवीं कक्षा तक पढ़ने वाले पायेंग प्रवेशिका परीक्षा दिए बिना घर लौट आये थे। घर लौटकर उन्होंने देखा कि औना चापरी (चर) में ब्रह्मपुत्र की बाढ़ से किनारे बह आए सांप-मेंढक समेत असंख्य जीव-जंतुओं की प्रखर धूप से मौत हो चुकी है। उसी समय प्रखर धूप में मौत का क्षण गिन रहे असंख्य असहाय सांपों पर उनकी नजर पड़ी। दर्दीला हृदय के पायेंग ने इन सांपों को बचाने के लिए आसपास के गाँवों के वरिष्ठ लोगों का परामर्श लेकर बांस के 50 पौधे लगाए। उसके बाद से हर साल वृक्ष आदि के पौधे लगाने का कार्य उनके अभ्यास में बदल गया था। सन् 1979 से वृक्ष के पौधे लगाने का काम शुरू करने वाले यादव पायेंग ने कालांतर में विशाल 'काठनि' का निर्माण किया, जिसे आज विश्व भर में 'मोलाई काठनि' के नाम से जाना जाता है। यहीं 'मोलाइ काठनि' वर्तमान नवगठित माजुली जिले के औना या अरुणा चापरि (चर) के किनारे स्थित है। जोरहाट के ककिलामुख से गुजरने से ब्रह्मपुत्र की 'एरासुंति' (प्रवाह) पार होकर जाना पड़ता है। दूसरी ओर माजुली से गुजरने पर बरनै पार करने के बाद 'मोलाइ काठनि' पहुँचा जा सकता है।

मौजूदा 1360 हेक्टेयर अर्थात् 4050 बीघा जमीन पर 'मोलाइ काठनि' फैला हुआ है। यादव पायेंग ने आगामी पांच वर्षों में 'मोलाइ काठनि' का परिसर 2000 हेक्टेयर भूमि तक विस्तार करने की योजना बनाई है। पायेंग के 'मोलाई काठनि' के विशाल परिवार में मूल्यवान 'लाल चंदन, सफेद चंदन, शिशु वृक्ष, हलख, गमारी, तितासोपा, पमा' आदि वृक्षों के अलावा विभिन्न किस्म की वनौषधियां हैं। चार चीता भी 'मोलाइ काठनि' के प्रधान आकर्षण का केंद्र बिंदु हैं। साल में तीन-चार महीने के लिए घुमने (चरने) आए 115 हाथी तथा पांच सौ से भी अधिक हिरण 'मोलाइ काठनि' के अतिथि सदस्य हैं। पालतू या घरेलू जीव-जंतुओं में भैंस, बैल, सुअर, हंस, मुर्गा आदि हैं। इनमें 90 भैंस, 50 बैल एवं गाय तथा 10 सुअर शामिल हैं। काजीरंगा से घुमने (चरने) आए एक सींग वाले तीन गैंडे 'मोलाइ काठनि' के अतिथि सदस्य हैं। चीता अगर पायेंग के पालतू बैल-बैंस आदि को खा भी जाते हैं, तब भी वे बुरा नहीं मानते, क्योंकि ये सब बाग के ही खाद्य हैं। इसके विपरीत लोगों द्वारा वन-जंगल आदि को ध्वंस करने के परिणामस्वरूप बाघ, हाती आदि जंतुओं के खाद्य तथा चारागाह की कमी को लेकर वे लोगों पर ही दोष मढ़ना चाहते हैं। 'गृद्ध', 'शामुकभंगा', 'बगूला', 'हुदु', 'बरटोकोला', 'शापली हंस', 'कौआ', 'कामचिड़िया', 'बादुली', 'कपौ' आदि विभिन्न परिभ्रमी पक्षियों से परिपूण पायेंग का 'मोलाइ काठनि' एक बड़ा परिवार है। उनका कहना है कि उनसे मिलने आए आगंतुक अगर उन्हें 'गामोछा' पहनाने के बदले 'मोलाइ काठनि' में जाकर एक-एक वृक्ष के पौधे लगाते हैं तो वे बेहद सुखी होंगे। पालतू बैल-भैंस आदि बावत वे सालाना तीन हजार रुपये कर के तौर पर सरकार को देते हैं।

पर्यावरण की सुरक्षा के लिए यादव मोलाइ पायेंग द्वारा क्रियांवित महान कार्यों के प्रतिदानस्वरूप सन् 2012 में नई दिल्ली स्थित जबहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय ने उन्हें भारत का अरण्य मानव (Forest Man of India) उपाधि से नवाजा। उसी साल भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम ने 250 लाख रुपए सहित उन्हें 'हीरा खोदित' पुरस्कार प्रदान किया। 20, 21 तथा 22 नवंबर, 2012 को पेरिस में आयोजित U.N. Global Conference में उनका अभिनंदन किया गया। प्रकृति के नीरव साधक यादव पायेंग को सन् 2015 में भारत सरकार ने भारत के चतुर्थ सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार पद्मश्री से नवाजा। वे अब तक चीन, ताइबान, श्रीलंका, अरब के डोहा, स्विट्जरलैंड, फ्रांस, बांग्लादेश आदि देशों में आमंत्रित तथा सम्मानित हो चुके हैं।

इसके अलावा मिसिंग समुदाय के और कई पुरोधा व्यक्ति हैं। उदाहरणस्वरूप मिसिंग समाज के प्रथम वन अधिकारी, **मही चंद्र मिरि** हैं, जिनके लिए काजीरंगा को विश्व मानचित्र में जगह मिली है। सबसे पहले उन्होंने ही काजीरंगा के गैंडे को संयुक्त राष्ट्र के चिड़ियाघर में भेजकर एक सींग वाले गैंडे की जगह के रूप में काजीरंगा को चिह्नित किया था।

मिसिंग समुदाय के एक अन्य उल्लेखनीय व्यक्ति हैं विश्व पंजा चैंपियन **राजेंद्रा कुमार मिलि।** उन्होंने सन् 1977 में कोलकाता में आयोजित राष्ट्रीय 'आर्म रेसलिंग' प्रतियोगिता में भाग लेकर राष्ट्रीय चैंपियनशिप

का खिताब हासिल किया था। सन् 1979 में उन्होंने कनाडा के एडमंटन में आयोजित इंटरनेशनल 'आर्म रेसलिंग' प्रतियोगिता में भारत की ओर से खिताब हासिल किया था। सन् 1981 में भारत के कोलकाता में 'वर्ल्ड आर्म रेसलिंग' प्रतियोगिता में असम तथा भारत की ओर से निर्णायक विजेता का खिताब अर्जित किया था।

प्रश्नावली

1. 'मिसिंग' जनजाति के बारे में संक्षेप में लिखिए।
2. मिसिंग लोगों के किसी तीन प्रकार के परिधानों के नाम लिखिए।
3. मिसिंग लोगों के धर्मपंथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. आलि आये लृगांग किसे कहते हैं और कब मनाया जाता है?
5. आलि आये लृगांग शब्द की व्युत्पति लिखिए।
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (क) भृगुमुनि काग्युंग
   (ख) शहीद कमला मिरि
   (ग) ऐराम बरि
   (घ) यादव पायेंग

●●●

मणिपुरी

असम विभिन्न जनगोष्ठियों का आवास स्थल है। इतिहास-लेखन शुरू होने के पहले से ही विभिन्न समय पर विभिन्न जनगोष्ठियों के लोग इस मनमोहक उपजाऊ भू-खण्ड पर आए। इन जनगोष्ठियों में 'मणिपुरी' प्रमुख हैं।

असम में मुख्य रूप से बराक और ब्रह्मपुत्र घाटी में मणिपुरी लोग निवास करते हैं। बराक घाटी के कछार, हैलाकांदी और करीमगंज जिले में मणिपुरी रहते हैं। सन् 1819 में मान सेना ने मणिपुर राज्य पर हमला किया। कहा जाता है कि मान सेना के बर्बर अत्याचार और उत्पीड़न से तंग आकर मणिपुरी कछार, सिलेट (वर्तमान बांग्लादेश) आदि स्थानों पर गए। बाद में ये लोग अपने मूल स्थान में न लौटकर कछार (वर्तमान कछार, हैलाकांदी और करीमगंज जिला) जिले में स्थायी रूप से रहने लगे। यहाँ तक कि ब्रह्मपुत्र घाटी के विभिन्न स्थानों पर फैलकर अपनी बस्ती स्थापित कर ली। वर्तमान के होजाई जिले, कामरूप महानगर जिले के गुवाहाटी, उदालगुड़ी, कार्बी आंग्लांग, डिमा-हसाओ, ऊपरी असम के शिवसागर, डिब्रूगढ़, गोलाघाट, लखीमपुर आदि में कम-अधिक संख्या में मणिपुरीभाषी लोग स्थायी रूप से रह रहे हैं।

मणिपुरी या मैतै/मीतै शब्द भाषा और संप्रदाय दोनों को दर्शाता है। मैतैलोन या मीतैलोन मैतै/मीतै लोगों की भाषा है। लोन शब्द का अर्थ है भाषा। इस जनगोष्ठी के लोग तिब्बत-बर्मी भाषा परिवार के अंतर्गत हैं। 'मीतै मयेक' मणिपुरी लोगों की अपनी लिपि है। सन् 1992 में मणिपुरी भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हुई। मणिपुर, असम, त्रिपुरा, मिजोरम, मेघालय, नगालैंड के अलावा दक्षिण-पूर्व एशिया के म्यांमार और बांग्लादेश में भी इस भाषा का प्रचलन है।

असम सरकार ने सन् 1956 से मणिपुरी बहुल इलाकों में निम्न प्राथमिक विद्यालयों और सन् 1984 में हाईस्कूल स्तर पर मणिपुरी भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रचलित किया।

दूसरी ओर, ब्रह्मपुत्र घाटी में रह रहे मणिपुरी स्कूल-कॉलेज आदि में असमीया भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में ग्रहण कर रहे हैं।

मणिपुरी या मैतै/मीतै समाज सात 'येक-छालाई' अर्थात् गुटों में विभक्त है। ये हैं-मंगांग (निंथौजा), लुवांग, खुमन, मोइरांग, आगोम, खाबा-गानबा और चेंग्लै। ये प्रत्येक गुट कुछ उप गुटों में विभक्त हैं। इन उपगुटों को 'युमनाक' या 'शागै' कहा जाता है। मणिपुरी समाज को इस 'येक-छालाई' व्यवस्था ने एकजुट कर रखा है।

मणिपुरी समाज के प्रत्येक 'युमनाक' या 'शागै' में वंशानुगत रूप से ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकारी स्वरूप 'पीबा' की पदवी दी जाती है। 'पीबा' अपने गृहदेवता अर्थात् 'युमलाई' की पूजा-अर्चना के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मणिपुरी खेती की सुविधा के लिए आमतौर पर नदी के किनारे या आसानी से पानी प्राप्त होने वाले स्थान पर गाँव बसाते हैं। मकान की चारदिवारी पर मिट्टी लेपन मणिपुरी गाँव की एक उल्लेखनीय व्यवस्था है। इसे 'लैपन ताखत्पा' कहा जाता है। गाँवों को परिचालित करने के लिए 'खून अहन' अर्थात् मुखिया की व्यवस्था थी। वर्तमान में 'खून अहन' का महत्व घट गया है। गाँव के सामाजिक जीवन में शांति और आत्मीयता से रहने के लिए प्रत्येक गाँव में सामाजिक संगठन 'गोपाल हनजवा' और 'गोपाल हिदंग' होता है। गाँव में एक 'शिंगलूप' होता है। इसका कार्य समाजकल्याण होता है।

मणिपुरी संस्कृति में महिला की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। महिला के बिना कोई भी धार्मिक कार्य या सामाजिक आयोजन आदि का शुभारंभ नहीं किया जा सकता। इस मामले में महिला का स्थान पुरुष के समान होता है। मणिपुरी महिलाएँ पारंपरिक पोशाक पहनकर अपनी संस्कृति को अटूट रखी हैं।

मणिपुरी लोगों का मुख्य आहार चावल है तथा मछली प्रिय खाद्य है। सामाजिक रूप से मांस का सेवन निषिद्ध है। मणिपुरी वैष्णव होते हुए भी वे अपने कुल देवताओं 'लाइनिंथौ छानामही', 'इमा लैमरेन शिदवी' आदि देवी-देवताओं की लोकाचार के अनुसार पूजा-अर्चना करते हैं।

मणिपुरी लोग मूलत: कृषिजीवी होते हैं। उनका समाज और संस्कृति कृषि पर आधारित है। मणिपुरी उत्सव 'लाई हराओबा' कृषि आधारित होते हुए भी लोकाचार से जुड़ा है। 'लाई हराओबा' का अर्थ है - 'अदृश्य आराध्य को संतुष्ट करना।' 'लाई हराओबा' मणिपुरी संस्कृति का दर्पण है। मणिपुरी अपने आदिम जड़देवता 'उमंगलाई' पूजा प्रांगण में प्रतिवर्ष 'लाई हाराऊफम' की पूजा करते हैं। 'लाई हराओबा' के प्रधान कलाकार माइबा-माइबी होते हैं। इस नृत्य का प्रधान वाद्ययंत्र 'पेना' होता है। पेना वीणा की तरह का एक वाद्ययंत्र है। 'थाबल चोंग्बी' 'मोइबी जगोई' (लाई हराओबा नृत्य) मणिपुरी लोक-संस्कृति की अमूल्य संपदा है। यह नृत्य मणिपुरी जातीयता और जातीय गौरव की पहचान है। 'लाई हराओबा' उत्सव के अलावा 'शजीबू चैराओबा' उत्सव बैशाख महीने में पांच दिवसीय कार्यक्रम के साथ नववर्ष पर आयोजित किया जाता है।

मणिपुरी लोग आत्मीयता, वैवाहिक संबंध 'येक' या 'गुट' व्यवस्था के जरिए अपनी धार्मिक रीति-नीति, लोकाचारों की रक्षा करते हुए विभिन्न जनगोष्ठियों के साथ समन्वय बनाकर जीवन यात्रा जारी रखे हुए हैं।

कई मणिपुरी लोग असमीया जातीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अवदान देकर स्मरणीय हो गए हैं। उनमें से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षेप में बताया गया है-

नाओरिया फूलो

आधुनिक मणिपुरी साहित्य के कर्णधारों में नाओरिया फूल भी अग्रणी हैं।

असम के हैलाकांदी जिले के राजेश्वरपुर मौजे के 'लाइश्रम खुन' नामक गांव में 28 अगस्त, 1888 को नाओरिया फूलो का जन्म हुआ। वे नाओरेम चाओबा और थम्बो देवी की पाँचवीं संतान थे। जन्म के समय सांचे में ढले सुंदर गठीले शिशु का नाम दादाजी ने 'फून्द्रेंई' अर्थात् कुंद रखा। विद्यालय में शिक्षक ने फूल की तरह सुकोमल बच्चे का नाम 'फूलो' रख दिया।

उनके पूर्वज राजन्य शासित मणिपुर देश की प्रजा थे। उनका कोई एक परदादा राजदरबार में अधिकारी थे। बाद में मान आक्रमण से तंग आकर परदादा हेरान्द स्वदेश छोड़कर 'लाइश्रम खून' गाँव में स्थायी रूप से बस गए।

बीसवीं शताब्दी का तृतीय दशक (1920-30) मणिपुरी आधुनिक साहित्य के अरुणोदय का समय था। इस दशक में ही पश्चिमी शिक्षा से शिक्षित कुछ मातृभाषा प्रेमियों ने साहित्य सृजन पर ध्यान दिया। नाओरिया फूलो ने अध्यापन के समय से ही अनुवाद के जरिए साहित्य चर्चा शुरू की। सन् 1918 से सन् 1919 तक हिंदू उपाख्यान की कहानियों पर कुल पाँच नाटकों की रचना की। ये हैं (1) 'इनिंगथो हरिचंद्र' (राजा हरिश्चंद्र), (2) 'सीता वनवास', (3) 'रामना वनवासतगी हल्लक्लबदा' (वनवास से राम की वापसी), (4) 'दुष्यंत शकुंतला' व (50) 'श्रवण कुमार'। इसके बाद (सन् 1930-1940) के 11 वर्षों में कविता और निबंध के कुल 19 ग्रंथों की रचना की।

उनकी गद्य रचनाओं में (1) 'मीतै हौभमवारी' (मीतै का इतिहास), (2) 'गौड़ धर्म चंगकपा मतांग' (गौड़ या गौड़ीय धर्म स्थापना का संधिकाल), (3) 'मीतै येलहौ मयेक' (मीतै प्राचीन लिपि), (4) 'अहन याथंग' (गुरु उपदेश), (5) 'हौरकपा अमसूंग हौभम' (पुरावृत्त), (6) 'बामोनगी मतिक' (ब्राह्मणों का प्रभाव) व (7) ऐगी वारेंग (मेरा गद्य/निबंध) इत्यादि प्रमुख हैं।

उनकी पद्य रचनाएँ हैं (1) 'यूमलाइरोन'- सन् 1930 (गृह देव-देवी का स्त्रोत्र), (2) 'शिंथा चैथारोन'- सन् 1930 (धार्मिक रीति-नीति का मंत्र), (3) 'सकोक थीरेन'- सन् 1931 (सृष्टि तत्व कथा), (4) 'चिंगनू लाईरो' (चिंगनू देवी का स्तुति मंत्र), (5) 'तेंगबानबा अमसूंग लाइनिंगथौ लाइपाओ'- सन् 1933

(सृष्टिकर्ता कथोपकथन) और 'लाइनिंगथौ' (सनामही का कथोपकथन), (6) 'थाइन नोंगइन'- सन् 1936 (आध्यात्मिक और सांसारिक धर्ममार्ग का उपदेश), (7) 'पामहैबा' - सन् 1947 (पामहैबा जीवनचरित), (8) अथैबा सैरेंग- सन् 1934 (श्रेष्ठ कविता) इत्यादि।

नाओरिया फूलो ने अपनी विचारधारा के केवल 12 अनुरागियों को लेकर 13 अप्रैल 1930 ई.वी. को 'अपोकपा मरूप' (अपोकपा समाज) का गठन किया। इस मंच के जरिए अपने आदर्शों के प्रचार और प्रसार में वे दोगुने उत्साह से जुट गए। कालांतर में मणिपुर में अपोकपा समाज का गठन किया। वे आम लोगों की नजर में 'पुनरूत्थानवादी' नायक बन गए।

उनकी कविताएँ आध्यात्मिक भाव और प्राचीन गौरव का गुणगान, विलुप्त मीतै देव-देवियों के स्त्रोत्र, स्तुति, मंत्र, गीत आदि से परिपूर्ण है। ये साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी नाओरिया फूलो 30 जून, 1941 को मात्र 53 वर्ष की अल्पायु में स्वर्ग सिधार गए।

नृत्यगुरु के. यतींद्र सिंह

विश्व भारती शांति निकेतन संगीत भवन के सेवानिवृत्त प्राचार्य सम्मानित नृत्यगुरु अध्यापक के. यतींद्र सिंह का जन्म 22 अप्रैल, 1943 को असम के कछार जिले के लखीमपुर में हुआ था। गुरु के. यतींद्र सिंह मणिपुरी नट-संकीर्तन गुरु के कामिनी सिंह और श्रीमती पशोत्लैमा देवी के सुपुत्र थे। बचपन से ही वे अतिविनम्र, विनयी, संगीत व नृत्यप्रेमी थे। वंश की परंपरा को बरकरार रखते हुए उन्होंने शैशव काल में ही पिता के. कामिनी सिंह से नट्-संकीर्तन और नृत्य की प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। बाद में उस समय के मणिपुर राज्य के प्रख्यात नृत्यगुरु गुरु लोकेश्वर, गुरु अमूबी और गुरु अतोम्बा से नृत्य की तालीम हासिल की।

सन् 1965 में छात्रवृत्ति प्राप्त कर वे विश्व भारती शांति निकेतन में नृत्य की शिक्षा प्राप्त करने गए। नृत्य शिक्षा पूरी कर वे वहीं नृत्य एवं संगीत विभाग में अध्यापक पद पर नियुक्त हो गए और शांति निकेतन में स्थायी रूप से रहने लगे। अध्यापन के साथ-साथ वे नृत्य साधना में जुटे रहें। विभिन्न नृत्यों के संयोजन और समिश्रण के जरिए उन्होंने नई आधुनिक नृत्यशैली विकसित कर विद्यार्थियों को सिखाई। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित नृत्य की कई कार्यशालाओं, विचारगोष्ठियों तथा सांस्कृतिक समारोहों में नृत्य प्रदर्शित कर तथा विचार प्रकट कर दर्शकों का हृदय जीतने में सफल रहें। उन्होंने शांति निकेतन में ऐसी कई कार्यशालाओं और विचारगोष्ठियों का आयोजन कर मणिपुरी और रवींद्र नृत्य की श्रीवृद्धि का लगातार प्रयास किया। उनके तत्वावधान तथा निर्देशन में उनके छात्र-छात्राओं ने विश्व भारती के संगीत विभाग के

कलाकारों के साथ दक्षिण अमेरिका, चीन, जापान, मलेशिया, सिंगापुर, फ्रांस, रूस, म्यांमार और बांग्लादेश समेत दुनिया के विभिन्न देशों में मणिपुरी और रवींद्र नृत्य का मंचन कर काफी प्रशंसा प्राप्त की थी। उनके पैरों में जैसे जादू था। जब वे नृत्य करते थे तो दर्शकों को लगता था, जैसे शून्य में हवा के ताल पर नाच रहे हैं। नृत्य करते वक्त वे उतने ही सरल, जीवंत और शिल्पमय लगते थे। स्वनामधन्य कलाकार ने देश-विदेश से प्राप्त सम्मान और गौरव से अधिक अपने असंख्य विद्यार्थियों और प्रशंसकों की श्रद्धा और स्नेह को अध्यापन की उल्लेखनीय सफलता मानते थे।

विश्व भारती शांति निकेतन में पहले अध्यापन तथा अंत के कुछ वर्षों तक प्राचार्य का महत्वपूर्ण दायित्व निभाने के बाद वे सन् 2010 में सेवानिवृत्त हुए। सेवानिवृत्ति के बाद भी संगीत, नृत्य-नाटिका आदि में जीवन के अंतिम क्षण तक अपनी सेवा प्रदान की। उन्होंने 'त्रिधार' और 'मीरजिगांनसा' नामक दो टेलीफिल्मों में भी अभिनय किया था। गुरु के. यतींद्र सिंह को सन् 2006 में मणिपुरी साहित्य परिषद् असम ने 'नृत्यगुरु' सन् 2010 में राजकुमार बुद्धिमंत मेमोरियल डांस एकेडमी, त्रिपुरा ने 'राजकुमार मेमोरियल अवार्ड' और सन् 2012 में मणिपुरी साहित्य परिषद्, इंफाल ने 'नृत्यरत्न' उपाधि से सम्मानित किया।

मणिपुरी नृत्य के विरल प्रतिभा के धनी नृत्यगुरु के. यतींद्र सिंह ने 2 अप्रैल, 2018 को सोमवार की रात शांति निकेतन के अबल पल्ली स्थित अपने निवास पर अंतिम सांस ली।

समाजसेविका सरस्वती सिन्हा

असम आंदोलन की नेता व समाजसेविका सरस्वती सिन्हा का जन्म 8 सितंबर, 1958 को होजाई जिलांतर्गत लंका इलाके के आमपुखुरी गाँव के एक कृषक परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम वाहेंगबम जयचंद्र सिंह और माता का नाम वाहेंगबम फजबी देवी था।

उन्होंने आमपुखुरी निम्न प्राइमरी स्कूल से प्राथमिक शिक्षा प्रारंभ की। काशीपुर एम.वी. स्कूल से छात्रवृत्ति के साथ एम.वी. पास करने के बाद लंका राष्ट्रभाषा हाईस्कूल से सन् 1916 में मैट्रिक की परीक्षा पास की। नगांव गर्ल्स कॉलेज से सन् 1981 में बी.ए. की डिग्री हासिल की। कुछ वर्षों के विराम के बाद सन् 1993 में नगांव कानून महाविद्यालय से कानून की स्नातक उपाधि प्राप्त की।

उन्होंने सन् 1982 में असम सरकार के समाज कल्याण विभाग में आंगनबाड़ी कर्मी के रूप में कार्य शुरू किया। कुछ दिनों बाद आमपुखुरी एल.पी. स्कूल में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुईं। वे 14 सितंबर, 1985 को शिक्षक पद से सेवानिवृत्त हुईं।

सरस्वती सिन्हा की पहल पर सन् 2005 में मणिपुरी भाषा-साहित्य के उत्थान के लिए होजाई में 'पान मणिपुरी लिटरेरी फोरम' (अखिल मणिपुरी साहित्य मंच) का गठन किया गया। इस मंच के नाम पर उन्होंने

अपने पैसे से एक स्थानीय कवि शानौ राजकुमार के कविता संकलन 'नोंगपोकथांग हांगले' को सरस्वती प्रकाशन से प्रकाशित करवाया। मणिपुरी भाषा-साहित्य की उन्नति के लिए उन्होंने आजीवन नि:स्वार्थ भाव से कार्य किया।

कानून की स्नातक सरस्वती सिन्हा ने सन् 1996 में होजाई की शंकरदेव नगर अदालत में एक अधिवक्ता के रूप में काम शुरू किया। अपनी वाक्पटुता, प्रत्युत्पन्नमति और अध्यावसाय गुणों के कारण अति कम समय में उन्होंने खुद को एक पेशेवर अधिवक्ता के रूप में स्थापित कर लिया। उल्लेखनीय है कि वे असम की ब्रह्मपुत्र घाटी की प्रथम मणिपुरी महिला अधिवक्ता थीं।

उन्होंने अंत:करण से महसूस किया था कि नारी समाज में चेतना जागरण की जरूरत है। इसलिए होजाई, लंका, नगांव इलाकों की महिलाओं के विकास के लिए विभिन्न महिला संगठनों की स्थापना कर उन्होंने स्वयं उनका संचालन किया। उनमें से होजाई का 'मैरा पाईबी लूप' अर्थात् 'मशालधारी महिला वाहिनी' नामक महिला संगठन सबसे उल्लेखनीय है। सन् 1970 में पड़ोसी मणिपुर में 'ऑल मणिपुर वुमेन सोशल रिफॉरमेशन एंड डेवलपमेंट समाज' नामक एक महिला संगठन का जन्म हुआ। समाज के अंधकार स्वरूप कु-संस्कारों को दूर कर मशाल की लौ समाज को प्रकाशित करेगी। इस महिला वाहिनी ने समाज के कु-संस्कारों के खिलाफ संग्राम छोड़ दिया। सबसे पहले समाज में मादक पदार्थ के सेवन और जुआ खेल को खत्म करने का अभियान चलाया। वे होजाई-लंका की महिलाओं में नई चेतना पैदा करने में सफल रहीं। समाजसेवा के क्षेत्र में उनके जीवनपर्यंत अवदान के लिए मणिपुरी साहित्य परिषद्, असम ने सन् 2012 में उन्हें 'समाजसेविका' उपाधि से विभूषित किया।

5 दिसंबर, 2012 को उनका देहावसान हो गया।

नोंगथोम्बम विद्यापति सिंह

मणिपुर से बाहर प्रथम मणिपुरी एम.एल.ए. नोंगथोम्बम विद्यापति सिंह एक बहुमुखी प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे। उनका जन्म 24 नवंबर, 1912 को वर्तमान हैलाकांदी जिले के लाला शहर में हुआ था। उनके पिता स्वर्गीय ललित सिंह एक वैद्य और ज्योतिषी थे। माता स्वर्गीय माइसन देवी असम के प्रथम मणिपुरी डिप्टी इंस्पेक्टर हिजम रमन सिंह की दीदी थीं। नोंगथोम्बम विद्यापति सिंह ने सन् 1931 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधीन प्रथम विभाग में मैट्रिक पास की। इसके बाद शिलेट के मुरारीचंद कॉलेज से इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की। उक्त कॉलेज से सन् 1935 में ढाका विश्वविद्यालय के अधीन इतिहास में ऑनर्स सहित बी.ए. पास की।

नोंगथोम्बम विद्यापति सिंह ने सन् 1936 में कछार जिले के सोनाई एम.ई. स्कूल में अंग्रेजी के शिक्षक के रूप में कार्य शुरू किया। उस समय सोनाई इलाके में एम.ई. पास करने के बाद हाईस्कूल की पढ़ाई की कोई

सुविधा नहीं थी। इसके लिए उन्होंने काफी प्रयास कर सोनाई एम.ई. स्कूल में हाईस्कूल की स्थापना कर स्कूली शिक्षा की कमी पूरी की।

नोंगथोम्बम विद्यापति सिंह ने अति सरल एवं सादा जीवन बिताया। हमेशा धोती-कुर्ता पहनने वाले विद्यापति सिंह एक आदर्शवान पुरुष थे। केवल शिक्षा-दीक्षा में ही नहीं, बल्कि नाटक आदि सांस्कृतिक क्षेत्र में भी वे अग्रणी थे।

उनकी अध्यक्षता में सन् 1939 में कछार मणिपुरी युवा संघ नामक एक संगठन की स्थापना हुई। इस संगठन के जरिए उन्होंने सजातीय युवाओं को जाग्रत किया था।

सन् 1935 के भारत शासन कानून के अधीन सन् 1946 में आयोजित असम विधानसभा चुनाव में वे साउथ हैलाकांदी से निर्वाचित हुए थे। वे सन् 1951 तक विधायक रहें। विधायक रहते समय उन्होंने अपनी मातृभाषा मणिपुरी के माध्यम में शिक्षा-दीक्षा की सुविधा प्रदान करने की मांग कई बार उठाई। इसके फलस्वरूप परवर्ती काल में असम सरकार ने मणिपुरी भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृति दी।

भारत स्वाधीन होने के बाद सन् 1948 में पूर्वी पाकिस्तान में रह रहे मणिपुरी भाषी लोगों के उत्पीड़न की खबर पाकर उन्होंने कछार के तीन मणिपुरी नेता और एक सौ छात्र-छात्राओं को वहाँ भेजकर उस समय वहाँ रह रही मणिपुरी प्रजा और पड़ोसी लोगों को आपसी सद्भाव बनाकर एक साथ रहने का परामर्श दिया था।

स्वजाति और जनता के लिए नि:स्वार्थ भाव से काम करते हुए 14 सितंबर, 1954 को 42 वर्ष की अल्पायु में सोनाई शहर में नोंगथोम्बम विद्यापति सिंह का निधन हो गया।

प्रश्नावली :

1. मणिपुरी लोग असम में स्थायी रूप से रहने के लिए कब आए?
2. भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में मणिपुरी भाषा कब शामिल की गई?
3. मणिपुरी मीतै/मैतै समाज के सात येक छालाई के नाम क्या-क्या हैं?
4. मणिपुरी मीतै/मैते लोगों के घरों में पूजे जाने वाले देव-देवियों के नाम क्या-क्या है?
5. लाई हराओबा क्या है? साल के किस महीने में लाई हराओबा उत्सव मनाया जाता है? लाई हराओबा उत्सव में इस्तेमाल होने वाले एक वाद्य यंत्र का नाम लिखिए।
6. मणिपुरी मीतै/मैतै लोगों के कुछ नृत्यों के नाम लिखिए।
7. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (क) नाओरिया फूलो (ख) नृत्यगुरु के. यतींद्र सिंह
   (ग) समाजसेविका सरस्वती सिन्हा (घ) नोंगथोम्बम विद्यापति सिंह

● ● ●

राभा

राभा मूलत: एक आदिम जाति है। ये लोग असम, मेघालय और पश्चिम बंगाल के विभिन्न स्थानों में बसे हुए हैं। यह स्पष्ट है कि वर्तमान समय में राभा जाति का स्थान, जनसंख्या, परिचय क्रमश: सामने आ गए हैं और विज्ञानसम्मत अध्ययन की धारा जारी रखी जाए तो राभा जाति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और अधिक स्पष्ट और सटीक रूप में मिल सकेगी। यह कहा जा सकता है कि सन् 1903 में प्रकाशित Languistic Survey of India के मानचित्र के अनुसार गारो पहाड़ जिले के 'फुलबारी' से दक्षिण कामरूप के रानी तक, गारो पहाड़ और खासी पहाड़ जिलों के उत्तर सीमांतवर्ती कुछ अंचल राभा लोगों के निवास स्थान के रूप में चिह्नित हैं। इसके अलावा विभिन्न देश-नेपाल, भूटान, बांग्लादेश और भारतवर्ष के मेघालय समेत विभिन्न राज्यों के साथ असम के विभिन्न जिलों-कोकरझाड़, बंगाईगांव, चिरांग, बाक्सा, उदालगुड़ी, कामरूप, शोणितपुर, गोलाघाट, नगांव, धेमाजी, डिब्रूगढ़, शिवसागर आदि के विभिन्न अंचलों में इनकी आबादी है।

परिचय : अपने गौरव, विशिष्टता, आस्था, आख्यान-उपाख्यान से भरपूर राभा एक परिपूर्ण जाति है। भारतीय संविधान में राभा एक जनजाति के रूप में स्वीकृत है। मंगोलीय धड़े की राभा जाति सामाजिक दृष्टि से कई शाखाओं में विभक्त है, जैसे-रंगदानी, पाति, दाहरी, मायतरी, कोच, बितलिया, हाना, मदाही आदि।

भाषा : राभा जाति की अपनी भाषा (दोवान) है। गणितीय संख्या भी पूर्ण रूप से हैं। राभा भाषा निश्चित रूप से व्याकरण सम्मत है। शोध और अभ्यास के अभाव में पूर्व में राभा भाषा के विस्मृति के गर्भ में समाने की स्थिति आ गई थी, किंतु वर्तमान में इस भाषा में काफी उद्धार हुआ है और पुनरुद्धार तथा संरक्षण की नई पहल से राभा भाषा जीवंत हो उठी है।

उदाहरणस्वरूप, अब तक राभा भाषा के दो शब्दकोश प्रकाशित हो चुके हैं और अखिल राभा साहित्य सभा की ओर से एक और शब्दकोश प्रकाशित होने वाला है। राभा, अंग्रेजी और असमिया भाषा में 'छामलायछिनि राओछामि' नाम से पूर्णांग प्रशासनीय परिभाषा प्रकाशित हो चुकी है। वर्तमान में अखिल राभा साहित्य सभा के उद्योग से 'फामानछिनि' (परिचय) से 'पौरमौतकापछिनि' (स्नातकोत्तर) श्रेणी तक राभा डिप्लोमा कोर्स के लिए निजी प्रचेष्टा से पाठ्यपुस्तक तैयार की गई है।

राभा भाषा विकास का प्रथम कालखंड : भाषा विकास के स्वर्णिय युग को 'चाम्पाय' और 'प्राक चाम्पाय' कहा जा सकता है। 'चाम्पाय' यानी पत्रिका के माध्यम से राभा भाषा जीवंत हो उठती है। इसके

कई वर्ष बाद अर्थात सन् 2005 में राभा भाषा में पाक्षिक समाचारपत्र 'चिङि खुरांग' प्रकाशित हुआ, किंतु दीर्घायु नहीं रहा।

समाज : राभा समाज प्रारंभ में मातृ प्रधान था, किंतु क्रमशः पितृ प्रधान समाज में परिवर्तित हो गया। लड़का-लड़की माता के 'बाराय' (गोत्र) के अंतर्गत आते हैं। पिता का 'बाराय' (गोत्र) 'पाम' होने और माता का 'बाराय' रंख होने पर लड़का-लड़की 'रंख' गोत्र में आते हैं। माता के 'बाराय' से जितने गोत्रों का जन्म होता है, वे ही 'माहारी' हैं और माहारी अनुसार निकटतम माहारी की संपत्ति के अधिकार पर पूर्ण दावा रहता है। किंतु एक ही माहारी के किसी पुरुष की उस संपत्ति पर दावा का कोई अधिकार नहीं होता है। इस दृष्टि से राभा लोग मातृ प्रधान हैं।

संस्कृति : राभा लोग अपनी कला-संस्कृति में समृद्ध हैं। राभा समाज लोकगीत, लोककथा, लोक-विश्वास और लोक संस्कृति से भरपूर हैं। राभा समाज-जीवन में विभिन्न पूजा-अर्चना, उत्सव-पर्व आदि में गीत, बोल, सुर, ताल, लय, वाद्य, नृत्य के उपकरण तथा परिधान अति प्रांजल रूप में प्रचलित हैं। इन नृत्य-गीतों में सुख से लेकर दुख और प्रेम से विरह तक की गाथा हैं।

'मानचालेंका' या 'माछरोका' पक्षी राभा कला-संस्कृति में अतीत से ही प्रचलित प्रतीक चिह्न है। इस मानचालेंका जैसी करुवा और बातिकटिका नामक पक्षी की काठ की आकृति बना बांस के बीम से संलग्न कर दिया जाता है और नृत्य के ताल-ताल पर पुरुष नचाते हैं। साथ में नर्तकियां राभा के पौराणिक वीर, वीरांगनाओं के ढाल और तलवार लेकर नृत्य प्रदर्शित करती हैं।

पौराणिक आख्यान और परंपरागत विश्वास के अनुसार जगत सृष्टिकर्ता स्वयं 'रिसि' से राभा लोगों को भाषा, कला, खाद्य सामग्री आदि दान स्वरूप मिले थे। यह राभा समाज का लोक विश्वास है।

राभा वीर-वीरांगना : 'बाहारी-स्तान-ई-घायेबी' इतिहास के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी के दूसरे दशक में 'साम्भोर' राज्य के राजा राजावीर परशुराम राभा थे। उसी तरह राभा इतिहास में वीर राजा ददान, मारुक्षेत्री आदि योद्धाओं के नाम मिलते हैं। इन वीर-वीरांगनाओं की अनेक कहानियां लिपिबद्ध हैं। इनके शासनकाल की अनेक स्मृतियां माकरी पहाड़, रंगजुलि, कल्याणपुर में अब भी हैं। इसके अलावा फेडार डोबा में ददान की अंतिम स्मृति भी विद्यमान है।

राभा के उत्सव, पूजा-पर्व : इतिहास के अनुसार राजावीर ददान द्वारा 'बायखो' पूजा की गई थी और कालांतर में यह 'बायखो' पूजा में परिणत हो गई। रिसि या महादेव राभाओं के प्रधान देवता हैं। आख्यान के अनुसार बाय-खोकसि नामक दो देवी बहनों से ही बायखो देवी और खोकसि देवी बनी हैं, जिनकी पूजा राभा लोग अतीत से ही करते आ रहे हैं। इसके साथ ही लाङा देवता सहित विभिन्न देव-देवी की पूजा की जाती है। राभा लोग जड़ उपासक हैं। पत्थर, पेड़-पौधों की पूजा कर सूअर, मुर्गी, कबूतर आदि अर्पित करते हैं।

समाज व्यवस्था : प्राचीन काल से ही राभा लोगों ने सामाजिक रूप से अपनी एकता को बना रखा

है। वन्य जीव शिकार, मछली शिकार आदि पुरुष-महिला साथ मिलकर करते हैं। गांव की पूजा, विवाह, श्राद्ध आदि में भी समान रूप से भागीदारी करते हैं। प्राचीन काल में हुए युद्ध-संघर्षों में भी पुरुष-महिला के सक्रिय सहयोग का प्रमाण मिलता है। खेती-बाड़ी में भी समान रूप से कार्य करते हैं। युद्ध-संघर्ष पसंद करने वाली राभा जाति को क्षत्रीय भी कहा जाता है।

निष्कर्ष : राभाओं की जितनी भी शाखाएं हैं, उनमें रंगदानी, मायतरी और कोच राभा लोग ही राभा भाषा जानते हैं। पाति, दाहरी, बिटलीया, हाना आदि राभा भाषा नहीं जानते हैं, बावजूद वर्तमान में उन्होंने राभा भाषा को अपनी मातृभाषा के रूप में अपना लिया है।

राभा समाज के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है-

कलागुरु विष्णुप्रसाद राभा

विश्वरे छन्दे छन्दे
महानन्दे
आनन्दे
नाचा
नाचा तमोहर देउ
नाचा....

कवि, साहित्यकार, नाट्यकार, संगीतकार, नृत्यविद, अभिनेता विष्णु प्रसाद राभा का जन्म 31 जनवरी, सन् 1909 में ढाका शहर की सैन्य छावनी में हुआ था। सरदार बहादुर गोपाल चंद्र राभा और गेथी बाला राभा के पुत्र विष्णुप्रसाद राभा 'कलागुरु' के नाम से जाने जाते हैं। विष्णु राभा की प्राथमिक शिक्षा ढाका के एक अंग्रेजी माध्यम के प्राथमिक विद्यालय में आरंभ हुई। किंतु पिता ने बाद में उन्हें बंगाली माध्यम में भर्ती कराया। तेजपुर आने पर उन्होंने असमिया माध्यम में शिक्षा प्राप्त की।

सन् 1926 में तेजपुर हाईस्कूल से जिले भर में प्रथम श्रेणी में प्रवेशिका उत्तीर्ण कर 'कुइन एमप्रेस' पदक प्राप्त किया। हाईस्कूल से ही विष्णु राभा एक अग्रणी खिलाड़ी रहे। फुटबॉल, क्रिकेट, हॉकी खेलने के साथ ही सुंदर गीत गाते, नाचते, अभिनय करते और चित्र बनाते। इसके साथ ही महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के प्रति भी उनकी बड़ी आस्था थी। सन् 1926 में कलकता के सेंटपॉल कॉलेज में विज्ञान संकाय में नाम लिखवाया और उसी वर्ष इस कॉलेज की क्रिकेट टीम का कप्तान चुने गए। सेंटपॉल कॉलेज से प्रथम श्रेणी में आई.एस.सी. उत्तीर्ण करने के पश्चात सन् 1930 में रिपन कॉलेज में बी.एस.सी. में नाम लिखवाया और भौतिक विज्ञान में ऑनर्स किया। रिपन कॉलेज में वे फुटबॉल टीम के कप्तान चुने गए। उस समय स्वाधीनता आंदोलन के ज्वार ने कलकता को अस्थिर कर रखा था। देशप्रेमी विष्णु राभा भी आंदोलन से जुड़ने के कारण ब्रिटिश प्रशासन की नजरों में आ गए।

चतुर विष्णु राभा ने गुपचुप रिपन कॉलेज छोड़कर कूचबिहार के विक्टोरिया कॉलेज में नाम लिखवा लिया।

विक्टोरिया कॉलेज के 21 वर्षीय छात्र विष्णु प्रसाद राभा भारत के स्वाधीनता आंदोलन में कूद पड़े और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कविता लिखकर चेतावनी दी–

''राज्ये आछे दुइटि पाठा
एकटि कालो एकटि सादा
राज्येर यदि मंगल चाउँ
दुइटि पाठाइ बलि दाउँ।''

यह विष्णु प्रसाद राभा के जीवन में विद्रोह का आरंभ था। ब्रिटिश सरकार के रोष में पड़ने से विक्टोरिया कॉलेज में पढ़ाई का मार्ग अवरुद्ध हो गया और तब उन्होंने माइकल कॉलेज में दाखिला लेकर अध्ययन में ध्यान लगाया। किंतु चयन परीक्षा में सर्वोच अंक पाने पर भी उन्हें पुलिसिया परेशानी के चलते माइकल कॉलेज छोड़ने पर विवश होना पड़ा। सन् 1931 में उनके छात्र जीवन का अंत हो गया।

कलकता लौटकर हाथों में कलम उठा आवाहन, बाँही के पन्नों पर लेखन आरंभ कर असमिया साहित्य प्रेमियों के बीच एक नए रूप में परिचित हुए–विष्णु प्रसाद राभा।

संगीत साधना में व्यस्त रहते रूस की विख्यात अभिनेत्री आना पावलभार का नृत्य देख उनके संपर्क में आए और विष्णु प्रसाद राभा के शिल्पी मन को स्वत:स्फूर्त प्रेरणा मिल गई। असम के सांस्कृतिक जगत के मूर्धन्य शिल्पी ज्योतिप्रसाद आगरवाला का साथ पाकर विष्णु प्रसाद राभा और अधिक ओजस्वी हो उठे। नृत्य–गीत और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में व्यस्त रहते गायिका प्रियलता दत्त से 1937 में उनका विवाह हुआ, लेकिन दुर्भाग्य से विवाह के 28 दिन बीतते ही पत्नी की मृत्यु हो गई। तब शोक विह्वल विष्णु राभा ने गीत रचा–

''परजनमर शुभ लगनत
यदिहे आमार हय देखा
पुराबाने प्रिये एई जनमर
मोर हियार अपूर्ण आशा।''

सन् 1939 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के आमंत्रण पर विष्णु प्रसाद राभा ने नृत्य प्रस्तुत की। महादेव का तांडव नृत्य प्रस्तुत कर डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन को मंत्रमुग्ध करने के साथ ही भूरि–भूरि प्रशंसा बटोरी। विद्रोही विष्णु प्रसाद राभा को सन् 1962 में देशद्रोही बताकर कारागार में डाल दिया गया। इसी समय द्वितीय पत्नी कनकलता मेधि की मुन मुन (पृथ्वीराज), थुन थुन (हेमराज) को जन्म देने के बाद अकाल मृत्यु हो गई। यायावरी जीवन बिताने वाले विष्णु प्रसाद राभा 'सोनपाही', 'मिसिंग कनेंग', 'असमीया कृष्टिर समु

आभास' और 'अतीत असम' आदि अति अनमोल ग्रंथ लिख गए हैं।

सन् 1967 में तेजपुर विधानसभा क्षेत्र से विधायक चुने गए। विष्णु राभा अंतत: मोहिनी राभा के साथ विवाह बंधन में बंधे। सारा जीवन दलित और उपेक्षितों के पक्ष में संग्राम करने वाले विष्णु प्रसाद राभा का जीवन अंतहीन दुख-यंत्रणाओं से भरा था और उन्हीं के बीच उनके सीमाहीन गीत, नृत्य, लेख उन्हें जीवंत कर गए। 20 जून, 1969 को विद्रोही नेता कलागुरु विष्णु प्रसाद राभा के जीवन के नाटक का पटाक्षेप हो गया।

राजेन राभा

विशिष्ट शिक्षक, यशस्वी साहित्यकार, आजीवन शोधकर्ता राजेन राभा का जीवन और कृति विशाल है। 'अभिधानेइ मोर गुरु' कहने वाले राजेन राभा 'राभा साधु', 'राभा जनजाति' आदि के अलावा बीस से अधिक निबंधों के माध्यम से असमिया साहित्य को समृद्ध कर गए हैं। 18 सितंबर, 1920 को दुधनै में जन्मे राजेन राभा ने एम.ई. स्कूल से निकलते ही मात्र पांच रुपए के पारितोषिक पर एक मारवाड़ी दुकान में आजीविका शुरू कर दी और अपने दृढ़ संकल्प के बल पर मैट्रिक (1955), आई.ए. और अंतत: असमिया से एम.ए. (1971) उत्तीर्ण की। इसके बाद राभा समाज-संस्कृति के अध्ययन में जुट गए। आजीवन साहित्य साधक, समाज और मानवप्रेमी राजेन राभा के विराट जीवन का प्रथम चरण दुख और कष्टों से भरा था। सन् 1949 में जोरहाट के नर्माल स्कूल में बीस महीने की छात्रवृत्ति से अध्ययन का अवसर मिला। ग्वालपाड़ा स्कूल बोर्ड ने उन्हें जयरामकुछि मध्य विद्यालय में प्रधान शिक्षक के रूप में नियुक्ति दी। वहां रहते 'उदयन' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका निकाली। हालांकि इससे पहले वे कृषि कार्य में लगे और 'मनोहारी सामग्री' का व्यवसाय भी किया। स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सा लेते हुए 'करिम किम्बा मरिम' वाहिनी में भर्ती हुए। सन् 1938 में जोरहाट के कोकिलामुख में एक अध्यक्ष के अधीन 'असम बंगीय सारस्वत आश्रम' ऋषि विद्यालय में एक वर्ष तक संस्कृत और बांग्ला भाषा सीखी। इसके पश्चात कोकराझाड़ गुरु ट्रेनिंग केंद्र से (1948) में डिस्टिंगशन के साथ प्रथम श्रेणी, जोरहाट नर्माल स्कूल की त्रि-वार्षिक अंतिम परीक्षा (1952) में पांच विषयों में लेटर सहित द्वितीय श्रेणी, तिताबर बुनियादी प्रशिक्षण कॉलेज से प्रशिक्षण, वर्धा के राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (1957) से हिंदी में विशारद और अंतत: पीएच.डी. (प्रोविजनल), 1972 में डा. महेश्वर नेओग के दिशा-निर्देश में The Rabhas : Their language and culture और पीएच.डी (फाइनल) 1977 (संशोधित The Rabhas : Their society and culture with special reference to non-sanskritized groups) की। हालांकि यह शोधग्रंथ (थेसिस) कई कारणों से विश्वविद्यालय में जमा नहीं किया जा सका, बावजूद राभा लोगों के विषय में लिखित वह ग्रंथ एक अनमोल धरोहर बना रहेगा।

वे असम साहित्य सभा के बंगाईगांव अधिवेशन के उपसभापति और दुधनै अधिवेशन की स्वागत समिति के सभापति थे। उन्हें असम सरकार की ओर से साहित्यिक पेंशन प्रदान करने के अलावा सन् 1946

में राष्ट्रीय कृती शिक्षक का पुरस्कार भी प्रदान किया गया।

राभा कला के शिल्पकार प्रसन्न पाम

राभा कृष्टि के शिल्पकार प्रसन्न पाम का जन्म सन् 1932 की 20 तारीख को ग्वालपाड़ा जिले के बालिजान चक्र के अंतर्गत लातापारा गांव में हुआ था। पिता का नाम कमल कुमार राभा और माता का दाखेल बाला राभा था। पूर्व गारो पहाड़ जिला के माणिकगंज प्राथमिक विद्यालय से शिक्षा आरंभ कर प्रसन्न पाम आगिया एम.वी. स्कूल से उत्तीर्ण हुए।

प्रसन्न पाम बचपन से ही राभा कला-कृष्टि की साधना में लग गए थे। रेडिओ कलाकार के रूप में विख्यात प्रसन्न पाम ने कई गीत लिख सुर बनाए। ये गीत और सुर वर्तमान समय तक बहुत लोकप्रिय हैं। 'ददान वीर' नाटक के माध्यम से लोकप्रिय हुए प्रसन्न पाम के 'मारुक्षेत्री' (नाटक), 'सृष्टिविधान', 'मयरा शक्ति', 'लाङामुक्ति', 'कामगिरि शक्ति', 'पिदान संसार', 'माया हासंग', 'लेखा तेवा जमा तंग्सा' इत्यादि पुस्तक अप्रकाशित रह गए।

समग्र जीवन राभा कला-कृष्टि की साधना करने वाले प्रसन्न पाम ने सन् 1952 में अमनी बाला राभा से विवाह किया और चार पुत्र व तीन पुत्रियों के पिता बने। 20-02-1978 को एक चुनावी प्रचार में सहयोगी बनकर घूमते समय एक मोटर दुर्घटना में इस महान शिल्पी की अकाल मृत्यु हो गई।

संग्रामी नेत्री डा. बीरुबाला राभा

डायन हत्या जैसे अंधविश्वास को दूर कर एक स्वस्थ समाज गढ़ने की लगातार चेष्टा में अपने जीवन को समर्पित करने वाली नेत्री हैं डॉ. बीरुबाला राभा।

ग्वालपाड़ा जिले के ठाकुरबिला नामक एक अंदरूनी गांव में सन् 1949 को जन्मी बीरुबाला राभा के पिता का नाम कालियाराम राभा और माता का सागरबाला राभा था। प्राथमिक विद्यालय में केवल तीसरी श्रेणी तक पढ़ी बीरुबाला राभा का पंद्रह वर्ष की उम्र में ही विवाह हो गया। उनके कर्मजीवन का आरंभ बुनाई-कटाई से हुआ। इसके साथ-साथ सामाजिक कु-संस्कार डायन हत्या के विरुद्ध सक्रिया हो गईं। निरंतर अंधविश्वास के विरुद्ध लड़तीं बीरुबाला राभा को कई पुरस्कार और सम्मान दिए गए। इनका नीचे उल्लेख किया गया है।

सन् 2005 : शांति के नोबेल पुरस्कार के लिए मनोनीत।

सन् 2005 : Real Hero की स्वीकृति, IBN 18 Network and Reliance Group.

सन् 2011 : समाजप्राण सर्वेश्वर दत्त मेमोरियल का 'समाजप्राण' पुरस्कार।

सन् 2011 : उर्मिला दास मेमोरियल पुरस्कार।

सन् 2012 : डिब्रूगढ़ महिला क्लब का 'जयमती' पुरस्कार।

सन् 2013 : इंग्खंग वेलफेयर सोसायटी कोकराझाड़ जिला द्वारा 'मैन ऑफ द ईयर' पुरस्कार।

सन् 2014 : शिवसागर सोनारी ताई आहोम युव परिषद द्वारा 'वीरांगना मूलागाभरू' पुरस्कार।

सन् 2015 में गौहाटी विश्वविद्यालय ने बीरुबाला राभा को मानद डाक्टरेट की डिग्री प्रदान की।

वर्तमान में 'Mission Birubala' के नाम से डायन हत्या जैसे अंधविश्वास के विरुद्ध लगातार अभियान चला रही हैं।

प्रश्नावली :

1. राभा लोगों का आदि निवास स्थान कहां था?
2. सामाजिक दृष्टि से राभा लोग कितनी शाखाओं में विभक्त हैं?
3. राभा संस्कृति का प्रतीक क्या है?
4. राभा लोगों के प्रधान देवता कौन हैं?
5. राभा लोगों की मुख्य पूजा का नाम क्या है?
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (क) विष्णु प्रसाद राभा
   (ख) राजेन राभा
   (ग) प्रसन्न पाम
   (घ) बीरुबाला राभा

● ● ●

सोनोवाल कछारी

सोनावाल कछारी समाज के लोग पहले मंगोलीय के रूप में असम में प्रवेश किए थे। वे पहले जड़ोपासक थे। कालान्तर में वे किरात धर्म को अपना कर खेती-बाड़ी तथा यातायात की सुविधा के लिए नदी या पहाड़ के आसपास के क्षेत्रों में बसने लगे। पंडितों का मानना है कि नदी के आसपास अर्थात् कक्षात → कच्छात → कच्छ के साथ अरि संयोग होकर कच्छ + अरि = कच्छारी या कछारी नाम की उत्पत्ति हुई है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी (चट्टोपाध्याय) के अनुसार कछारी लोग घुसपैठ करते हुए सबसे पहले 'कुशी' नदी के तट पर बसने लगे। इसलिए उन्हें 'कुशीमारा' और क्षेत्र को कुशारीयार के कारण कुशीयार → कुशार या काशार → कुशारी या कचारी कहा गया है। इस जनगोष्ठी के लोग जिन नद-नदियों के तट पर बसने लगे थे, उन नद-नदियों के सामने दि य टि अक्षरयुक्त शब्दों का इस्तेमाल करते हुए नदियों के नाम खुद ही तय किए थे। उन नदियों में दिहिंग, दिसांग, डिब्रू, दैयांग, दिमौ, दिखौ, डिगारू, दिसै, डांगरी, दुमदुमा, दिराक, दिखारी, दिक्रंग, दिल्लीहर आदि प्रमुख हैं।

सोनोवाल : डिमासा भाषा में सोनोवाल का मतलब उज्ज्वल तथा ऐश्वर्यशाली है। वर्तमान में नेपाल राष्ट्र की पूर्वी दिशा में किराति के रूप में आत्म परिचय देने वाले 'सुनुवार' जनगोष्ठी के लोगों के बीच यह सुनुवार शब्द पाया जाता है। अत: सोनोवाल शब्द तिब्बत-बर्मी भाषा गोष्ठी के सुनुवार शब्द से आया है। आदिमफा द्वारा भोजपत्र में लिखित 'महान जातिर इतिहास' (महान जाति का इतिहास) में उल्लेख है कि चुकाफा के सौमार में प्रवेश करने के वर्षों पहले सोनोवाल लोगों ने सोना का उत्पादन किया था और उस समय मौजूदा सोनोवाल शब्द के बदले 'सुनुवाल' ही था। दूसरी ओर इतिहास के पंडित उपेन्द्र चन्द्र गुहदेव के 'काछारेर इतिवृत्त' (कछार का इतिवृत्त) में इस बात का जिक्र है कि सुनाचि (मौजूदा सुबनसिरि) नदी के तट पर बसे हुए लोगों को 'सुनुवाल' कहा जाता था। उन्होंने यह भी जिक्र किया था कि ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर रहने वाले स्थान को हाबुंग कहा जाता था तथा यहां बसने वाले कछारियों को पहले हाबांग अथवा हाबुंगीया कछारी कहते थे। इन हाबुंगीया कछारियों को सुनुवाल (वर्तमान सोनोवाल) कछारी कहा जाता है।

वर्तमान समाज में शासन व्यवस्था : गांवों के संगठनों की मौलिक बुनियाद श्रीमंत शंकरदेव के अमूल्य अवदान नामघर है। गांव को सुशृंखल रूप से संचालित करने के लिए गांवों में बारीक, आशीर्वदीया, गीत धाइ, मेधि, तामुली, रसोई (रांधनी) आदि पदों की सृष्टि की गई। गांव के सामाजिक काम-काज,

उत्सव-पर्व, तिथि आदि में पदाधिकारी व्यवस्थित रूप से कार्य संचालन करते हैं। सोनोवाल कछारी गांव को नामघर में सार्वजनिक तथा अन्य विभिन्न मामलों पर विचार किया जाता है। विचार के दौरान जुर्माना भरने की स्थिति में कोषाध्यक्ष जुर्माने की राशि सार्वजनिक निधि में जमा रखते हैं।

धर्म : सोनोवाल कछारी समाज के लोग 830 ईसवी से शाक्त या पुरातन धर्म के उपासक थे। किन्तु सन् 1681 (शकाब्द 1600) में अहोम स्वर्गदेव गदापानि के राजकोप में पड़कर श्रीश्री केशवदेव गोस्वामीदेव ने सदिया के सोनोवाल कछारी बहुल क्षेत्र आंठुकढ़ा चापरि, वर्तमान कुंडिल और ब्रह्मपुत्र घाटी क्षेत्र में भूमिगत रहते समय अति कौशलपूर्वक सोनोवाल कछारियों को 'शरण' देकर द्वैत धर्म में विभाजित किया। सत्राधिकर के पास शरण लेने वालों को हिन्दूरीया तथा शरण न लेने वालों को बेहारी के रूप में नामकरण किया गया। उसी समय से सोनोवाल कछारी लोगों के बीच 'गोसाईं-नाम' शामिल हुआ। सत्राधिकार द्वारा शरण दिलाने पर भी संप्रति सोनोवाल कछारी लोग द्वैत धर्मी हैं। शरण लेने के बाद से सोनोवालों के बीच नामघर का प्रचलन हुआ।

सोनोवाल कछारी लोगों की समाज पद्धति : सोनोवाल कछारियों का पहला परिचय जात (सँच) या परिवार, वंश, खेल तथा कुचीया है। वर्तमान में सोनोवालों के बीच 135 जात (सँच) हैं। इनमें से चार या ततोधिक जात (सँच) मिलकर एक-एक वंश होता है। सोनोवाल कछारियों के बीच कुल 25 वंश हैं। इनमें से चौदह वंशों को चुनकर कछारी के राष्ट्रनायक माणिक ने हालाली राज्य का संचालन किया था। सोनोवाल कछारियों के विवाह के मामले में सबसे पहले जात (सँच) तथा वंश का विचार किया जाता है। एक ही जात (सँच) या वंश के लोगों को एक ही परिवार के भाई-भाई के रूप में स्वीकार किया जाता है।

सोनोवाल कछारियों के घर बनाने की पद्धति : हायदांग गीत के अनुसार—'पूर्व में भंडार (भंराल), पश्चिम में गराल, उत्तर में हंडी (चरू) तथा दक्षिण में गो (गरु)।' उनलोगों का बड़घर पूर्व की ओर मुंह करके तथा मारलघर उत्तर-दक्षिण की ओर मुंह करके बनाया जाता है। उत्तरी दिशा में फर्श या पक्का घर का निर्माण किया जाता है। अतिथि के लिए मारलघर का निर्माण किया जाता है।

लोक-साहित्य : आमलोगों द्वारा रचित साहित्य ही लोक-साहित्य है। इस तरह का साहित्य एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंचकर युग-युगांतर से कृष्टि, संस्कृति, इतिहास वहन करता आ रहा है। इसके अलावा मौखिक रूप में रचित, एक के मुंह से दूसरे के मुंह तक पहुंचकर जीवित रहने वाले प्राचीन नाम, पद, मालिता, लोकोक्ति, कल्पित कहानियां आदि उल्लेखनीय कुशल साहित्य है। वर्तमान तक उपलब्ध लोक-साहित्यों में से हायदांग गीत, हुँचरी गीत, बहुवा नृत्य के गीत, आइनाम, धाइनाम, लखिमी नाम, अपेश्वरी नाम, गोसाईं नाम, फूलकोंवर-मणिकोंवर के गीत, जना गाभरू के गीत, दौनी गीत (मरणामरा गीत) बिहू गीत, तरासिया गीत आदि प्रमुख हैं। एक के मुंह से दूसरे के मुंह तक पहुंचने वाला यह तमाम साहित्य फिलहाल लिखित रूप में प्रकाशित होने लगे हैं।

सोनोवाल कछारियों के धार्मिक पूजा-पर्व : सोनोवाल कछारियों में द्वैतधर्म विराजमान है—शाक्त

और वैष्णव। रामायण, महाभारत के समय से ही सोनोवाल समाज के लोग 'किरात' या पुरातन धर्म का पालन करते आ रहे थे। किन्तु सन् 1681 से वैष्णव धर्म का प्रभाव पड़ने पर भी नव वैष्णव धर्म ने सोनोवालों के पूजा-पर्व में कोई खास प्रभाव नहीं फैला सका। पारंपरिक रूप से चली आ रही विभिन्न पूजाओं में—वाथौ पूजा, गजाइ पूजा, गातिगिरि पूजा, स्वर्गदेव पूजा, जलखाइ पूजा, क्षत्रीय शाल की पूजा, बूढ़ा-बूढ़ी शाल की पूजा, बलिया बाबा की पूजा, केंचाईखाती पूजा, कलि आई सबाह, बाटभेटा सबाह, खिनभंगा पूजा, गो-कालिका पूजा, कुलाचामन पूजा, बरचामन पूजा के अलावा लखिमी तोला (उठाने) सबाह, भूर बहाने (उटूओवा) सबाह, बालि सबाह, चेंगेली मछली (माछर) सबाह, नरा सिगा भोज, गरखीया सबाह, बारी चुकर सबाह आदि शामिल हैं। इसी तरह सोनोवालों के विभिन्न सामाजिक कार्य, जैसे—लखिमी सबाह, आइ सकाम, बनारी चुकर सकाम, न-पुरुषीया सकाम, बूढ़ी पालना (पोहा) या चावल खिलाना (खुओवा) सकाम, मृतक को देने, पिंड देने, आयुतोला, आइ सबाह, अपेश्वरी सबाह, आदि विद्यमान हैं। विभिन्न नृत्यों में बहुवा नृत्य, हग्रा नृत्य, लेसेरी, कुलाबूढ़ी नृत्य का हायदांग नृत्य आदि सोनोवालों में काफी प्रासंगिक हैं।

सोनोवाल कछारियों का वर्तमान अवस्थान : प्राकृतिक आपदा तथा विभिन्न पक्षों के साथ लड़ाई लड़कर सोनोवाल कछारियों का एक बड़ा हिस्सा सदिया से आकर ऊपरी असम के मौजूदा ग्यारह जिलों में बसने लगा। ऊपरी असम के ये जिले हैं—लखीमपुर, धेमाजी, तिनसुकिया, डिब्रूगढ़, शिवसागर, जोरहाट तथा गोलाघाट।

असमिया जातीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान देने वाले सोनोवाल कछारियों के कई विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में नीचे संक्षेप में जिक्र किया गया है—

गगन चन्द्र सोनोवाल

साहित्य-संस्कृति के साधक गगन चन्द्र सोनोवाल का जन्म तिनसुकिया जिले के बरहापजान के समीप शुकानगुड़ी चाय बागान में सन् 1926 के 24 दिसंबर को हुआ था। डांगरी गांव निवासी तिलक सोनोवाल उनके पिता और माता थी अदिति सोनोवाल।

माकुम प्राथमिक विद्यालय में उन्होंने शिक्षा जीवन की शुरुआत की। उसके बाद क्रमशः डांगरी मध्य अंग्रेजी विद्यालय में अध्ययन कर डांगरी अंग्रेजी विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। डिब्रूगढ़ के उच्च शिक्षा का केंद्र डिब्रूगढ़ हनुमान बक्स कानै कॉलेज से कला संकाय में प्राक्-स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने अपना शिक्षा जीवन वहीं पर समाप्त किया।

तिनसुकिया जिले के काकपथार में सन् 1947 में मध्य अंग्रेजी विद्यालय में एक प्रतिष्ठापक शिक्षक के रूप में अपने कर्म-जीवन की शुरुआत कर वहीं से सहायक शिक्षक के रूप में 31 दिसंबर 1988 को अवकाश प्राप्त किया।

शिक्षक की नौकरी करने के अलावा सोनोवालदेव ने स्वावलंबी बनने के लिए आजीविका हेतु कृषि कार्य में अपने को नियोजित किया था।

डांगरी स्थित मध्य अंग्रेजी विद्यालय में पांचवीं कक्षा में अध्ययनरत अवस्था में ही गगन चन्द्र सोनोवालदेव ने साहित्य चर्चा शुरू की। विद्यालय में हस्तलिखित पत्रिका के पन्ने पर सन् 1942 में 'मानव सभ्यता आरू क्रम विकास (मानव सभ्यता और क्रम विकास) नामक लेख ग्यारह साल की उम्र में ही लिखा था। उस जमाने में प्रसिद्ध गुवाहाटी के 'तरुण लेखक संघ' के प्रथम प्रकाशित मुखपत्र 'वरुण जागरण' में 'सोनोवाल कछारी' के हायदांग गीत को प्रकाशित किया था। असम साहित्य सभा ने उनके द्वारा रचित 21 कल्पित कहानियों का संकलन 'सोनोवालर साधु' (सोनोवाल की कल्पित कहानियां) का प्रकाशन सन् 1978 में किया था। सोनोवालदेव की साहित्य साधना के उत्कृष्ट निदर्शन स्वरूप अब तक प्रकाशित विभिन्न विषयों के लेख इस प्रकर है—(1) 'सोनोवाल कछारी सकलर ऐतिह्य' (सोनोवाल कछारियों का ऐतिह्य), (2) 'असमर संस्कृतित सोनोवाल सकलर अवदान' (असम की संस्कृति में सोनोवालों का योगदान, (3) लोक साहित्य-संग्रह, जैसे—गीत-मात, हायदांग हुँचरी, आइनाम, अपेचरा नाम, लखिमी नाम आदि। (5) अन्य रचनाओं में हैं तेरह अमूल्य निबंध, (5) भाषणमाला में शामिल हैं उन्नीस भाषण तथा (6) छह कविताएं। ये सभी विचित्र साहित्य संभार गगन चन्द्र सोनोवालदेव के जीवन की कीर्ति है। सांस्कृतिक जीवन के गुरु विष्णु प्रसाद राभा के साथ मिलकर उन्होंने सोनोवाल कछारी के समाज जीवन के इतिहास स्वरूप 'हुँचरी गीत' को सैखोवा के बिसनी गांव से सन् 1942 में संग्रह किया था।

उन्होंने काकपथार में प्रथम शाखा साहित्य सभा का गठन किया था। अविभाजित डिब्रूगढ़ जिले के अध्यक्ष तथा तिनसुकिया जिले के संस्थापक अध्यक्ष के पद को भी सुशोभित किया था। असम साहित्य सभा के कई अधिवेशनों में उन्होंने प्रतिनिधि के रूप में भी भाग लिया था। असमिया भाषा-साहित्य-संस्कृति के एक निष्ठावान कर्मी के रूप में स्वीकृति देकर असम सरकार ने सोनोवालदेव को साहित्यिक पेंशन भी प्रदान किया। गगन चन्द्र सोनोवाल अखिल असम जन-संस्कृति परिषद के प्रथम कार्यकारी अध्यक्ष थे। बाद में उन्होंने अध्यक्ष पद की जिम्मेवारी भी बखूबी निभाई।

खुद की प्रतिष्ठा व प्रतिभा की प्रशंसा के प्रति निस्पृह व नीरव-कर्म साधना में तन-मन से जुड़े सोनोवालदेव का 27 अक्तूबर, 2009 को परलोकगमन हुआ। अपने जीवनकाल में किए गए सामाजिक कल्याणकामी तथा प्रगतिशील कामकाज से गगन चंद्र सानोवालदेव हमारे बीच चिरस्मरणीय रहेंगे।

परशुराम सोनोवाल

परशुराम सोनोवाल का जन्म 25 मई, सन् 1904 को नगाघुलि चाय बागान में हुआ था। उनके पिता थे पंचानन सोनोवाल और माता का नाम था गुटिमाला सोनोवाल। ग्रेहेम बाजार निम्न बुनियादी पाठशाला में परशुराम सोनोवालदेव ने प्राथमिक शिक्षा की शुरुआत की। उसी स्कूल से अव्वल दर्जे में उत्तीर्ण होकर उन्होंने सरकारी बालक उच्च माध्यमिक विद्यालय में दाखिला लिया। उसी स्कूल से उन्होंने सन् 1924 में

प्रथम विभाग में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा कॉटन कॉलेज से आई.ए. कला संकाय में प्रथम विभाग में उत्तीर्ण होकर कोलकाता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में दाखिला लिया। उसी कॉलेज से सन् 1928 को इतिहास विषय में सम्मान (मेजर) के साथ बी.ए. परीक्षा प्रथम विभाग में उत्तीर्ण की। सन् 1932 में उन्होंने 'यूनिवरसिटी ऑफ कलकत्ता' से इतिहास विषय में स्नातकोत्तर की परीक्षा में प्रथम विभाग में द्वितीय स्थान प्राप्त करने के साथ ही उसी विश्वविद्यालय से एलएलबी में प्रथम विभाग में द्वितीय स्थान हासिल किया।

परशुराम सोनोवाल सिर्फ लिखाई-पढ़ाई में ही निपुण थे ऐसा नहीं, वे एक ऐसे व्यक्ति थे जो क्रीड़ा, संगीत साधना, लेखक (कहानी, निबंध) आदि के साथ-साथ सुकुमार कला में भी निपुण थे। उनके द्वारा लिखित कहानी आदि उस समय की पत्रिका Illustrated Weekly of India में प्रकाशित हुई थी तथा महत्वपूर्ण चित्रों के स्केच वे खुद अंकित किया करते थे।

जिस समय असम में टेनिस, फुटबॉल तथा हॉकी खेलों की कोई पहचान तक न थी, उस समय परशुराम सोनोवाल अपने बलबूते पर प्रेसिडेंसी कॉलेज में फुटबॉल, हॉकी तथा टेनिस में एक अलग स्थान दखल करने में कामयाब हुए थे। यह भी सुनाई पड़ता है कि 'यूनिवरसिटी ऑफ कलकत्ता' के हॉकी दल का अधिनायक निर्वाचित होकर उन्होंने कई प्रतियोगिताओं में अपनी निपुणता दिखाई थी तथा असम में भी इसका प्रसार किया था।

उन्होंने 14 अप्रैल, सन् 1934 को अपना कर्म-जीवन शुरू किया। उसी तारीख में उन्होंने डिब्रूगढ़ अधिवक्ता संघ में 35 नंबर के पंजीयन द्वारा अपना नाम दर्ज किया। इस अधिवक्ता संघ में नाम पंजीयन कराने वाले एमए, एलएलबी परशुराम सोनोवाल पहले असमिया व्यक्ति हैं।

परशुराम सोनोवाल कई सामाजिक काम-काज से भी जुड़े थे। अंग्रेजों के शासनकाल में असम में जिन आधुनिक जीवन-यापन की शैली बनने लगी थी, उन सभी में परशुराम सोनोवाल ने काफी मदद का हाथ बढ़ाया था। उच्च शिक्षा के लिए डिब्रु नगर के कई नागरिकों ने एक कॉलेज की स्थापना का जो फैसला किया था उसमें परशुराम सोनोवाल का काफी योगदान रहा। उन्होंने एक साल तक नि:शुल्क पाठदान का प्रस्ताव रखते हुए एक साल तक अकेले ही कॉलेज के इतिहास विभाग की जिम्मेवारी बखूबी निभाई थी।

सोनोवालदेव ने डिब्रुगढ़ लोकल बोर्ड के सक्रिय सदस्य, असम मेडिकल स्कूल बोर्ड के सदस्य, जिला ट्राइबल लीग के अध्यक्ष समेत डिब्रूगढ़ अधिवक्ता संघ के सचिव के रूप में भी दो दफे कार्यवाही की थी। आजादी के बाद के समय में असम की पिछड़ी जाति व जनगोष्ठियों की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक दिशाओं को आगे ले जाने के लिए गठित अखिल असम ट्राइबल लीग में उनका अहम योगदान रहा। इसके लिए उन्होंने अनेक त्याग भी स्वीकार किए।

1960 ईसवी के एक अक्टूबर को अपनी धर्मपत्नी के साथ ही तीन पुत्रों व पांच पुत्रियों समेत भरा-पूरा परिवार व शुभचिंतकों को छोड़कर वे इस दुनिया से महाप्रयाण कर गए।

वरेण्य साहित्यकार तथा शिक्षाविद् योगेश दास

प्रात:स्मरणीय शिक्षाविद् तथा प्रख्यात साहित्यकार योगेश दास का जन्म सन् 1927 को दुमदुमा के हांहचरा चाय बागान में हुआ था। उनके पिता का नाम सूर्यकांत दास तथा माता का नाम चितामणि दास था। चाय बागान के नयनाभिराम प्राकृतिक वातावरण में पले-बड़े योगेश दास ने चाय बागान के प्राथमिक विद्यालय में ही अपना शिक्षा जीवन प्रारंभ किया। उन्होंने दुमदुमा मिडल विद्यालय से सुख्याति के साथ

उत्तीर्ण होकर डिब्रूगढ़ जॉर्ज-इंस्टीट्यूशन, मौजूदा वाग्मीबर फुकन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1954 को अति सुख्याति के साथ प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1949 को कॉटन कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त कर गौहाटी विश्वविद्यालय से सन् 1953 को स्नातकोत्तर की उपाधि हासिल की। छात्रावस्था से ही कहानी की रचना करते हुए उन्होंने एक निपुण कहानीकार के रूप में अपना परिचय दिया था। सन् 1953 में ही उनके द्वारा रचित उपन्यास 'सँहारि पाइ' का प्रकाशन हुआ था।

कर्म-जीवन : दुमदुमा हाईस्कूल में शिक्षक की नौकरी से अपना कर्म-जीवन शुरू करने वाले योगेश दास ने सन् 1953 से 1988 तक गुवाहाटी के बी.बरुवा महाविद्यालय में अध्यापन कार्य शुरू कर असमिया विभाग के विभागाध्यक्ष के रूप में अवकाश प्राप्त किया। ज्ञान की साधना ही उनके जीवन के लक्ष्य व उद्देश्य थे।

शिक्षक की नौकरी भले ही उनके हृदय का आवेदन तथा जीवन की पवित्र अभिलाषा थी किंतु इसके समानांतर असमिया साहित्य को आगे ले जाकर विश्व दरबार में प्रतिष्ठित करने की उद्दीपना तथा उनके असीम ज्ञान की चर्चा इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होंने अध्यापन, साहित्य-साधना, ज्ञान के प्रचार व प्रसार को अपने जीवन के व्रत के रूप में अपनाया था। इसलिए ही अपने कर्त्तव्य तथा दायित्व के प्रति लापरवाही बरते बिना वे पत्रकारिता की दुनिया से भी जुड़कर अति निष्ठा से देश-सेवा, जन-सेवा तथा समाज-सेवा में जुट गए थे। 'नतून असमिया' अखबार के उप-संपादक, 'दैनिक असम' अखबार के सहायक प्रधान संपादक तथा 'प्रहरी' व 'अधिनायक' के संपादन कार्य से भी वे जुड़े हुए थे। वे 'असम साहित्य सभा पत्रिका' के भी संपादक थे।

साहित्य-कृति : योगेश दास एक स्वनामधन्य, सफल तथा मानवीय मूल्यबोध से परिपूर्ण साहित्यकार थे। योगेश दास रचित कहानी-संकलनों में—'पपीया तरा' (1956), 'डावरर आँरे आँरे' (1958), 'त्रिवेणी' (1961), 'मदारर वेदना' (1963) तथा 'हाजार लोकर भीर' (1965) शामिल हैं। उनके उपन्यासों में—'सँहारि पाइ' (1953), 'डाबर आरु नाइ' (1955), 'जोनाकीर जुइ' (1956), 'उत्कण्ठ उत्कष्ठ' (1960), 'छाँ जुई खेदि' (1961), 'निरुपाय निरुपाय' (1963), 'एमुठि धूलि' (1965), 'हेजार फूल' (1967), 'अवैध' (1972), 'जुइर धोंवा' (1972), 'नरेश, मालती' (1977) तथा 'रजनी विदूर' (1981) आदि शामिल हैं। इसके अलावा उन्होंने और कई अन्य ग्रंथों की भी रचना की थी। उनके अंग्रेजी ग्रंथ 'Folk Lore of Assam', अनूदित ग्रंथ—'बने बने' व जीवनी ग्रंथ—'हेम बरुवा' आदि हैं।

सम्मान तथा पुरस्कार : सन् 1985 के 8, 9 तथा 10 फरवरी को उन्होंने बिहपुरिया के श्रीश्री माधवदेव क्षेत्र में आयोजित असम साहित्य सभा के 51वें अधिवेशन की अध्यक्षता की। साहित्य सभा अधिवेशन में अध्यक्ष के अभिभाषण में उन्होंने तत्वज्ञ व चिरस्मरणीय भाषण प्रदान करते हुए एक महान चिंतक का परिचय दिया था।

यशस्वी गद्यशिल्पी योगेश दास ने अपने जीवन में अनेक पुरस्कार आदि प्राप्त किए। सन् 1980 में 'पृथिवीर असुख' नामक ग्रंथ के लिए उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। सन् 1986 में 'आकौ बने बने' ग्रंथ के लिए 'मोक्षदानन्द पाठक शिशु साहित्य पुरस्कार' तथा सन् 1989 में 'एनाजरी' ग्रंथ के लिए 'सीतानाथ ब्रह्मचौधरी पुरस्कार' प्राप्त हुआ। सन् 1994 में उन्हें 'असम उपत्यका साहित्य पुरस्कार' से नवाजा गया।

इस महान स्थितप्रज्ञ तथा वरेण्य व्यक्ति का सन् 1999 के 9 सितंबर को देहावसान हो गया।

असम के पूर्व मुख्यमंत्री योगेन्द्र नाथ हजारिका

असम के पूर्व मुख्यमंत्री योगेन्द्र नाथ हजारिका असम के लोगों के बीच योगेन हजारिका नाम से अधिक जानकार हैं। वे सभी गुणों से विभूषित थे। पहनावे में सफेद खादी पोशाक, सुंदर शारीरिक गठन, धीर-स्थिर, गंभीर, सभी क्षेत्र में अनुशासित व सुशृंखल, बातचीत में अति संयम, अति भद्र आचार-व्यवहार, बुद्धिदीप्त व्यक्तित्वशील गुणों से समृद्ध एक गौर वर्ण के ऊंचे शरीर तथा आसानी से सभी को आकर्षित कर पाने वाले सुशील व्यक्ति थे। ओस की बूंद की तरह अति पवित्र हृदय उनके चरित्र का भूषण है।

वे थे एक कृति छात्र, आदर्श समाजवादी, सु-संगठक, सु-लेखक, बुद्धिजीवी, पत्रिका संपादक, कानूनविद्, दक्ष सांसद, भारत के विदेश मंत्रालय के प्रथम संसदीय सचिव, निपुण राजनीतिज्ञ, विधायक, दक्ष प्रशासक, विधानसभा के अध्यक्ष तथा असम के पूर्व मुख्यमंत्री।

असम के डिब्रूगढ़ जिले के टेंगाखात क्षेत्र के पुरणिखंगीया गांव में 24 फरवरी, 1924 को एक गरीब परिवार में योगेन हजारिका का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम गोलाप चन्द्र हजारिका तथा माता थी रत्ना हजारिका। उनकी धर्मपत्नी का नाम वीणा हजारिका तथा इकलौता पुत्र मनजीत हजारिका हैं।

आर्थिक तंगी के कारण उनका परिवार जन्मस्थान टेंगाखात से बूढ़ीदिहिंग के तट पर स्थित हातीबंधा गांव में चला आया था। हातीबंधा गांव में उस समय कोई प्राथमिक विद्यालय न होने के कारण योगेन हजारिका ने टेंगाखात घाँहि गांव के अपने ही एक रिश्तेदार परिवार के घर में रहकर पास ही स्थित भेकोवाजान प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। आर्थिक तंगी के कारण योगेन हजारिका को चना-बादाम बिक्री करते हुए खर्च निकालकर अध्ययन करना पड़ता था। उस समय के दो दयालू व्यक्ति डिब्रुगढ़ लोकल बोर्ड के चेयरमैन, चाय किसान डम्बरूधर सइकिया तथा डिब्रुगढ़ के विशिष्ट कानूनविद्, शिक्षाविद् व समाजसेवी परशुराम सोनोवाल की प्रेरणा तथा आर्थिक मदद से उन्होंने सन् 1941 को डिब्रुगढ़ सरकारी बालक हाईस्कूल से मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सन् 1946 को कॉटन कॉलेज से स्नातक, 1949 को कलकत्ता विश्वविद्यालय से अर्थनीति शास्त्र में स्नातकोत्तर (एम.ए.) तथा 1952 को कानून की डिग्री प्राप्त की। उल्लेखनीय है कि योगेन हजारिका सोनोवाल जनगोष्ठी के दूसरे एम.ए. तथा बी.एल. डिग्री हासिल करने वाले तीसरे व्यक्ति थे।

सन् 1952 को स्वाधीन भारत का पहला आम चुनाव आयोजित हुआ था। इस चुनाव में हजारिकादेव डिब्रूगढ़ लोकसभा क्षेत्र से जीतकर सांसद चुने गए थे। वे सन् 1967 तक लगतार लोकसभा के सांसद रहे। मालूम हो कि प्रथम आम चुनाव से ठीक पहले सन् 1951 को वे अखिल असम ट्राइबल लीग के नेतृत्व में थे, उस समय एक साल तक अस्थायी सांसद के मनोनीत सदस्य रहे। वे लोकसभा के एक दक्ष सांसद थे। ऐसे दक्ष गुण के कारण वे सन् 1952 से 1967 तक विदेश मंत्रालय के संसदीय सचिव के पद पर नियुक्त थे।

संसदीय राजनीति से हजारिकादेव ने अस्सी के दशक में असम के राजनीतिक क्षेत्र विधानसभा में प्रवेश किया। विधानसभा चुनाव में डिब्रूगढ़ जिले के दुलियाजान क्षेत्र से जनता दल के टिकट पर चुनाव लड़कर वे असम विधानसभा के लिए चुने गए तथा असम विधानसभा के सम्मानीय अध्यक्ष पद पर आसीन हुए। उसके बाद सन् 1979 को वे 91 दिनों के लिए असम के मुख्यमंत्री भी रहे।

योगेन हजारिकादेव ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से कानून की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने सन् 1952 को कानून की डिग्री हासिल की। कानून की डिग्री हासिल करने के बाद हजारिकादेव ने सन् 1952 में कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत शुरू की। उसी वर्ष उन्होंने डिब्रूगढ़ आकर बार लाइब्रेरी में ज्वाइन कर लिया था। इसके अलावा उन्होंने गौहाटी हाईकोर्ट में भी वकालत की थी। राजनैतिक जीवन से संन्यास लेने के बाद उन्होंने भारत के सर्वोच्च न्यायालय में भी वकालत की थी। उल्लेखनीय है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय में हजारिकादेव सोनोवाल कछारी जनगोष्ठी के एकमात्र अधिवक्ता थे।

हजारिकादेव ने एक जनजाति नेता के रूप में जनजाति लोगों के सर्वांगीण विकास में खुद को समर्पित कर दिया था। जनजाति लोगों के सर्वांगीण विकास के लिए गठित कुछ दल-संगठनों के साथ वे कैसे जुड़े हुए थे उसका एक संक्षिप्त आभास नीचे दिया गया है।

(क) सन् 1933 में असम के मैदानी इलाके में बसे सभी जनगोष्ठियों का राजनैतिक संगठन 'ट्राइबल लीग' का गठन हुआ था। इस ट्राइबल लीग के आदर्श ने हजारिकादेव को गंभीर रूप से प्रभावान्वित किया था। ऐसी हालत में ट्राइबल लीग के तत्कालीन सचिव भीमबर देउरी तथा सदस्य परशुराम सोनोवाल के कार्यकाल में हजारिकादेव ने उन लोगों के संस्पर्श में आकर ट्राइबल लीग के काम में खुद को शामिल किया था।

(ख) उन्होंने सन् 1940 में 'अखिल असम प्रगतिशील कछारी सम्मिलन' के सचिव का दायित्व वहन किया था।

(ग) हजारिकादेव के गुवाहाटी में अध्ययनरत रहते समय All Assam Plains and Hills Tribe Students Association नाम से एक संगठन का जन्म हुआ था। हजारिकादेव ने इस संगठन के अध्यक्ष के दायित्व में रहकर संगठन के सर्वांगीण विकास में विशेष योगदान दिया था।

योगेन हजारिका ने साहित्य चर्चा का संपादन करने के अलावा असमिया तथा अंग्रेजी में लेख आदि भी लिखे थे। 'भारतर स्वाधीनतार चमु बुरंजी तथा गण परिषद' (भारत की आजादी का संक्षिप्त इतिहास तथा गण परिषद) तथा अंग्रेजी भाषा में लिखित 'Consideration on twenty five Million Soul of Trial India' हजारिकादेव के दो अति उल्लेखनीय ग्रंथ हैं।

ज्ञान पिपासु हजारिकादेव ने अपने सुदीर्घ जीवनकाल में कई मूल्यवान ग्रंथों को खरीदकर उन सबों का अध्ययन करते हुए अपने ज्ञान का भंडार समृद्ध किया था। उन्होंने अपने जीवनकाल में संग्रह किये गये दो हजार से भी अधिक मूल्यवान ग्रंथों को डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान विभाग तथा टेंगाखात महाविद्यालय के पुस्तकालय में दान दिया था।

पहाड़-मैदान के मिलन के साधक जनजाति नेता व असमिया जाति के नि:स्वार्थ साधक योगेन्द्र नाथ हजारिका 30 सितंबर, 1997 को अपने जीवन नाटक को समाप्त कर इस संसार से परलोक गमन कर गए।

प्रश्नावली :

1. डिमासा भाषा में सोनोवाल का मतलब क्या है ?
2. सोनोवाल कछारियों लोग किस धर्म के उपासक थे ?
3. सोनोवाल कछारियों के लोक-साहित्यों के बारे में लिखिए।
4. सोनोवाल कछारियों की समाज-पद्धति के बारे में संक्षेप में वर्णन कीजिए।
5. सोनोवाल कछारियों को क्यों द्वैत धर्म का कहा जाता है ?
6. टिप्पणी लिखिए :
   (क) गगन चन्द्र सोनोवाल (ख) परशुराम सोनोवाल
   (ग) योगेश दास (घ) योगेन्द्र नाथ हजारिका

● ● ●

हाजंग

हाजंग असम के मैदानी इलाके में निवास करने वाली जनजाति का एक समुदाय है। वे लोग खास तौर पर ग्वालपाड़ा, धुबड़ी जिले के दक्षिण शालमारा-मानकाचार महकमे में रहते हैं। इसके अलावा वे ब्रह्मपुत्र घाटी के दूसरे लगभग सभी जिलों में भी रहते हैं। मेघालय के पश्चिम और दक्षिण गारो पहाड़ जिले और खासिया पहाड़ जिले के समतल अंचल में भी काफी तादाद में हाजंग लोग रहते हैं। भारतीय संविधान के सन् 1950 के कानून के तहत हाजंग लोगों को अविभाजित असम के पर्वतीय स्वशासित जिलों में अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिला था। बाद में भारतीय संविधान के संशोधित 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति निर्देश (संशोधित) अधिनियम 2002' के तहत असम के मैदानी अनुसूचित इलाकों में रहने वाले हाजंग लोगों को भी मैदानी जनजाति का दर्जा दिया गया।

नृतत्वविदों के अनुसार हाजंग लोग इंडो-मंगोलीय जनगोष्ठी से संबंधित हैं। कहा जाता है कि वे लोग तिब्बत से आए और कोचविहार के उत्तर में भूटान सीमा पर 'हाजंग' नामक स्थान पर कई सदियों तक रहे। कुछ लोगों का मत है कि वे लोग तिब्बत से आकर कामरूप जिले के हाजो नामक स्थान पर बस गए थे। बाद में ये लोग धीरे-धीरे ग्वालपाड़ा जिले की ब्रह्मपुत्र घाटी तक आए और दक्षिण किनारे लखीपुर के पास सुवारकोना से दक्षिण की तरफ धुबड़ी जिले के मानकाचार-शालमारा पार्वत्य समतल भूमि और बांग्लादेश के मैमनसिंह जिले के उत्तर के पर्वतीय अंचल में पसरते गए। वहीं पूरब दिशा में वे खासिया पहाड़ की तलहटी से लेकर श्रीहट्ट जिले तक फैलते गए। उन लोगों के पुराने असम की एक निर्धारित सीमा रेखा के अंदर लंबे समय तक रहने का उल्लेख मिलता है। इस भूखंड की सीमा थी-उत्तर में ग्वालपाड़ा जिले के नजदीक का (1) शुवारकोना, पूरब में श्रीहट्ट या शिलेट जिले का (2) जामकोना, दक्षिण में मैमनसिंह जिले का (3) जंकोना और पश्चिम में मानकाचार के नजदीक का (4) मरकोना नामक चार हाजंग गांव हैं। 19वीं सदी के अंतिम हिस्से तक वे लोग इसी दायरे में सीमित थे। बाद में राजनीतिक, आर्थिक आदि विभिन्न कारणों से वे लोग दूसरे इलाकों में बसते चले गए।

दूसरी ओर आजादी के बाद सन् 1964 में पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) से बंगाली हिंदू, गारो, कोच, डालू, बानाई आदि के साथ गारो पहाड़ के सीमावर्ती मैमनसिंह जिले के उत्तरांचल से हाजंग लोग शरणार्थी बनकर असम आए। ये सभी शरणार्थी असम के विभिन्न हिस्सों में सरकार से पुनर्वास की सुविधा लेकर आ रहे हैं। हाजंग लोग मौजूदा असम के ग्वालपाड़ा, धुबड़ी, कामरूप, बास्का, उदालगुड़ी, चिरांग, दरंग, लखीमपुर, धेमाजी, नगांव आदि जिलों में कम संख्या में बसे हुए हैं।

नामकरण–हाजंग नाम की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न व्यक्तियों के अलग–अलग मत हैं। कहा जाता है कि 'हाजंग' नामक स्थान से प्रव्रजित होकर आने की वजह से उन लोगों को हाजंग कहकर संबोधित किया गया। कुछ लोगों का कहना है कि उनके पूर्वज का नाम 'हाजो' था और उनके नाम पर ही इस जनजाति का नामकरण हाजंग हुआ। एक राय यह भी है कि पड़ोसी गारो लोगों ने यह नामकरण किया है। इस जनगोष्ठी की मूल जीविका कृषि है। हाजंग लोग कठोर मेहनत करते हुए समतल भूमि में खेती करते थे। समतल भूमि की गहरी जमीन से ओतप्रोत रूप से जुड़े होने के कारण गारो लोगों ने इस जनगोष्ठी का नामकरण हाजंग नाम से किया है। गारो भाषा में 'हा' शब्द का अर्थ मिट्टी और 'जंग' शब्द का अर्थ मिट्टी तथा कीट होता है। इसी तरह हाजंग शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है।

सामाजिक वर्गीकरण–पहले वे लोग छह वर्गों में विभाजित थे–हारांग पारिया, भजालू पहाड़िया, माणिक पहाड़िया, टेपर पहाड़िया, सातदल पहाड़िया और मांजी पारिया। फिलहाल इस तरह के वर्ग नहीं मिलते। वर्तमान में 5 वर्ग मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं–दस कहानिया, सुसंगी, मस पहाड़िया, 4 कराईबारिया और बारोहजारी। फिलहाल इन वर्गों के भी एकजुट हो जाने से इनका अपना वैशिष्ट्य समूह एकीभूत हो गया और वह एक सामाजिक विशिष्टता में परिणत हो गया।

सामाजिक बंधन–परंपरागत रूप से हाजंग लोग तीन समाज बंधन के जरिये समाज का संचालन करते हैं–गांव गियाती, पांच गियाती और जोवार या साकुला। समाज के किसी भी विवाद का हल पहले गांव का 'गियाती' या प्रधान करता है। अगर विवाद हल न हो तो पांच 'गियाती' या मुखिया बैठकर हल खोजते हैं। कोई जटिल मसला होने पर जोवार या साकुला के प्रधान मिलकर हल खोजते हैं।

घर–द्वार : हाजंग लोग खुले में घर बनाना पसंद करते हैं। वे खेत से कुछ दूरी पर ऊंचे स्थान पर घर बनाते हैं, बीच में एक आँगन होता है, उसके चारों ओर घर बनाए जाते हैं। उनका एक 'माइजौ घर' (बर घर), एक 'चांग घर (भंडार), एक 'आखलि घर' (रसोई), एक 'गुलि घर' (मवेशी घर) और आँगन में एक कास्री घर होता है। कास्री घर बैठकखाना होता है, जो पहले हाजंग लोगों का 'डेकचांग' (मचान घर) होता

था। एक जमाने में गाँव के मुखिया या समृद्ध व्यक्ति के घर में ही कास्री घर होता था। कास्री घर में गाँव के अविवाहित युवा ही रात को सोते थे। गाँव में पुरुष मेहमान आने पर कास्री घर में रात को रहने दिया जाता था। आँगन के पूर्वी हिस्से में गृहदेवता 'बाईस या वास्तु' और कानीदेऊ (पद्मादेवी) का पूजा स्थल होता है। वैष्णव मत को मानने वाले हाजंग लोगों के आँगन में हरिघर और तुलसी का पौधा होता है।

हाजंग महिलाएं कर्मठ गृहिणी के अलावा कुशल बुनकर भी होती हैं, जो फसल काटने, मछली पकड़ने में पारंगत होती हैं। उनके बहुरंगे वस्त्र को 'रांगा पातीन' कहते हैं। उनके पारंपरिक कपड़े बुननेवाले यंत्र (मशीन) का नाम 'बाना' है। 'बाना' पारंपरिक रूप से तैयार किया गया बांस का हस्तकरघा है। हाजंग बुनकार महिलाएं अपने लिए लाल, नीला, हरा, बैंगन, काला आदि विभिन्न रंगों के मिश्रण से आकर्षक रूप में 'रांगा पाटिन' बुनने के अलावा पुरुषों के लिए 'भेझा कापुर' (छोटा कुरता), फूला आगमन, पास्रा, फूला कानपेस आदि बुनती हैं। सामाजिक उत्सव में पुरुषों के समान युवतियों, अधेड़ स्त्रियों और बुजुर्गों की भी हिस्सेदारी होती है। मारो (मारै) पूजा, देऊधनी, काति पूजा, गुपनी गोहेन आदि नृत्य-गीत में भी हाजंग महिलाओं की विशेष भागीदारी होती है। उनके जेवर के नाम हैं-बाहु में काटाबाजू, पैर में बाक, गुंजरी, ठेंगपाता, कान में करमफूल, नाक में नलस, नाकफूल, गले में सिकीसरा, हारमाला, हासूली, हाथ में बयला, शांका (शंख) और उँगली में अंगूठी।

हाजंग पुरुष की पोशाकें अति साधारण हैं। वे सफ़ेद, नीला या चितकबरा रंग का वस्त्र 'भेझा निंगति' पहनते हैं। वे शरीर में बुक्सली (जामा) और ठंड के मौसम में गले में फुलौ कांपेस (मफलर) और आउलान (चद्दर) पहनते हैं।

हाजंग लोगों के जन्म, विवाह तथा मृत्यु से जुड़े विभिन्न आचार-अनुष्ठान अब भी प्रचलित है।

उनके समाज में चार तरीके से विवाह होता है-सामाजिक विवाह (देख-सुनकर किया गया विवाह), दाय परा या ठेंगपांगरानि (विवश होकर लड़की को स्त्री के रूप में अपनाना), मनामनि (प्रेम विवाह) और हांगा या सांगा (विधवा और विधुर का विवाह)।

उत्सव-पर्व - हाजंग लोग मूलत: कृषिजीवी होते हैं। खेती से जुड़े कई लोकाचार उनके बीच प्रचलित हैं। जैसे-'गुसिपुता' (नए बीज रोपना), 'आग आना' (प्रथम फसल काटना), नवान्न (नया खोवा), काति गासा (काति बिहू) में खेत में दिये जलाना, फसल काटकर घर लाना और 'पुषणौ' (माघ बिहू) में चिड़वा-पीठा खाना, संगराणि या विषुवा (रंगाली बिहू) में बैल को नहलाना, कृषि उपकरण को धोकर आंगन में इकट्ठा करते हुए धूप-दीप जलाकर प्रणाम करना आदि। इसके अलावा बैशाख में बाईस या वास्तु पूजा, आषाढ़ में 'सातोवार छुवा' (अंबुबासी) माना, सावन में 'बरतो' (कानीदेव पूजा), शरत में यात्रा पूजा,

भुई मागा, सोरमागा (सर खेला) उत्सव, कार्तिक महीने के आखिरी दिन काति पूजा, पौष महीने में धान काटते समय खेत में भालुक मागा, धान काटकर घर लाने के बाद ठंग्बौ मागा, पुषणौ आदि उत्सवों का आयोजन किया जाता है। शरत के अंतिम हिस्से में दीपावली से एक हफ्ते तक गांवों में सोरमागा उत्सव मनाया जाता है। कृषिजीवी हाजंग युवाओं का यह समय अवकाश-विनोद का है। युवा इस दौरान ढाकी (ढोल), दोतारा, बांसुरी, ताल आदि बजाते हुए घर-घर नृत्य-गीत करते हैं। उनके नृत्य-गीत के नाम हैं-लेबाताना, जाखामारा, भागा नाउका, देवी युद्ध आदि। 'लेबाताना' नृत्य-गीत युवक-युवतियों के प्रेममूलक, व्यंग्य-कौतुक तथा श्रमजीवी जीवन से चित्र के परिस्फुट है। सोरमागा या सर खेला उत्सव में नृत्य-गीत गाने वाला दल गृहस्थ से चंदा आदि संग्रह करता है।

धर्म-हिन्दू धर्मावलम्बी होते हुए भी वे लोग पारंपरिक जनजातीय धर्म से भी अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। प्रकृति की विभिन्न अशुभ क्रिया-कलाप, अपाय-अमंगल से परित्राण पाने के लिए हाजंग लोग विश्वास व भक्ति के साथ विभिन्न देव-देवी की पूजा करते हैं। बाईस या वास्तुदेवता उनके प्रधान देवता हैं। हर गांव के लोग एकजुट होते हैं और सामूहिक रूप से उनकी पूजा करते हैं। वैशाख महीने में इस पूजा का आयोजन किया जाता है। गांव के पास अलग स्थान पर बाईस देवता का पूजा स्थल बनाया जाता है। बाईस या वास्तुदेवता के साथ ही अन्य कई देव-देवियों की स्थापना श्रेणीबद्ध रूप से की जाती है।

उनका धर्म आचरण दो प्रकार के हैं-हाजंग शाक्त और खाटल (वैष्णव)। जनजातीय आस्था से जुड़े हाजंग लोग शाक्त हैं और वैष्णव मत मानने वाले खाटल हैं। शाक्त मांसाहारी हैं और घरेलू मदिरा का भी सेवन करते हैं। दूसरी ओर खाटल वर्ग के लोग वैष्णव आचरण में विश्वास रखते हैं। बैष्णव पंथी हाजंग लोगों के किसी-किसी के घर में शालग्राम विग्रह हैं और वंशानुगत रूप से इस शालग्राम विग्रह की विष्णु देवता के तौर पर रोज पूजा-अर्चना की जाती है। वैष्णव हाजंग के घर में विष्णु की पूजा होती है और वे जन्माष्टमी, राधा अष्टमी, रास यात्रा, दोल यात्रा आदि उत्सव-पर्व मनाते हैं। भागवत, रामायण, महाभारत, गीता आदि का पाठ करते हुए कृष्ण-स्तुति के जरिए नाम-कीर्तन करते हैं।

भोजन-हाजंग लोग भोजनविलासी तथा मांसाहारी है। उनके प्रिय खाद्य पदार्थों के नाम हैं-बांस की जड़, कच्चू आलू, कच्चू पत्ते 'थोरा हिदूल' (सूखी मछली), साग-सब्जियों का शकुटा, काछ-दूरा-मासांग (मांस), 'लेबा शाक' (चावल पीसकर पकाई गई सब्जी), 'बीसी भात' (भांप पर पकाया गया 'बोरा' चावल का भात), 'बुकुनी भात', 'डिंगपोरा' (काको बांस के चूंगा में पकाया जाने वाला 'बोरा' चावल का भात)।

हाजंग लोग तिब्बत–बर्मी भाषा परिवार की बोड़ो शाखा से जुड़े हैं। आर्य संस्कृति के गहरे प्रभाव से उनकी भाषा भी बदलती गई है। उनकी भाषा मौलिक बिम्ब, शैली, व्याकरण शब्द भंडार, मुहावरे, लोकोक्ति आदि की विशेषता से युक्त है। वर्तमान में उनकी भाषा पर कामरूपिया और ग्वालपड़िया उपभाषा का असर नजर आता है।

प्रश्नावली

1. हाजंग लोग किस जनगोष्ठी से संबन्धित हैं?
2. हाजंग लोगों को पहाड़ी स्वायत्तशासित जिलों में कब अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिला?
3. असम के प्रधानत: किन किन जिलों में हाजंग लोग रहते हैं?
4. हाजंग लोगों की मूल जीविका क्या है?
5. वास्तुदेव की पूजा कब होती है?
6. हाजंग समाज में कास्री घर का तात्पर्य क्या है?

● ● ●

नाथ योगी

नाथ या योगी संप्रदाय असम एवं भारत का एक सबसे प्राचीन जनसमुदाय है। आर्य सभ्यता से बहुत पहले से इस संप्रदाय के लोग भारत के विभिन्न राज्यों में रहते आ रहे हैं। नाथ या योगी संप्रदाय मुख्यत: शैवपंथी और प्राचीनकाल में वे जो धर्म का पालन करते थे, उसका नाम था शैव अथवा व्रात्य धर्म। शैवधर्म का मुख्य दर्शन योगासन मार्ग पर आधारित है। योग से ही योगियों की उत्पत्ति हुई थी। नाथ परंपरा के अनुसार आदिनाथ अर्थात् भगवान शिव ही प्रथम नाथ थे। महायोगी मत्स्येंद्रनाथ और गुरु गोरखनाथ नाथ लोगों के दो गुरु थे। नाथ योगी संप्रदाय गुरु-शिष्य परंपरा में विश्वास करते हैं। नाथ योगी लोगों के दो भाग हैं - पहला है गृहस्थ योगी और दूसरा है संन्यासी योगी। संन्यासी योगी ही नाथ धर्म का प्रचार करते हैं। नाथ लोगों के गुरु गोरखनाथ हठयोग मार्ग के आविष्कारक हैं। गुरु गोरखनाथ द्वारा शुरू किए गए योग साधना मार्ग पर स्वाम स्वात्माराम के द्वारा रचित पुस्तक 'हठयोग प्रदीपिका' संपूर्ण विश्व का योग संबंधित एक अनूठा ग्रंथ है। नाथ लोगों के आदि गुरु महायोगी मत्स्येंद्रनाथ कामरूप के निवासी थे तथा वे कामाख्या मंदिर में तंत्र एवं योग साधना में लीन रहते थे। उस समय कामाख्या मंदिर कामाख्या पीठ के नाम से प्रसिद्ध था। नेपाल में प्रचलित लोककथा और पौराणिक आख्यान के अनुसार नेपाल में हुए अनावृष्टि और अकाल से छुटकारा पाने के लिए नेपाल के राजा नरेंद्रदेव ने महायोगी मत्स्येंद्रनाथ को नेपाल बुलाया था। उस समय नेपाल में बौद्ध धर्म का प्रचलन था तथा मत्स्येंद्रनाथ के नेपाल जाने के बाद वहाँ हिंदू धर्म की स्थापना हुई। यदि किसी नाथ संन्यासी की मृत्यु होती है तो उसके मृत देह को जलाया नहीं जाता बल्कि नाथ रिवाज के अनुसार उस मृतदेह को पद्मासनावस्था में बैठाकर उसकी समाधि दी जाती है। यह प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है।

नाथ लोगों का अपना प्राचीन साहित्य है। तंत्र-मंत्र, योग, अध्यात्म-दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, रसायन आदि विभिन्न विषयों पर नाथ संप्रदाय के सिद्ध पुरुषों ने बहुमूल्य साहित्य की रचना की है। प्राचीनकाल के नाथ सिद्धाचार्यों के द्वारा रचित 'चर्यापद' या 'चर्यागीत' का असमीया, बंगला और उड़िया भाषा की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण योगदान है।

नाथ योगी हमारे असम में भी प्राचीनकाल से रहते आ रहे हैं। विशेषकर गोवालपारा, बंगाईगाँव, कोकराझाड़, दरंग, नगाँव, मोरिगाँव, होजाई, शोणितपुर, कछार आदि जिलों में लाखों की संख्या में नाथ योगी

निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त असम के प्रत्येक जिले में इस संप्रदाय के लोग युगों-युगों से रहते आ रहे हैं। गुवाहाटी के आमबाड़ी में पुरातत्व विभाग द्वारा की गई खुदाई से प्राप्त शिलालेख में वर्तमान गुवाहाटी का नाम एक समय योगीहाटी था। दूसरी ओर इस प्राचीन संप्रदाय के विषय में किए गए अनुसंधान एक विभिन्न इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत लिखित विवरणों के आधार पर यह पता चलता है कि एक समय नगाँव के समीप कदली नाक एक राज्य भी था, जो नाथ योगी संप्रदाय की महिला शासिका द्वारा शासित था। इसके अतिरिक्त वर्तमान होजाई जिले के योगीजान, तेजपुर के समीप स्थित सूर्यपहाड़ का शिवलिंग, गोवालपारा के जोगीघोपा की पहाड़ी गुफा कामरूप राज्य के सिद्धलोगों की साधाना स्थली था। वर्तमान असम के कुछ नाथयोगी लोग महापुरुष शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित एकशरण नाम धर्म में दीक्षित होकर महापुरुषिया धर्म के अंग बन गए हैं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भी नाथ लोगों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में गाँधीजी द्वारा दिए गए 'करो या मरो' (Do and Die) नारा से प्रभावित होकर ढेकियाजुली थाने पर फहराए गए ब्रिटिश ध्वज यूनियन जैक को निकाल फेंकने के दौरान मनबर नाथ, खहुली देवी और कुमली देवी नामक तीन स्वाधीनता सेनानी पुलिस की गोली से घटनास्थल पर ही शहीद हो गये थे। ब्रिटिश शासन में ही सन् 1894 ई. में अविभक्त दरंग जिले में घटी पथरुघाट-कृषक विद्रोह के समय 28 जनवरी, 1894 को अंग्रेजों द्वारा संचालित गोलीकांड में 140 शहीद किसानों में से 28 नाथ संप्रदाय के लोग भी थे। बाद में 1980 के दशक में अखिल असम छात्र संघ के नेतृत्व में आरंभ किए गए विदेशी बहिष्कार आंदोलन में मारे गए 855 शहीदों में लगभग 140 शहीद उक्त संप्रदाय के थे। योगी संप्रदाय के लोग स्वभाव से शांत एवं देशभक्त होते हैं। उक्त संप्रदाय का ही एक सुयोग्य साहित्यकार, पुरातत्ववेत्ता एवं विद्वान व्यक्ति राजमोहन नाथ ने असम की भाषा, साहित्य, संस्कृति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्राचीन असम के नाथयोगी लोगों के पुरुष-महिला दोनों कताई-बुनाई और जूट-शिल्प में काफी आगे थे। इसलिए योगी संप्रदाय के अनेक लोग काटनी उपाधि से प्रसिद्ध थे। इस संप्रदाय के ज्ञानी पुरुष परम भक्त वैष्णव मथुरानाथ बूढ़ा आता महापुरुष शंकरदेव के एक प्रिय शिष्य और वैष्णव धर्म के प्रचारक थे। महापुरुष शंकरदेव की बहुमूल्य सृष्टि वृंदावनी वस्त्र के मात्र कुछ हाथ बुनने के बाद उस वस्त्र को तैयार करने का दायित्व उन्होंने महापुरुष मथुरानाथ बूढ़ा आता पर ही सौंपा था। असम के नाथयोगी असमीया भाषा, साहित्य, संस्कृति के रक्षक एवं वाहक के रूप में जाने जाते हैं। दरंग जिले के प्रसिद्ध सुकनानि ओजापाली, देवधनी नृत्य और सियागीत संप्रदाय के वर्षों से चली आ रही असम की एक अग्रणी सांस्कृतिक संपदा है।

असम का यह गौरवपूर्ण जनसमुदाय विभिन्न सामाजिक उत्थान-पतन के बीच अपने परिचय को कायम रखे हुए हैं। दूसरी ओर संप्रदाय शैक्षिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सभी दिशाओं में प्रगति

करने के लिए हलिरामनाथ शहरीया और लम्बोदर बरा नामक प्रमुख दूरदर्शी व्यक्तियों के प्रयास से 1919 ई. में गठित 'असम प्रादेशिक योगी सम्मेलन' नामक संस्था सौ वर्ष पुरानी असम की सबसे पुरानी जनसामुदायिक संस्था है।

प्रश्नावली

1. असम के नाथयोगी लोगों की उत्पत्ति के बारे में लिखिए।
2. नाथयोगी लोगों के साहित्य और धर्म के बारे में लिखिए।
3. नाथयोगी लोगों के बारे में संक्षेप में लिखिए।

आदिवासी

असम के लगभग 885 चाय बागानों एवं गाँवों में निवास करने वाले लगभग 56 लाख आदिवासी असमीया जाति के अविच्छेद अंग ही नहीं बल्कि असमीया संस्कृति और असम के आर्थिक-सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण उपादान है। चाय-बागानों एवं गाँवों में रहनेवाले इस जनसमुदाय के पूर्वज आदिवासी कहे जाते थे। हालाँकि कुछ आदिवासी लोग अपने को आर्य भी कहते हैं। चूँकि इतिहासकारों ने उन्हें आदिवासी के रूप में चिह्नित किया है, इसलिए उन्हें आदिवासी कहा जाता है।

आदिवासी का अर्थ इस प्रकार है - 'आदि' अर्थात् प्रथम और 'वासी' का मतलब वासिंदा (निवासी)। इस प्रकार देश के प्रथम निवासी को 'आदिवासी' कहा जाता है। असमीया शब्दकोश 'हेमकोश' के अनुसार 'आदिवासी' शब्द का अर्थ 'प्रथम निवासी' कहीं-कहीं पहले ही आ जाता है। डिब्रुगढ़ विश्वविद्यालय की स्नातक कक्षा की पाठ्यपुस्तक 'भारत बुरंजी' में (पृष्ठ सं. 3) प्रफुल्ल बरुवा ने आदिवासी जनसमुदाय का परिचय इस प्रकार दिया है - 'इस जनसमुदाय के लोगों का कद छोटा, रंग काला और नाक चपटी होती थी। वे लोग साधारणत: पहाड़ों एवं जंगलों में रहना पसंद करते थे। उनकी अपनी कोई लिपि नहीं थी तथा उनकी भाषा आर्य परिवार की भाषा से बिल्कुल अलग थी। कोल, भील, मुंडा आदि जातियाँ उक्त जनसमुदाय के अंतर्गत आती थीं।

इस प्रकार आदिवासी कहने से कोंवर, कोल, भूमिज, सबर, सुरिया, पहाड़िया, सौताल, ओरांग, मुंडा, माल पहाड़िया, माहालि, लोहार, करबा, कोरा, किसान, कंध, खेरवार, खड़िया, कुड़माली, हो, गराइड, गड़, सिक बाराइक, सेर, बिरजिय बिरहोर, बिनजिया बेदिया, बाथुडि, बंजारा, बैगा, आसुर, लोधा, दामदारी, बन्दा, नागसिया, उड़िया, भील, परजा, धनवार, कोया प्रधान इत्यादि लोगों (जातियों) का बोध होता है। असम के गाँव-बस्ती और चाय-बागानों में रहनेवली एक जाति के लोगों ने स्वयं को 'आदिवासी' कहकर गौरव का अनुभव करते हैं। हालाँकि बहुत से लोग चाय मजदूर, कुली, चाय जनजाति, सेउज असमीया आदि के रूप में अपना परिचय देते आए हैं और अज्ञानता के परिणामस्वरूप उनलोगों ने कुछ उक्त नामकरण को स्वीकार कर लेने पर भी वे वास्तव में आदिवासी ही हैं।

आदिवासियों की संस्कृति :

प्राचीन आदिवासी प्रकृति प्रेमी और प्रकृति पर निर्भर रहकर फलमूल खाकर जीवन बिताते थे। कृषि कार्य आरंभ होने के साथ-साथ उसके सभी कार्य, रीति-रिवाज खेती पर आधारित होने लगे। आदिवासियों के प्रमुख पर्व-उत्सव नीचे दिए जा रहे हैं -

करम उत्सव : भादों महीने की एकादशी को यह उत्सव मनाया जाता है। 'करम' प्रमुख रूप से खेती-बाड़ी पर आधारित उत्सव है। करम (Nauclea Parvifola) एक प्रकार का पेड़ होता है। गाँव की लड़कियाँ जंगल से करम की डाल काटकर लाती है और उसे गाँव के चौपाल पर लगाती है। गाँव के लोग नाचते-गाते करम देवता की पूजा करते हैं। आदिवासी अपने पाहान की कहानी (पुरोहित द्वारा पूजा संपन्न होने के बाद) सुनते हैं, जहाँ आदिवासियों को परंपरा की नीति-कथा निहित रहती है। करम उत्सव बंधुत्व, प्रेम एवं एकता, अच्छी फसल और पहले विवाह होने के लिए तैयार युवतियों के लिए एक व्रत के समय लोग खेती-बाड़ी के कल्याण के साथ अधिक उत्पादन की कामना करते हुए करम देवता की आराधना करते हैं। इसके अतिरिक्त आदिवासी टुसु, बाहा पर्व (सरहुल), सोहराई, मागे, फगुआ आदि उत्सव मानते हैं। करम, सुमर, डोमकच, जादूर, लाहसुवा आदि नाच-गाना करके आदिवासी अपना उत्सव मनाते हैं।

आदिवासी भाषा :

द्रविड़ और आस्ट्रिक समुदाय की भाषा आदिवासियों की भाषा है। उदाहरणस्वरूप ओरांग लोगों की कुडुस भाषा द्रविड़ समुदाय की भाषा है। उसी प्रकार मुण्डा एवं सौताल लोगों की भाषा आस्ट्रिक समुदाय की कोलारियन भाषा है। 'खासी' लोगों की भाषा एवं रीति-रिवाज में मेल होने से भी उनलोगों के बीच दोनों प्रकार की भाषाओं का प्रचलन है। आदिवासी कुडुस (ओरांग), मुण्डा, सौताल, साउरा, कुड़माली, खाड़िया इत्यादि जातियों की अपनी-अपनी भाषाएँ हैं। आदिवासी लोगों ने अपनी भाषाओं के विकास के लिए कुडुस साहित्य सभा, सौताली साहित्य सभा, मुंडारी साहित्य सभा, खाड़िया साहित्य सभा, कुड़माली साहित्य सभा जैसी संस्थाओं का निर्माण किया है।

आदिवासियों के विशेष व्यक्ति :

क्रिस्चन मुंडा : क्रिस्चन मुंडा ने भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई में अपने प्राणों की आहुति दी थी। क्रिस्चन मुंडा ने तेजपुर के समीप फूलबाड़ी चाय बागान में 1910-1913 ई. में असम के किसान और मजदूर विद्रोह कराया था (Tea Garden Labourers of North East India - S.Karotemprel B. Dutta Roy, Page 166-167)) ब्रिटिश सरकार ने क्रिस्चन मुंडा को फूलबाड़ी चाय बागान में खुलेआम फाँसी दे दिया था, ताकि फिर कोई व्यक्ति (मजदूर) ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आवाज उठाने का साहस न कर सके,

लेकिन इस घटना के बाद ही चाय-बागानों में स्वाधीनता आंदोलन और अधिक जोर पकड़ने लगा। सनाजुलि, कछारी गाँव आदि चाय बागानों में स्वाधीनता आंदोलन शुरू हो गया (Planter Raj to Swaraj - A Guha)। मालती ओरांग (मांग्री मेम), दयाल पानिका, बाँकुडु साउँरा आदि कई आदिवासी उक्त स्वाधीनता संग्राम में शहीद हो गए।

जस्टिन लक्रा : अखिल असम आदिवासी छात्र संघ के जन्मदाता जस्टिन लक्रा का जन्म 2 अक्टूबर 1970 को शराई बिल के कचुगाँव में हुआ था। 1996 ई. में शिलौंग विश्वविद्यालय में पढ़ते समय ही उन्होंने निचले असम में वर्ग संघर्ष देखा था। इस प्रकार के संघर्ष के बाद लगभग दो लाख लोगों को शरणार्थी शिविरों में रहना पड़ा था। लोगों की सेवा करने के लिए उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। 2 जुलाई 1996 को जस्टिन लक्रा, जोसेफ मिंजो, स्टीफन एक्का, बॉस्को सेरेमाको, मांगरा ओरांग और विल्फ्रेड टोप्पो के साथ लखीमपुर के जुनुबस्ती आदिवासी उच्च विद्यालय में मिले और वहीं पर अखिल असम आदिवासी छात्र संघ का गठन किया। लोगों की सुरक्षा और शांति अखिल आदिवासी छात्र संघ का मुख्य उद्देश्य था। अपने जन्म के समय से ही आदिवासी छात्र संघ आदिवासियों के जनजातिकरण एवं चाय मजदूरों की दैनिक मजदूरी बढ़ाने के लिए आंदोलन करते आ रहा है। इस आंदोलन का आदिवासी समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। ऐसे आंदोलनों में आंद्रेयास मांडी, हेमलाल सना, बॉस्को सेरेमाको, जितेन ताँती जैसे 18 वीर आदिवासी शहीद हो चुके हैं। 13 जुलाई 2015 को महान आदिवासी नेता जस्टिन लक्रा का निधन हो गया। उन्हें आदिवासियों का 'राष्ट्रपिता' कहा जाता है।

प्रश्नावली

1. आदिवासियों के बारे में संक्षेप में लिखिए।
2. आदिवासियों की भाषा एवं पर्व-त्योहारों के बारे में लिखिए।
3. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (क) क्रिस्चन मुंडा
   (ख) जस्टिस लक्रा

● ● ●

वैचित्र्यमय असम

असम सरकार द्वारा नि:शुल्क वितरण हेतु